प्रागैतिहासिक - प्राग्वैदिक जैनधर्म एवं उसके सिद्धान्त

लेखक

नाथूलाल जी जैन शास्त्री

सिद्धांताचार्य, साहित्यरत्न, न्यायतीर्थ,

पूर्वप्राचार्य, सरहुकमचंद संस्कृत महाविद्यालय

इन्दौर

संपादक

अरविन्द कुमार जैन एम.ए.

सिद्धांतालंकार इन्दौर

प्रकाशक :—

श्री दिगम्बर जैन युवक संघ

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट

सत्यम गैस के सामने, ए.बी. रोड़ विद्यासागर नगर,

इन्दौर (म.प्र.)

फोन: 0731—571851, 555840

प्रकाशक :—
श्री दिगम्बर जैन युवक संघ

लेखक :— नाथूलाल जी जैन शास्त्री

संपादक :— अरविन्द कुमार जैन एम ए

अक्षर सयोजन :— ब्र. राजेश एवं ब्र जिनेश

प्रकाशन सहयोगी :— नीरज जैन (दिगम्बर)
गजेन्द्र पब्लिकेशन, दिल्ली फोन. 3285932 मॉ 9810035356

प्रथम संस्करण :— महावीर जयन्ती 2001

मूल्य : 100/— रुपये (एक सौ रुपये)

प्रिन्टर्स :—
एन.एस. इन्टरप्राईजिस
2578, गली पीपल वाली,
धर्मपुरा, दिल्ली—110006
दूरभाष : 3285932, मॉ. : 9810035356

प्रकाशकीय

सम्पूर्ण भारतीय संस्कृति में श्रमण जैन संस्कृति स्वभावता परमार्थ तत्व को प्राप्त करने में समर्थ है। सन्यास परम्परा अनादि परम्परा है जो जैन संस्कृति की देन है। इतिहास का लेखन करना आसान नहीं है।

ऐतिहासिक दृष्टि से सांस्कृतिक विरासत का समग्र मूल्यांकन करना सम्भव नहीं है। फिर भी ऐतिहासिक एवं पुरातत्व के प्रमाण उस संस्कृति के अवदानों को रेखांकित करने में समर्थ होते है। जैन–आचार–विचार और उसमें निहित अहिंसा–अपरिग्रह के सिद्धांत सार्वभौमिक एवं सार्वकालिक उपयोगिता का संकेत ही नहीं करते वरन्–भारतीय स्वतन्त्रता के आन्दोलन में इन सिद्धान्तों का व्यवहारिक एवं प्रचुर उपयोग हुआ है।

प्रस्तुत ग्रंथ "प्रागैतिहासिक–प्राग्वैदिक–जैनधर्म एवं उसके सिद्धान्त"–सुप्रसिद्ध विद्वान पं. श्री नाथूलाल जी शास्त्री की लेखनी से प्रसूत बहुमूल्य कृति है। जिससे जैनधर्म की आद्य संस्कृति, श्रमण परम्परा एवं संपूर्ण इतिहास का प्रमाणिक स्वरूप दृष्टिगत होता है। और यही इतिहास हमारे भावी जीवन को संस्कारित और उन्नत बनाने में सहयोगी होता है। पूज्य पंडित जी वर्तमान में दिगम्बर परम्परा ही नहीं, वरन् संपूर्ण जैन समाज में अत्यन्त आदरणीय है। आदरणीय पंडित जी का मार्ग दर्शन तो युवक संघ को समय–समय पर उपलब्ध होता ही रहता है। इसी श्रृखला में प्रस्तुत पुस्तक का सृजन कर हमें प्रकाशनार्थ उपलब्ध करायी है। इसके लिए युवक संघ के समस्त कार्यकारिणी की ओर से उनके प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ एवं आशा करता हूँ कि जिनवाणी के संरक्षण, संवर्द्धन, अध्ययन के प्रति समर्पित पंडित जी की पुस्ट लेखनी से हमें कुछ अन्य कृतियाँ भी प्राप्त होगी। जिन्हें प्रकाशित कर युवक संघ गौरवान्वित हो सकेगा।

पुस्तक की पांडुलिपि को तैयार करने में कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ के शोध सहायक श्री अरविंद कुमार जैन तथा बहिन नीतू जैन ने पर्याप्त श्रम किया है और श्री नीरज जैन (दिगम्बर) गजेन्द्र

पब्लिकेशन ने इस पुस्तक की साज–सजा व मुद्रण किया है। मैं इन सभी के प्रति आभार व्यक्त करता हूँ।

मुझे विश्वास है जैन साहित्य एवं इतिहास के अध्येता विद्वान आदरणीय पंडित जी द्वारा प्रस्तुत पुस्तक में संकलित संदर्भो और तथ्यों का उपयोग कर जैन धर्म के प्राचीन इतिहास के बारे में प्रचलित हो रही भ्रांतियों एवं तथ्यहीन विचारों का निराकरण करते हुए वास्तविक तथ्यों की स्थापना हो सकेगी। पुस्तक के संदर्भ में सुधी पाठकों की प्रतिक्रियाएं सादर आमंत्रित है। जिससे सत्य के अन्वेषण का क्रम अबाध गति से जारी रहे।

ब्र. जयकुमार जैन "निशान्त"
अध्यक्ष
श्री दिगम्बर जैन युवक संघ
केन्द्रीय कार्यलय इन्दौर (म.प्र.)

सम्पादकीय

किसी भी धर्म, सम्प्रदाय, संस्कृति का महत्व उसकी उदारता और प्राचीनता से उद्योतित होता है। जैनधर्म ही नहीं एक संस्कृति भी है वैदिक (ब्राह्मण) संस्कृति, श्रमण संस्कृति, दोनो ही प्राचीन काल से समानान्तर रूप से पायी जाती है। जैनधर्म का अतीत अत्यन्त गौरवशाली रहा है। समूची श्रमण संस्कृति (बौद्ध और जैन) का जहाँ भी उल्लेख आता है, उसमें जैन श्रमण संस्कृति अग्रण्य रही है। इसका वर्तमान इतिहास लाखों वर्ष पूर्व आदितीर्थंकर ऋषभनाथ के समय में पाया जाता है।

जैन संस्कृति के परिचय प्रस्ततीकरण में जैसे कोई हजारों वर्ष पुराने वट वृक्ष की छोटी सी टहनी तोड़कर ले आये और कहे कि यही दो फीट ऊँचा अमुक वट वृक्ष है उसी तरह कुछ पूर्वाग्रही या अनभिज्ञ लोग यह कहते हैं कि जैनधर्म। जैन संस्कृति के आदि संस्थापक भगवान महावीर थे। भारत के कुछ राज्यों के शासकीय अशासकीय विद्यालयों के संस्कृत, अंग्रेजी, हिन्दी की कक्षाओं में भी जैनधर्म के परिचय–प्रसंग में यही पढाया गया है कि गौतम बुद्ध ने बौद्ध धर्म की स्थापना की और भगवान महावीर ने जैनधर्म की स्थापना की।

वस्तुतः कहीं न कहीं हमारी भी कमजोरी रही है। हम अपने सबसे प्राचीन और गरिमामय इतिहास से जनमानस क्या बुद्धिजीवी वर्ग को भी परिचित नहीं करा सके। ऐसे में आदरणीय पं. श्री नाथूलाल जी शास्त्री की प्रस्तुत "प्रागैतिहासिक–प्राग्वैदिक जैनधर्म और उसके सिद्धांत" रचना मील का पत्थर साबित होगी।

पं. श्री नाथूलाल जी शास्त्री देश के मूर्धन्य वयोवृद्ध जैन विद्वानों में अग्रण्य हैं। आप धार्मिक विधि विधान आगमोक्त जिनबिम्ब–प्रतिष्ठा विधि के मर्मज्ञ हैं। आपको कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ पुरस्कार, आचार्य कुन्दकुन्द पुरस्कार, श्रुत संवर्द्धन पुरस्कार आदि अनेक पुरस्कार प्राप्त हो चुके हैं। आपकी 51–16 रचनाओं में–'जैन तीर्थ यात्रा' नैतिक शिक्षा, जैन संस्कार विधि, 'प्रतिष्ठा प्रदीप, 'आत्मधर्म एवं समाजधर्म' 'मूलसंघ और उसका प्राचीन साहित्य' प्रमुख हैं।

परमादरणीय पंडित जी ने नई सहस्त्राब्दी का नया सोपान "प्रागैतिहासिक–प्राग्वैदिक जैनधर्म और उसके सिद्धांत" नामक ग्रंथ

रचना कर हमारे समक्ष प्रस्तुत किया है।

ग्रथ का सृजन अपने आप में अनूठा है। यह हमें हमारे इतिहास, हमारे धर्म के संबंध में अनेक अन्य मतावलम्ब विद्वानों के मत जहाँ एक ओर हमें झकझोरते हैं, वहीं दूसरी ओर हमारे प्राचीन ग्रंथों में विज्ञान की महत्ता जिसे आज आधुनिक समझ रहे हैं स्पष्ट करती है। ग्रंथ की सहजता एवं सरलता का तो आप अध्ययन कर स्वयं ही आकलन करेंगे परन्तु मैं तो यह कह सकता हूँ कि आबालवृद्ध यदि इसका एक बार अवलोकन करेंगे तो वह हमारी प्राचीन संस्कृति व इतिहास से अनभिज्ञ नहीं रह सकेगा। इसमें जनैधर्म के प्रमुख सिद्धांतों आदिकायी परिचय दिया गया है जो महत्वपूर्ण है।

पूज्य पण्डित जी जैसी विभूति की कृति के सम्पादन के कार्य में मैं अपने आप को असमर्थ पा रहा था किन्तु गुरु आज्ञा को शिरोधार्य कर मैंने प्रस्तुत कृति के सम्पादन का कार्य सम्पादित किया। परमादरणीय पं. जी की तीन अन्य कृतियों–'प्रतिष्ठा–प्रदीप', 'आत्म धर्म और समाज धर्म' तथा मूलसंघ और उसका प्राचीन साहित्य की भी सामग्री सशोधन–सम्पादन करने का मुझे सौभाग्य प्राप्त हुआ है।

परमादरणीय पंडितजी का तो मैं कृतज्ञ हूँ ही, जिन्होंने मुझे इस कृति के सम्पादन का दायित्व सौंपा और मार्ग दर्शन दिया, परम पूज्य आचार्य विद्यानन्द जी के प्रति में श्रद्धावनत हूँ जिन्होंने शुभ आर्शीवाद प्रदान कर इस पुस्तक को प्रमाणित किया। आ. भैया ब्र श्री जिनेश मलैया ने हमें प्रोत्साहित किया तथा डॉ. अनुपम जैन से मुझे सदा प्रेरणा प्राप्त होती रहती है, मैं उनका कृतज्ञ हूँ। इसकी सुन्दर कम्प्यूटर कम्पोजिंग व सामग्री संशोधन में सहयोग के लिए कु. नीतू पिता श्री अशोक कुमार जैन को कभी विस्मृत नहीं किया जा सकता। श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट इन्दौर ने अपने पूर्ण व्यय पर इसके प्रकाशन का दायित्व लिया एतदर्थ हम अनुग्रहीत है। भगवान महावीर के 2600वें जन्म कल्याण महोत्सव वर्ष के प्रथम दिन आपके हाथों में यह पुस्तक प्रदान कर हम गौरवान्वित हो रहे है।

महावीर जयन्ती 2001

अरविन्द कुमार जैन
सम्पादक
शोध सहायक एवं प्रबन्धक
कुन्द कुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर

लेखकीय वक्तव्य

मैंने जैनधर्म का प्रागैतिहासिक एवं प्राग्वैदिक आस्तित्व प्रमाण सहित पाठकों के समक्ष प्रस्तुत किया है। ग्रंथ का सार यहाँ दे रहा हूँ।

आधुनिक इतिहास कार और पुरातत्व वेत्ता मावन की स्थिति आनंद पूर्ण और प्राकृतिक बताते है।

कृषिकाल के पूर्व मानव सुखी जीवन व्यतीत करता था। उक्त अभिमत टैनरीवैनी स्टीवैंस और इलियट स्मिथ पुरातत्वज्ञों ने "दी रिक्वरी ऑफ कल्चर" पेज 4 और "दी एवोलुशन ऑफ मेन" 13में प्रकट किऐ है। प्रागैतिहासिक नगरों के उत्खनन के द्वारा चार हजार वर्ष पूर्व पुराने स्तर पर पहुँचने पर ऐसा कोई शस्त्र या युद्ध चिह्न नहीं मिला, जिससे मानव के हिंसक होने का प्रमाण ज्ञात हो सके। यही जैन धर्मानुसार भोगभूमि का कल्पवृक्ष युग है जो सुषमा काल अवसर्पणी (अवनति) काल है।

भगवान ऋषभदेव के समय भोगभूमि के कल्पवृक्ष नष्ट हो जाने से तत्कालीन प्रजा को भूख की पीड़ा के कारण भगवान द्वारा कृषि का उपदेश दिया गया और कर्मभूमि के प्रारंभ के कुछ पूर्व असि, मसि, कृषि, शिल्प, सेवा, वाणिज्य इन षट्कर्मो द्वारा आजीविका का मार्गदर्शन दिया गया। यह समय नव निर्माण का था। आदि सभ्यता की खोज में मोहनजोदड़ो और हड़प्पा का उत्खनन कार्य पुरातत्व वेत्ताओं के द्वारा किया गया। श्रमण संस्कृति, जो ऋषभदेव प्रथम तीर्थंकर द्वारा प्रारंभ की गई थी, ये प्राचीन अवशेष उसी अतीत की गौरव कथा सुनाने वाले उपलब्ध हुए। भारतीय एवं पाश्चात्य विद्वानों के मतानुसार पुरातत्त्व और वेदों की साक्षी में श्रमण संस्कृति की प्राचीन महत्ता प्रतिष्ठित हुई है।

वाचस्पति गैरोला (भारतीय दर्शन पृ. 86) बताते हैं कि "भारतीय विचारधारा हमें अनादिकाल से दो रूपों में विभक्त हुई मिलती है पहली पुरुषार्थ मूलक, प्रगतिशील, श्रमण प्रधान, जिसमें आचरण की प्रमुखता रही है। दूसरी जिसका विकास वैदिक साहित्य के रूप में प्रकट हुआ है। ये दोनों परस्पर में पूरक रही

हैं और विरोधी भी। इस देश की बौद्धिक एकता बनाये रखने में दोनों का महत्वपूर्ण स्थान है।

प्रथम विचारधारा का उद्भव बंगाल, आसाम, बिहार, मध्यप्रदेश, राजस्थान तथा पूर्व उत्तर प्रदेश के व्यापक अंचल में और दूसरी का जन्म पंजाब तथा पश्चिमी उत्तर प्रदेश में हुआ। श्रमण विचार धारा के जनक जैन थे। श्री रामधारी सिंह दिनकर "संस्कृति के चार अध्याय" में बताते है "भारत का अतीत काल भी जीवित था और आगे भी जीवित रहेगा।"

श्रमण संस्कृति उज्जवल अतीत को लिए हुए है। यह भारत का सर्वाधिक पुरातन धर्म है। मेजर जनरल फरलांग कहते हैं "जैनधर्म का आरंभ पाना असंभव है।" भारत में तीन संस्कृतियों की प्रधानता रही है। श्रमण, वैदिक और बौद्ध संस्कृति। इनमें बौद्ध संस्कृति के मुनि एवं वैदिक संस्कृति के ऋषि सन्यासी कहलाते रहे हैं। श्रमण निर्ग्रंथ दिगम्बर जैन मुनि हैं, रागादि विकारों से मुक्ति के लिए श्रम करते हैं, कष्ट सहते हैं, तप करते हैं वे तपस्वी श्रमण हैं। श्रमण शब्द पुरुषार्थ मूलक है। श्रमण शब्द और ऋषमदेव का उल्लेख ऋग्वेद में मिलता है। शिव पुराण आदि में ऋषभ को शिव का रूप बताया गया है। भारत का नाम ऋषम देव के पुत्र भरत चक्रवर्ती से प्रसिद्ध हुआ। ऐसे उल्लेख स्पष्ट रूप से मिलते है।

ऋषम देव के पिता नाभिराय के दूसरे नाम अजनाभि के नाम से भारत अजनाम वर्ष कहलाता था। पुरातत्व विभाग के निर्देशन में सन् 1922 में सिधु घाटी के उन्नयन का कार्य सम्पन्न हुआ। इसमें दो नगर मोहनजोदड़ों और हड़प्पा मिलें। मोहनजोदड़ों पश्चिमी पाकिस्तान में सिंघप्रांत के लरकाना जिले में सिंधु नदी तथा नहर के मध्य में स्थित है।

हड़प्पा मांटगोमरी जिले में एक स्थान है। इस प्रांचीन ऐतिहासिक नगरों में प्राप्त सामग्री, सीलों, मूर्त्तियों तथा मानव स्कंधों से विद्वानों ने यह प्रमाण प्रस्तुत किया है कि उक्त दोनों नगरों के उत्कर्ष काल में श्रमण संस्कृति का गौरव पूर्ण स्थान था। सर जॉन मार्शल का मत है कि 5000 वर्ष पूर्व पंजाब और

सिंधु प्रदेशों में आर्यों से भी पहले ऐसे लोग रहते थे जिनकी संस्कृति उच्च कोटि की थी। मोहनजोदड़ों में मानव मूर्त्त, कतिपय मौर्य, नाभिराय, ऋषभ और भरत के अस्तित्व और उनके गौरव में जीवन को प्रमाणित करती है। वाचस्पति गैरोला के अभिमत से मोहनजोदड़ों में प्राप्त ध्यानस्थ योगियों की मूर्ति जैनधर्म की प्रचीनता निर्विवाद सिद्ध करती है।

डॉ. विशुद्धानंद पाठक और डॉ. जयशंकर प्रसाद जैनधर्म को प्रागैतिहासिक और प्राग्वेदिक मानते हैं।

पद्मश्री रामधारी सिंह दिनकर के शब्दों में ऋषभदेव वेदोल्लिखित होने पर भी वेद पूर्ण है।

महाभारत और ब्रह्माण्ड पुराण में लिखा है कि ऋषभदेव क्षत्रिय तीर्थंकर से क्षत्रिय धर्म का प्रारंभ हुआ है। उपनिषदों के उल्लेख से यह प्रमाणित है कि क्षत्रिय राजाओं से ही आत्मा या परमात्मा का आध्यात्मिक ज्ञान उपलब्ध हुआ है।

ऋषभ देव के एक पुत्र का नाम द्रविड़ था। उन्हें जिस भूभाग का शासन मिला वह द्रविड़ देश कहलाया। उनकी संतान एवं प्रजा द्रविड़ नाम से प्रसिद्ध हुई। द्रविड़ इक्ष्वाकु वंशीय क्षत्रियों से उत्पन्न हुई है। मनुस्मृति में उन्हें प्रथम क्षत्रिय बताया गया है। मेजर जनरल जे. फरलांग अपनी पुस्तक शार्ट स्टडीज इन दी साइन्स आफ कम्पैरैटिव रिलीजन्स पृ. 243—4 में लिखते हैं कि "अनुमानतः ईसा से 1500 से 800 वर्ष पूर्व से, बल्कि अगणित समय से पश्चिमी तथा उत्तरीय भारत तुरानियों अथवा द्रविड़ जाति शासित था। उसी समय में उत्तरीय भारत में एक पुराना समय, सैद्धांतिक और विशेष तथा साधुओं का धर्म भी अर्थात् जैन धर्म विद्यमान था। इसी धर्म से ब्राह्मण और बौद्धधर्म के सन्यासाश्रम ने विकास पाया।"

आर्य जो बाहर से आये थे वे सरस्वती नदी तक पहुँचे भी नहीं थे, उसके वर्षों पहले जैन अपने संत अथवा तीर्थंकरों द्वारा पढ़ाये (सिखलाये) जा चुके थे। ये तीर्थंकर ईसा से पूर्व 8—9वीं शताब्दी के ऐतिहासिक तेईसवें तीर्थंकर से पहले हो चुके थे।

जैनधर्म, हिन्दु धर्म और बौद्ध धर्म से सर्वथा भिन्न और उनसे

अति प्राचीन स्वतंत्र वैज्ञानिक धर्म है।

जैनधर्म की अतिप्राचीनता के संबंध में लोकमानस की विभिन्न धारणा को दूर करने हेतु यह बिखरे हुए समस्त प्रमाणों को एकत्रित करने का प्रयास है। इसका कारण हमारी ओर से समुचित प्रचार प्रसार में उपेक्षित रहना है। साथ ही जैनधर्म के प्रमुख विषयों का संक्षिप्त प्रतिपादन भी इसमें जिज्ञासुओं के लिए विशिष्ट है। यह अतीत को वर्तमान का रूप देने का प्रयत्न है।

मेरे संकेत मात्र पर श्री अरविन्द कुमार जैन, सिद्धांतालंकार ने प्रस्तुत ग्रंथ के सम्पादन का गुरूतर दायित्व सम्हाला। इस ग्रंथ की सामग्री व्यवस्थित, संशोधित एवं सम्पादित की। एतदर्थ मैं इनका कृतज्ञ हूँ। मेरे पूर्व तीन ग्रन्थों – 'प्रतिष्ठाप्रदीप', 'आत्मधर्म और समाज धर्म', तथा 'मूलसंघ और उसका प्राचीन साहित्य' में भी इनका इसी तरह निस्पृह भाव से सहयोग मिला था। कु. नीतू जैन पिता श्री अशोक कुमार जैन ने इसके टंकण एवं संशोधन आदि में योगदान दिया, एवं इसके संपूर्ण प्रकाशन में श्री दिगम्बर जैन युवक संघ एव श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमर्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर से अपनी संस्था की ओर से इस पुस्तक को प्रकाशित किया है और मुझे सदैव प्रोत्साहन करने वाले श्री गुलाबचन्द जी बाकलीवाल को मैं विस्मृत नहीं कर सकता।

महावीर जयन्ती 2001

नाथूलाल जैन शास्त्री
मोती महल, 40 सर सेठ हुकुम चन्द मार्ग,
इन्दौर–2

विषय सूची

क्रमांक		पृष्ठ संख्या
1.	अति प्राचीनता के प्रमाण	1
2.	श्रमण संस्कृति का प्राग्वैदिक अस्तित्व	14
3.	अभिमत, जैन धर्म के सम्बन्ध मे	17
4.	पौराणिक सस्कृति	30
5	वैदिक यज्ञ आदि के शब्दार्थ	34
6.	पुराणो, वेदो, उपनिषदो मे	37
7	बौद्धधर्म और जैनधर्म नारायण, श्री कृष्ण और नेमिनाथ	46
8	ऋषभ और शिव	49
9.	उपनिषद और अध्यात्म विद्या	52
10	भारत के बाहर जैनधर्म	58
11	आधुनिक इतिहास द्वारा	68
12.	पूर्वकालीन स्थिति	69
13	भारतीय इतिहास मे जैनकाल	78
14	प्राचीनतम जैनधर्म, जैनागम से	89
15	भगवान महावीर का काल	94
16	भगवान महावीर का बिहार	101
17.	जैन शासक	105
18	जैनधर्म और विज्ञान	112
19	जैनधर्म	118
20.	जैन समाज	120
21	अहिसावाद	122
22.	अनेकात और स्याद्वाद	125
23.	सामाजिक जीवन मे अनेकात	133
24.	जैनधर्म मे परमात्मा	139
25.	अध्यात्मवाद	141
26.	कर्मसिद्धांत	143
27.	जैन भूगोल	147
28.	जैन ज्योतिष	150
29.	जैन गणित	155

30. जैन आयुर्वेद 161
31. रायचन्द भाई और महात्मागांधी 168
32. जैनधर्म की विशेषताये 169
33. वास्तुशास्त्र के अनुसार गृहनिर्माण 172
34. समाधिमरण 176
35. सन्दर्भ ग्रंथ सूची 179

अति प्राचीनता के प्रमाण

वैज्ञानिक शोध और खोज द्वारा यह सिद्ध है कि इस सृष्टि के प्रारंभ का कोई पता नहीं है। इस संबंध मे जो कुछ कल्पनायें की गई हैं वे सब निर्दोष नहीं है। इसलिये सृष्टि की अनादिता ही मानना चाहिये। मनुष्य जीवन के संबंध में भी यही मान्यता निर्दोष है।

प्राचीनता के सबंध मे वर्तमान इतिहासकारों की अनेक कल्पनायें हैं। इतिहासकार 4000 ईसवी पूर्व से भी पूर्व की मानवीय घटनाओं का उल्लेख करते हैं। मिस्र देश की प्रसिद्ध गुम्मटों का रचनाकाल ईसवी से 5000 पूर्व अनुमान किया जाता है। शाल्दिया देश में ईसा से 6–7 हजार वर्ष पूर्व की मानवीय सभ्यता के प्रमाण मिले हैं। चीन देश की सभ्यता इससे भी अधिक की है। अमेरिका मे जो खुदाई हुई है उसका भी यही प्रमाण है। पजाब और सिध के सबध में यहाँ वर्णन किया गया है उससे विश्वसनीय जानकारी प्राप्त हुई है। यही जैन धर्म की ऐतिहासिक प्राचीनता है। पौराणिक और वैदिक प्रमाणों से इससे भी अधिक की इसी पुस्तक मे आगे सिद्ध किया गया है कि विदेश एवं देश के महान विद्वानों के अध्ययन द्वारा प्राप्त अभिमत से भी जैन धर्म के संबंध में यथार्थता ज्ञात हुई है जिसका उल्लेख इसमे है।

पुराण में वर्णित आयु आदि की दीर्घकालीनता और शरीर आदि की अधिक ऊँचाई तथा पल्य, सागर आदि का माप वर्तमान जनता की दृष्टि में आश्चर्यकारक है। अत. उनकी दृष्टि विस्तृत होनें पर इसका भी समाधान हो सकता है, यह असंभव नहीं ऐसा मानना चाहिये। इसके अनेक प्रमाण उपलब्ध हैं। भूगर्भशास्त्री–खोजो से 50–50, 60–60 फुट लंबे प्राणियों के पाषाणावशेष (POSSILS) प्राप्त हुये हैं। इतने लंबे अस्थि पंजर भी मिले हैं। इन दीर्घ अस्थि पंजरों से पूर्व काल के प्राणियों की दीर्घकाय एवं आयु का अनुमान युक्ति संगत माना जाता है। सूक्ष्म शरीर व स्थूल शरीर के अनुसार आयु भी न्यूनाधिक होती है। वनस्पतियो में भी यह हम प्रत्यक्ष देखते हैं।

इस आर्य देश मे श्रमण और वैदिक दो संस्कृति अत्यंत प्राचीन याने प्रागैतिहासिक है। संस्कृति शारीरिक मानसिक शक्तियों का प्रशिक्षण, दृढीकरण, विकास है।

वाचस्पति गैरोला :-

अपने 'भारतीय दर्शन' पृष्ठ 86 पर लिखते हैं कि "भारतीय विचारधारा हमें अनादिकाल से ही दो रूपो मे विभक्त मिलती है। पहली विचारधारा परम्परामूलक, ब्राह्मण या ब्रह्मवादी रही है जिसका विकास वैदिक साहित्य के वृहद रूप मे प्रकट हुआ है। दूसरी विचारधारा पुरूषार्थमूलक, प्रगतिशील, श्रामण्य या श्रमण प्रधान रही है, जिसमे आचरण को प्रमुखता दी गई है। यह दोनो विचार धाराये एक दूसरे की प्रपूरक रहीं हैं और विरोधी भी। इस देश की बौद्धिक एकता बनाये रखने मे दोनो का महत्वपूर्ण स्थान है। पहली विचार धारा का जन्म पजाब तथा पश्चिमी उत्तरप्रदेश मे और दूसरी विचाारधारा का उद्‌भव आसाम, बिहार, बंगाल, मध्यप्रदेश, राजस्थान तथा पूर्वी उत्तरप्रदेश के व्यापक अचल मे हुआ। श्रमण विचारधारा के जनक थे जैन।"

मोहनजोदड़ो

सन् 1922 मे सिधु घाटी के उत्खनन से पुरातत्व विभाग को मोहनजोदडो और हडप्पा ये दो स्थान प्राप्त हुये। मोहनजोदडो पश्चिमी पाकिस्तान मे सिध प्रात के लरकाना जिले मे सिधु नदी एव नहर के बीच मे विद्यमान है। हडप्पा माटगुमरी जिले के अन्तर्गत है। इनमे उपलब्ध मूर्तियो, सीलो, मानव स्कधो तथ अन्य सामान को देखकर विद्वानो का अभिमत है कि इन स्थानो मे श्रमण सस्कृति का गौरवपूर्ण स्थान था।

सर जॉन मार्शल :-

का मत है कि 500 वर्ष पूर्व पजाब एव सिध मे आर्यों से पूर्व ऐसे लोग रहते थे जिनकी सस्कृति उच्च कोटि की थी। मोहनजोदडो मे 2000–3000 ई पूर्व की प्राप्त एक मानव मूर्ति अन्तिम कुलकर नाभिराय द्वारा ऋषभदेव के राज्याभिषेक की प्रतीत होती है। यह राजवश का प्रतिनिधि चित्र है। प्रस्तुत वस्त्र एव केश विन्यास तत्कालीन राज्य परिच्छद का मानाक प्रस्तुत करते है। (चित्र)

मोहनजोदडो मे उपलब्ध एक ध्यानस्थ मूर्ति ऋषभदेव की मानी गई है। इस मुद्रा के अध्ययन से मालूम पडता है कि आदि ऋषभनाथ दिगम्बर एव ध्यानमुद्रा मे योगमग्न है। सिर पर त्रिशूल सम्यग्दर्शन ज्ञानचारित्र रूपी रत्नत्रय का प्रतीक है। मृदु वाणी का प्रतीक लता का एक पत्र मुख के पास निर्मित है। फलित कल्पवृक्ष से परिवेष्टित तीर्थंकर ऋषभदेव के भक्तो को फल प्रदान का प्रतीक है।

नमस्कार करते हुये भरत चकवर्ती, उनके पीछे भगवान का चिह्न वृषभ है। नीचे की पक्ति में भरत सम्राट् के सप्तांग प्रतीक 1 राजा 2 ग्रामाधिपति, 3 जनपद, 4 दुर्ग, 5 भण्डार, 6 षडगबल, 7 भिन्न श्रेणिव खडे है। यह पुरातत्त्ववेत्ता आचार्य विद्यानदजी महाराज ने पहचाना है। यह मूर्ति समवसरण मे विराजमान ऋषभदेव की है।

वाचस्पति गैरौला के अनुसार मोहनजोदडो से प्राप्त ध्यानस्थ योगियो की मूर्ति की प्राप्ति से जैनधर्म की प्राचीनता सिद्ध होती है।

डॉ. विशुद्धानंद पाठक और डॉ. जयशंकरप्रसाद :-

के मत से सिधु घाटी की सभ्यता मे प्राप्त योगमूर्ति तथा ऋग्वेद के कतिपय मत्र ऋषभदेव और अरिष्ट नेमि जैसे तीर्थंकरों के नाम उस विचार के मुख्य आधार है। पद्मश्री रामधारीसिह दिनकर के अनुसार 'मोहनजोदडो की खुदाई मे योग के प्रमाण मिले है और जैनधर्म के आदि तीर्थंकर श्री ऋषभदेव थे जिनके साथ योग और योग की परम्परा उसी प्रकार लिपटी हुई है जैसे कालान्तर मे वह शिव के साथ समन्वित हो गई। इस दृष्टि से कई जैन विद्वानों का यह मानना अनुपयुक्त नही दिखता कि ऋषभदेव वेदोल्लिखित होने पर भी वेदपूर्व है।'

प्रो. रामचंदा का मत है :-

कि ''ऋषभ जिनकी मूर्तियो पर मुकुट मे त्रिशूल चिह्न बनने की प्रथा रही है।खण्डगिरि की जैन गुफाओ मे (ईसा पूर्व 2 शती) एव मथुरा के कुषाणकालीन जैन प्रतीको पर आदि मे त्रिशूल चिन्ह मिलता है जो मोहनजोदडो के चित्र के अनुकूल ही है (इसके पूर्व का चित्र) जैन प्रतीको

में त्रिशूल की विशेषता है कि वह रत्नत्रय का द्योतक है उसके द्वारा अपने कर्मों को छेदा जाता है। अतएव अनेक विद्वानों द्वारा त्रिशूल युक्त मोहनजोदड़ो की मुद्राओं को जैनधर्म के चिह्न मानना वास्तविक प्रमाणो पर आधारित है।'

मोहनजोदडो के ऐश्वर्य काल में बाईसवें तीर्थंकर अरिष्ट नेमिनाथ का तीर्थकाल चल रहा था अत. वहा की जनता में जैनधर्म की मान्यता होना स्वाभाविक है।

काठियावाड से उपलब्ध एक ताम्रपत्र मे प्रो. प्राणनाथ ने पढ़ा है कि सुमेर नृप नेबुचेद नजर प्रथम गिरिनार पर्वत पर नेमिजिनेन्द्र की वन्दना करने आए थे (जैन गुजराती–भावनगर , 2 जनवरी 1937पृ 2)। वह उस सुजाति के शासक थे , जो मूल मे सुराष्ट्र (सौराष्ट्र, काठियावाड) के निवासी थे।

उक्त ताम्रपत्र में सुनृप के "रेवानगर के राज्य स्वामी" ठीक वैसे ही लिखा है जैसे कि उपरान्त काल में विभिन्न राजवंशों ने अपने मूल पुरुष के निवास स्थान की अपेक्षा अपने को उस नगर का शासक लिखा है। जैसे राष्ट्रकूट राजा अपने को नगर "लइलूराधीश्वर" शिलाहार वश के राजा स्वयं को नगर पुखराधीश्वर लिखते थे। यह रेवानगर नर्मदा नदी के तट पर जैनों का एक प्राचीन केन्द्र था और आज भी तीर्थ रूप मे जैन उसकी वन्दना करते है (निर्वाण काड)। बैवीलोन के उपर्युक्त नवुचेद नजर नरेश अपने को रेवानगर के राज्य का स्वामी घोषित करके यह स्पष्ट करते हैं कि वे मूलत भारत के निवासी थे।

विद्वानो का मत है कि सुजाति का मूलस्थान सुराष्ट्र(सौराष्ट्र) है और इस सुजाति के लोग बडे व्यापारी थे। उनके व्यापार के जहाज सुराष्ट्र से ईरान, मेसोपोटीमिया, अरब, मिश्र, मेजेद्रेनियन समुद्र तक एव दूसरी ओर जावा, सुमात्रा, कंबोडिया, चीन तक जाया आया करते थे। इन सुजाति के लोगों ने विदेशो मे उपनिवेश बसाये थे। इनका धर्म जैन था।

जे एफ हेवीन्ट कृत प्रागैतिहासिक समय की राजकर्त्री जातियो और विशाल भारत भाग 1 पृ 26–632 के अनुसार सुमेर लोगों का मुख्य देवता 'सित' (चन्द्रमा) मूल में जून कहलाता था, जिसे सर्वज्ञ ईश कहते है। उसे नन्नर (प्रकाश) भी कहते थे। जैनधर्म में आप्त देव सर्वज्ञ एव सर्वदर्शी माने गये है। वे ज्ञानपुज के प्रकाश कहे गये है। चन्द्रदेव एक अष्टम तीर्थंकर का नाम है। सित शब्द से चन्द्र को देव मानकर ये सुमेर

लोग पूजते थे। यों चकवर्ती भी सूर्य में जिन प्रतिमा मानकर पूजते थे। भगवान पार्श्वनाथ के पूर्वभव आनंद कुमार राजा ने महामह यज्ञ (जिनपूजा विधान) मे सूर्य विमान में विद्यमान जिनेन्द्र की विशेष पूजन की थी। सुजाति में एवं अन्य जैनो आदि में सूर्य –चन्द्र की पूजन का प्रचार तभी से प्रचलित हुआ जान पडता है। सुमेर एवं सिधुं की मुद्राओं पर इन देवताओ के नाम अर्थात् सित, नन्नर, श्री आदि पढे गये है।

(इंदिवक भा. 7–8 का परिशिष्ट)

विद्वानों को जैन पुराणों मे भी ऐतिहासिक तथ्य ज्ञात होने लगा और वे अरिष्ट नेमि को ऐतिहासिक पुरूष मानने लगे हैं।

प्रो प्राणनाथ ने सिधु उपत्यका की मुद्रा नं 449 पर 'जिनेश्वर' पढा था, वह सिधुलिपि ब्राह्मीलिपि का पूर्वरूप है ऐसा वे मानते है। मुद्राओ पर जो नाम और चिन्ह अंकित है, उनसे मोहनजोदडो की जनता का धर्म हिन्दू और जैनों का सिद्ध होता है। उन मुद्राओं में श्रीं ह्रीं आदि तात्रिक देवताओं का उल्लेख है। जैनधर्म में भी श्री ह्री घृति, कीर्ति, बुद्धि, लक्ष्मी ये छ· देवियां मानी जाती है जो हिमवन आदि कुलाचल पर्वतों पर निवास करती है और तीर्थंकर गर्भकल्याणक में आकर तीर्थंकर माता की सेवा करती है। मुद्राओं पर स्वस्तिक, बैल, हाथी,गेंडा, सिंह वृक्ष, आदि अकित हैं, जो तीर्थंकरो की मूर्तियों पर मिलते है।

1. ई हिक्क भाग 8 परिशिष्ट पृ 18
2 प्रो प्राणनाथ आई एच क्यु VIII 27–29
3 ई.हिक्क भाग 8 पृष्ठ 132
4. प्रतिष्ठा सारोद्धार (आशाधर)

क.1 (P.H.CX VI) और न 7 (P.H.CX VIII) की मुद्राओं पर एक पक्ति में छह नग्न योगी खडे हुए बतलाये है। उनके आगे एक भक्त घुटने टेके हुए बैठा है, जिसके हाथ मे छुरी है। उसके सामने एक बकरी खडी है। बकरी के सामने वृक्ष है। उसके बीच में मनुष्याकृति है।

(ई.हिक्का. भाग 8 पृ. 133)

यह दृश्य पशुबलि का बोधक बताया जाता है। भक्त वृक्ष मे विद्यमान देवता को बकरी की बलि चढ़ाकर खुश करना चाहता है। वही छह योगियों का अंकन इस बलि को न करने का उपदेश देते हुए बताया गया प्रतीत होता है। जैन ग्रंथों में भी भगवान नेमिनाथ के समय में छह.

चारण दि मुनियो के अस्तित्व का पता चलता है। (अंतगत दसाओ (अहमदाबाद)पृ 10) उस समय इससे अहिंसा प्रधान दि जैन मत का प्रचलित होना विदित होता है।

हडप्पा से प्राप्त दि मूर्ति (प्लेट पृ 10) सुन्दर है। उसके हाथ कायोत्सर्ग मुद्रा में हैं। इस मूर्ति का शिर व घुटनों के नीचे का भाग नहीं है। मोहनजोदडो मे एक सर्पफण वाली पद्मासन मूर्ति सुपार्श्वनाथ या पार्श्वनाथ तीर्थंकर के समान है।

(प्लेट. नं. 13 चित्र नं 15–16)

मोहनजोदडो के जैनो से द्रविड जातिका संबंध रहा है और द्रविड जैन थे।

(प्रेमी. पृ. 279–280)

पुरातत्व मे मथुरा का बौद्ध स्तूप और उस की मूर्तिया पटना जक्शन के पास से प्राप्त मौर्य कालीन दिगबर जैन मूर्तियां (जै सि भा भाग 13 पृ 96) खंडगिरि उदयगिरि धाराशिव, काठियावाड (ढंक) की गुफाओं की जिन प्रतिमाये ईस्वी पूर्व 8वीं शताब्दी से प्रथम शताब्दी तक चौबीस तीर्थंकरो की मान्यता को सिद्ध करती है।यह हाथी गुफा के शिलालेख से स्पष्ट है कि नन्द सम्राट् कलिग जिन की मूर्ति को ले गये थे, उसे सम्राट् खारवेल पीछे वापिस कलिंग ले आए। अत ऋषभ देव तीर्थंकर जैनधर्म के आदि तीर्थंकर थे यह प्रमाणित होता है।

मोहनजोदडो का अर्थ है मृतको का टीला। इसके उत्खनन का कार्य 1922–27 ई. के मध्य सरकार के पुरातात्विक विभाग सर्वेक्षण विभाग ने संपन्न किया। खुदाई मे जो सीलें प्राप्त हुई, उनसे जैन सस्कृति की प्राचीनता सिद्ध होती है। इस सिंधु घाटी की संस्कृति से ऋग्वेद से भी पूर्व भारत की सभ्यता की ओर दृष्टि जाना स्वाभाविक है। जैनधर्म प्रग्वैदिक है और भारत में योग परम्परा का प्रवर्तक है यह प्रमाणित होता है।

मोहनजोदडो की सीलों में जो योगियों की कायोत्सर्ग दिगबर मुद्रायें अंकित है उनसे जैन सस्कृति कम से कम 3250 ई पूर्व पुरानी तो है ही यह स्पष्ट ज्ञात होता है। जैनों के प्रथम तीर्थंकर ऋषभनाथ आत्मविद्या के आदि प्रवर्तक हैं। योगविद्या का प्रारंभ क्षत्रियों ने किया। उस युग में मूर्ति शिल्प का भी काफी विकाश हो चुका था। सीलो पर कायोत्सर्ग

नग्नमुद्रा और बैल का चिन्ह दोनो ही महायोगी ऋषभनाथ की प्रतिमा को जैन सिद्ध कर रहे है।

श्री राम प्रसाद चन्दा तथा महादेवन :-

ने तथ्यों की जो समीक्षा की है उनसे यह स्पष्ट हो गया है कि सिंधु घाटी सस्कृति मे जैनों को एक सामाजिक दर्जा प्राप्त था। सीलों में जो प्रतीक मिलते है उनसे तात्कालीन लोकमान्यता का अनुमान लगता है।

त्रिशूल, वृषभ , छहआराओ वाला कालचक, कल्पवृक्ष, वेष्टित कायोत्सर्ग प्रतिमायें इत्यादि महत्वपूर्ण हैं।

श्री महादेवन् :-

ने माना है कि मोहनजोदडो के सास्कृतिक घटन के समय जैनों का जो व्यापारिक विस्तार था उससे भी जैन सस्कृति का एक परिदृश्य हमारे सामने आता है। श्री महादेवन् के शोध निष्कर्ष पर ***श्री एस. वी. दाद*** की समीक्षा 'सडे स्टेडर्ड' के 19 अगस्त 1989 के अक मे प्रकाशित हुई थी। दोनों मे मोहनजोदडो मे जैनत्व के होने की सूचनाऐ हैं।(मोहनजोदडो. जैन परम्परा और प्रमाण – श्री मुनि विद्यानद कुन्दकुन्द भारती प्रकाशन दिल्ली दिसबर 1986)

नोट –उक्त स्वस्तिक आदि प्रतीको का स्पष्टीकरण इसी पुस्तिका मे दिया गया हैं।

प्रसिद्ध पुरातत्ववेत्ता डा. राखालदास बनर्जी :-

ने सिधु घाटी की सभ्यता का अन्वेषण किया है वहा के उत्खनन में उपलब्ध सील (मोहर न449) पर चित्रलिपि मे कुछ लिखा हुआ है। इस लेख को डा प्राणनाथ विद्यालकार ने 'जिनेश्वर' (जिन इ–इ सर) पढा है। पुरातत्ववेत्ता रायबहादुर चदा का वक्तव्य है कि सिंधु घाटी की मोहरों मे एक मूर्ति प्राप्त होती है, जिसमे मथुरा की ऋषभदेव की खड्गासन मूर्ति के समान त्याग और वैराग्य के भाव दृष्टिगौचर होते है। सील न द्वितीय एफ. जी.एच. मे जो मूर्ति उत्कीर्ण है, उसमे वैराग्य मुद्रा तो स्पष्ट है ही,उसके नीचे के भाग में ऋषभ देव के चिन्ह बैल का सद्‌भाव भी है।(माडर्न रिव्हयु, अगस्त,1935 सिधु फाइव थाउजेडस ईयर्स ओल्ड) मथुरा ककाली टीला के आविष्कार में ऋषभादि तीर्थंकरो की ऐतिहासिकता पर प्रकाश डाला है। वहा की पुरातत्व सामग्री मे लगभग 11 अभिलेख प्राप्त हुए है। वहीं एक स्तूप मे सं 78 की 18 वे तीर्थंकर अरहनाथ की प्रतिमा भी प्राप्त है। यह स्तूप इतना प्राचीन है कि इसकी रचना का समय ज्ञात करना कठिन है।

डा. विसेंट ए. स्मिथ :-

के अनुसार मथुरा सबंधी अन्वेषणों से यह सिद्ध है कि जैन तीर्थंकरो का अस्तित्व ईस्वी सन् के पूर्व मे विद्यमान था। चौबीस तीर्थंकरों की मान्यता सुदूर प्राचीनकाल में पूर्णतया प्रचलित थी। (दि. जैन स्तूप– मथुरा प्रस्तावना पृ 5)

डा. राधा कुमुद मुखर्जी :-

ने सिधु सभ्यता का अध्ययन कर लिखा है कि फलक 12 और 118 आकृति 7 (मार्शल कृत मोहनजोदडो) कायोत्सर्ग नायक योगासन में खडे हुए देवताओ को सूचित करती है। यह मुद्रा जैनयोगियो की तपश्चर्या में विशेष रूप से मिलती है– जैसे मथुरा सग्रहालय मे स्थापित तीर्थंकर देव की मूर्ति मे। ऋषभ का अर्थ है बैल जो आदिनाथ का चिन्ह है। सभव है यह ऋषभ का ही पूर्व रूप हो। यदि ऐसा हो तो शैव धर्म की तरह जैन धर्म का मूल भी ताम्र युगीन सिधु सभ्यता तक चला जाता है।

(हिन्दुसभ्यता (हिन्दी सस्करण) राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली,द्वितीय सस्करण, सन् 1958 पृ 23)

श्री पी.आर. देशमुख :-

के ग्रथ 'इडससिविलाइजेशन एण्ड हिन्दु कल्चर' मे स्पष्ट कहा है कि जैनो के पहले तीर्थंकर सिधु सभ्यता से ही थे। सिधुजनो के देव नग्न होते थे। जैन लोगो ने उस सभ्यता को बनाये रखा और नग्नतीर्थंकरो की पूजा की।

सिंधु जनो की भाषा प्राकृत थी। जैनो और हिदुओ मे भाषिक भेद है। जैनों के समस्त प्राचीन ग्रथ प्राकृत मे है। विशेषतया अर्धमागधी मे जबकि हिन्दुओ के सस्कृत मे। प्राकृत भाषा के प्रयोग से भी यह सिद्ध होता है कि "जैन प्राग्वैदिक हैं और उनका सिधु घाटी सभ्यता से सबध था।"

सस्कृति के चार अध्याय, (***रामधारी सिंह दिनकर***) पृ 130 में लिखा हैं रू –

'ऋषभ देव की कृच्छ साधना का मेल ऋग्वेद की प्रवृत्तिमार्गी धारा में नहीं बैठता। वेदोल्लिखित होने पर भी ऋषभदेव वेदपूर्व परम्परा के प्रतिनिधि हैं।'

'भारतीय इतिहास और सस्कृति' (डॉ विशुद्धानंद/डॉ जयशकर

मिश्र भारतीय विद्या प्रकाशन,108, कचौडी गली, वाराणसी) पृ. 199 देखिए—

"विद्वानों का अभिमत है कि यह धर्म प्रागैतिहासिक और प्राग्वैदिक है। सिंधु घाटी की सभ्यता मे मिली योगमूर्ति तथा ऋग्वेद के कतिपय मंत्रो मे ऋषभ और अरिष्ट नेमि जैसे तीर्थकरों के नाम इस विचार के मुख्य आधार हैं। भागवत और विष्णुपुराण में मिलने वाली जैन तीर्थंकर ऋषभदेव की कथा भी जैन धर्म की प्राचीनता को व्यक्त करती है।"

ऋषभदेव तीर्थंकर के ज्येष्ठ पुत्र भरत ने, जिनके नाम से भारत वर्ष है, सर्वप्रथम इस आर्य देश को उन्होने एक सूत्रता मे बाधने का प्रयत्न किया। ऋषभ के एक अन्य पुत्र का नाम द्रविड था। जिन्हे द्रविडो का पूर्वज कहा जाता है। ऋषभदेव द्वारा अनुप्राणित सस्कृति श्रमण सस्कृति कहलाई।

जिस समय मध्यदेश मे श्रमण सस्कृति धीरे—धीरे विकसित हो रही थी। उसी समय नागरिक सभ्यता का प्रारंभ नर्मदा नदी के काठे मे और सिधु नदी की घाटी में हो रहा था।

भारतीय पुरातत्व विभाग की ओर से वर्तमान शताब्दी के प्रारंभिक दशको मे सिधु प्रात के लरकाना जिले के तथा पश्चिमी मे पजाब के माण्टगुमरी जिले मे जो खुदाई और शोध खोज हुई उससे भारत मे प्राचीन नागरिक सभ्यता के अस्तित्व पर प्रकाश पडा है। पुरातत्त्वज्ञों ने यह पूरा नगर खोद निकाला हैं। पक्की ईंटो से सुन्दर भवन, बाजार, चौरास्ते, सभाभवन, अस्त्र—शस्त्रं, आयुध, मुद्रायें, मूर्तिया, आदि विविध प्राचीन सामग्री वहा से प्राप्त हुई है। गेहू की खेती, उसका खाद्यान्न में उपयोग, रूई की खेती उसके वस्त्र, स्वर्णाभूषण में एवं प्राचीन विद्याधरों के आविष्कार माने जाते हैं। इस सभ्यता का जीवनकाल ईसवी पूर्व 6000 से लेकर 2500 वर्ष तक रहा प्रतीत होता है। यह सभ्यता पिरामिडों, फैराओं बादशाही के पूर्ववर्ती प्राचीनतम मिश्र की नीलघाटी की सभ्यता तथा पश्चिमी एशिया में दजला फरात की घाटी की सुमेर सभ्यता से भी प्राचीन अनुमान की जाती है।

श्री रामप्रसाद चन्दा का कथन है :-

सिधुघाटी की अनेक मुद्राओं में अंकित न केवल बैठी हुई देवमूर्तियां योगमुद्रा में है और उस सुदूर अतीत में सिंधु घाटी में योगमार्ग के प्रचार

को सिद्ध करती है बल्कि खड्गासन देवमूर्तियॉ भी योग की कायोत्सर्ग मुद्रा में हैं और यह कायोत्सर्ग ध्यानमुद्रा विशिष्टतया जैन हैं। आदि पुराण आदि में इस कायोत्सर्ग मुद्रा का उल्लेख ऋषभ या वृषभ देव के तपश्चरण के संबंध में बहुधा हुआ है। जैन ऋषभ की इस कायोत्सर्ग मुद्रा मे खड्गासन प्राचीन मूर्तियां ईसवी सन के प्रारम्भ काल की मिलती है। प्राचीन मिस्र में प्रारंभिक राज्य वंशोंके समय की दोनो हाथ लटकाये खडी मूर्तियां मिलती है।

किन्तु यद्यपि इन प्राचीन मिस्री मूर्तियो तथा प्राचीन युनानी कुरोद नामक मूर्तियो में प्राय. वही आकृति है तथापि उनमें उस देहोत्सर्ग – निस्सग भाव का अभाव है जो सिधु घाटी की मुद्राओं पर अंकित मूतियॉ मे तथा कायोत्सर्ग मुद्रा से युक्त जिनमूर्तियो में पाया जाता है। ऋषभ शब्द का अर्थ वृषभ है और वृषभ जैन ऋषभदेव का चिन्ह है।

प्रो. प्राणनाथ विद्यालंकार :-

न केवल सिंधुघाटी के धर्म को जैन धर्म से सबधित मानते है वरन् वहां से प्राप्त एक मुद्रा (नं 449) पर तो उन्होने जिनेश्वर (जिनइइसरह) शब्द भी अकित रहा बताया है और जैन आम्नाय की श्री, ह्री, आदि देवियों की मान्यता भी वहा रही बतायी है। वहा के नागफण के छत्र से युक्त योगी मूर्तिया भी प्राप्त हुई है जो सातवे तीर्थकर सुपार्श्वनाथ की हो सकती है इनका चिन्ह स्वस्तिक है और तत्कालीन सिधुघाटी मे स्वस्तिक एक अत्यत लोकप्रिय चिन्ह दृष्टिगोचर होता है। सडके और गलिया तक स्वस्तिकाकार मिलती है।

डॉ. हेरास के अनुसार :-

"मोहनजोदडो का प्राचीन नाम नन्दुर अर्थात् मकर देश था। नन्दुर लिपि मनुष्य की सर्वप्रथम लिपि तथा यह सभ्यता मनुष्य की सर्वप्रथम सभ्यता थी।"

डा. हेरास :-

ने इस सभ्यता को द्रविडीय माना है। 'मकर' नवम तीर्थंकर पुष्पदंत का लांछन है। जानमार्शल सिंधु सभ्यता को उत्तर भारत के मध्य देश में उदित एव विकसित सस्कृति को मानते हैं। ***प्रो. एस.श्रीकंठ शास्त्री*** बतलाते है कि "अपने दिगम्बर धर्म, योगमार्ग, वृषभ आदि की पूजा आदि के कारण प्राचीन सिंधु सभ्यता जैन धर्म के साथ अद्भुत सादृश्य रखती

है, अतः यह मूलतः अनार्य अथवा कम से कम अवैदिक तो है ही।"

वैदिक सभ्यता

आर्य मूलतः भारत के ही निवासी थे। मध्यदेश के प्राचीन मानव वैदिक आर्यों की ही उस शाखा से सबंधित है जो ऋषभदेव के समय मे होने वाले मानवी सभ्यता के उदय के कुछ पूर्व पश्चिमोत्तर प्रदेश की ओर विचरण करके मूलशाखा से प्रायः अलग हो गई इसका एक कारण यह रहा कि उनका प्रवाह और विचरण पूर्व की ओर न होकर पश्चिमी एशियाई देशों की ओर हुआ। वहां से उत्तरी एशिया और पूर्वी एवं उत्तरी यूरोप आदि की ओर फैले। इनका प्रधान केन्द्र पश्चिमी एशिया रहा। उनकी एक शाखा ईरान में बस गई। एक अन्य शाखा फिर से भारत में आई। उनके जो जातिबंधु यहा पहले से पश्चिमोत्तर प्रदेश में बसे थे,उनमे नया उत्साह डालकर इन्होने सरस्वती नदी के तट पर अपनी स्थायी बास्तियाँ बनाई, ऋग्वेद के मंत्रो की रचना की और पशुहिंसा युक्त यज्ञवाली वैदिक संस्कृति को जन्म दिया। ***प्रो.के.ए.नीलकांत शास्त्री*** के अनुसार भारत का वैदिक युग भारतीय–ईरानी सभ्यता के विकास का एक पहलू है। प्राचीन ईरानी और वैदिक संस्कृति की अनेक प्रकार समानता से यह बात सिद्ध है।" (भारतीय इतिहास, एक दृष्टि, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन पृ 30 द्वि संस्करण1966)

मैक्समूलर :-

आदि वैदिक युग और ऋग्वेद के मत्रों का प्रारंभ काल ई.पूर्व 1200–1000 पर्यन्त निश्चित करते हैं। लोकमान्य तिलक और जैकोवी गणित ज्योतिष के आधार पर उसे ई पूर्व 6000 व 4000 के मध्य अनुमान करते है। ये अतिशयोक्तिपूर्ण माने जाने से बहुमत इस समय को लगभग ई.पूर्व 2000–1000 वैदिक सभ्यता का विकासकाल एवं उत्कर्ष काल मानता है। इसी बीच प्राचीन मिस्र की वशानुकमिक सभ्यता, प्राचीन इरानी सभ्यता, प्राचीन चीनी सभ्यता, पश्चिमी एशिया की अस्सुर, बाबुली, खिल्दियन, आदि सभ्यताओं भूमध्य सागर मध्यवर्ती हिट्टी, मितानी आदि सभ्यताओं तथा अमेरिका की माया सभ्यता आदि प्राचीन कालीन सभ्यताओं का आगे पीछे उदय एवं विकास हुआ। वैदिक सभ्यता की विशेषता ऋग्वेद के मंत्रों से जानी जाती है, उसमें ऋषभदेव की स्तुति के भी कुछ मंत्र है।

महामहोपाध्याय डॉ. सतीशचन्द्र लिखते हैं :-

जैन मत तब से प्रचलित हुआ है जब से संसार में सृष्टि का आरंभ हुआ है। मुझे इसमें किसी प्रकार उज्र नहीं है कि जैनधर्म वेदात आदि दर्शनों से पूर्व का है। 'यह बात सुनिश्चित है कि जैनधर्म और बौद्धधर्म न हिन्दू थे और न ही वैदिक तथापि वे भारत मे ही उत्पन्न हुये और भारतीय जीवन संस्कृति और दार्शनिक चितन के अभिन्न अंग रहे हैं। वे शत प्रतिशत भारतीय विचारधारा एव सभ्यता की उपज हैं। कितु वे हिन्दू नही हैं। अतएव भारतीय सस्कृति को हिन्दू सस्कृति कहना भ्रामक है।'

जवाहरलाल नेहरू (डिस्कवरी ऑफ इडिया)

कोलब्रूक, स्टीवेंसन, एडवर्ड थामस, तथा चार्ल खारपेटिएर :-

जैसे आधुनिक विद्वानो का मत है कि जैनधर्म महावीर से अधिक प्राचीन है। खारपेटिएर लिखते हैं कि "हमें ये दो बाते स्मरण रखनी चाहिये कि जैन धर्म महावीर से निश्चय ही प्राचीन है क्योकि उनके पहले के तीर्थंकर पार्श्व एक ऐतिहासिक व्यक्ति थे और इसलिये मूल धर्म के आचार विचार महावीर के काफी पहले अस्तित्व मे आ गये होगे।"

(यूवेर द लेवेन देस् जैन–मोन्खेस् हेमचन्द्र (जैनमुनि हेमचन्द्र के जीवन के बारे में) पृ.6 सी.जे शाह द्वारा उधृत पूर्वा पृ 191–192)

हड़प्पा की मोहरों पर

1 सील क्रमाक 4318, 210001 प य भर (ण) सील पर उकेरा गया चित्र सौम्य भाव लिए नग्न कायोत्सर्ग मुद्रा में दिखाया गया है। चित्र का संपूर्ण वातावरण जैनो के समान श्रमणिक प्रतीत होता है।

2 सील क्रमांक4307, 210001 य रह गण्ड/ग्रथि चित्र में जैनो के समान श्रमणिक परम्परा के एक मुनि की चित्रात्मक अभिव्यक्ति प्रतीत होती है।

3 सील क्रमाक 2222, 104701 य शासन कृर्त। सींग धारण किये हुए एक व्यक्ति तख्त जैसे आसन पर विराजमान है चित्र योग साधन मे रत एक व्यक्ति का है।

4 सील क्रमांक 2410, 100401, य व्रात्य/धर्म स्वसग जो व्रात्य या धर्म पुरूष अकेला है। जिसने सब बंधनो को त्याग दिया है, अकेला है। छोटे सिंग वाले साड का चित्र सील पर ऋषभ के प्रतीक के रूप में अकित किया गया है।

5. सील क्रमांक 4303, 216001 सत/सुत ज(द्व) व्रत यह ऋषभ पुत्र जड भरत चित्रित है।

नोट :– उक्त सीलों का उल्लेख श्री डा. रमेश जैन द्वारा कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ इन्दौर द्वारा प्रकाशित 'अर्हत् वचन' अक्टुबर–दिसंबर 2000 के अंक में पृ. 9–16 पर प्रकाशित सचित्र लेख के आधार पर किया गया है। यह उन्होने अपने 'सब्जेक्ट मेटर ऑन द हडप्पन इंस्क्रिपशन्स' शोधपत्र से लिखा है।

1921 *में डा. बनर्जी :-*

द्वारा मोहनजोदडो मे बौद्ध अवशेषों की खोज में हडप्पा के समान सीले प्राप्त कीगई किन्तु बौद्ध बिहार मे पूर्व की ओर खुदाई करने पर ऐसे महत्व के अवशेष प्राप्त हुए जो बौद्ध अवशेषों से दो या तीन हजार वर्ष पूर्व के थे। इन खोजों के फलस्वरूप यह स्थित हुआ कि मोहनजोदडो और हडप्पा मे आर्य पूर्व कालीन नगर विद्यमान थें और वहां से प्राप्त अवशेष एक ही आर्य पूर्व कालीन सभ्यता से संबद्ध है। जिसका काल ईसा से चार हजार वर्ष पूर्व है। तथा भारत मे आर्यो का प्रवेश ईस्वी पूर्व दो हजार वर्ष तक नहीं हुआ और उनकी सभ्यता का सिंधु घाटी मे फैली हुई सभ्यता से कोई सबंध नही था। जो स्पष्ट रूप से द्रविडों की अथवा आदि द्रविडो की सभ्यता थी, जिनके उत्तराधिकारी दक्षिण भारत मे निवास करते है।

(प्री.ति.इं भू.पृ. 8)

सिधु घाटी मे प्राचीन निवासी कृषक और व्यापारी थे। उनकी उच्च सामाजिक व्यवस्था उनके द्वारा सुंनिश्चित और अच्छी रीति से निर्मित नगरो से लक्षित होती है। इस प्रकार द्रविडों की अपनी एक पृथक सभ्यता थी।

श्रमण संस्कृति का प्राग्वैदिक अस्तित्व

उक्त शीर्षक द्वारा 'अतीत के अनावरण' में बताया गया है कि आर्य लोग हिन्दुस्तान में आये उससे पहले यहां एक ऊंची सभ्यता, संस्कृति, और धर्म चेतना विद्यमान थी। मोहनजोदड़ो और हड़प्पा की खुदाई से प्राप्त ध्वंसावशेषों से यह प्रमाणित हो चुका है। पुरातत्वविदों के अनुसार जो अवशेष मिले हैं, उनका संबध श्रमण संस्कृति से है। अतः यह प्रमाणित होता है कि आर्यो के आगमन के पूर्व यहां श्रमण संस्कृति विकसित अवस्था में थी। इस तथ्य की संपुष्टि के लिए साहित्य और पुरातत्व दोनो का अवलबन लेना है। भारतीय साहित्य में वेद बहुत प्राचीन माने जाते है। उनमे तथा उनके पार्श्ववर्ती ग्रन्थो मे आए हुए शब्द वातरशन, श्रमण, केशी, ब्रात्य और अर्हन् ये श्रमण संस्कृति की प्राग्वैदिकता के प्रमाण है।वातरशन मुनि–वातरशन श्रमण (यह पहले लिखे जा चुके हैं) ऋग्वेद मे

मुनयो वातरशना पिशंगा वसते मला।
वातस्यानु ध्राजियन्ति यद्देवासो अविक्षत।।
उन्मदिता मौनेयेन वार्ता आतस्थिमा वयं।
शरीरेऽस्माकं यूयं मर्तासो अभिपश्यथ।।

इसी प्रकरण मे मोनेय शब्द भी प्रयुक्त हुआ है वातरशन मुनि अपनी मौनेय की अनुभूति मे कहता है–मुनि भाव से प्रमुदित होकर हम वायु में स्थित हो गए, हे मर्त्यो, तुम हमारा शरीर मात्र देखते हो।

(ऋग्वेद म 10, अ 11,सूत्र136 ।3)

तैत्तिरीयआरण्यक (2/7/1 पृ 137) मे श्रमणो को वातरशन ऋषि और ऊर्ध्व मन्थी कहा है–

वातरशना हवा ऋषयः श्रमणाऊर्ध्वमन्थिनोबभूवुः।
ये श्रमण भगवान ऋषय के शिष्य है। श्रीमद्भागवत् में -
धर्मान् दर्शयितु कामो वातरशनानां श्रमणाना
मृषीणां मूर्ध्व मन्थिनां शुक्लया तनुवावतार।

अर्थ– भगवान ऋषभ श्रमणों, ऋषियों तथा ब्रह्मचारियो (ऊर्ध्वमन्थिनः) का धर्म प्रकट करने के लिए शुक्ल सत्वमय विग्रह(शरीर) से प्रकट हुए। वानरशन शब्द श्रमणों का सूचक है। यह मुनि का वाचक है। केशी शब्द भी भगवान ऋषभ का वाचक है। जबूद्वीप प्रज्ञप्ति वक्षस्कार 2पृ.30 में लिखा है

कि भगवान ऋषभ ने मुनि दीक्षा के समय केशलोच करते समय, दो मुष्टि लोंच कर लेने पर इन्द्र द्वारा निवेदन करने पर आजूबाजू के केश छोड़ दिये तब से उनकी मूर्ति पर आजूबाजू दोनों कंधों पर केश रखे जाते है। उन्हे केशी इसी लिए कहा जाता है।

केश्यग्नि केशी विषं केशी बिभर्ति रोदसी।
केशी विश्वं स्वदृशे केशीदं ज्योति रुच्यते।।

(ऋग्वेद म.10,अ.11 सू.136/1) ऋग्वेद में 10/9/102/6 मे केशी और वृषम का एक साथ उल्लेख है।

आचार्य विनोबाभावे 'हरिजनसेवक' 30 मई १९४८ द्वारा लिखते है :-

ऋग्वेद सहिता 2, अध्याय 4, सूत्र 33, मं.10, मे अर्हन् शब्द इस प्रकार आया है–

अर्हन् बिभर्षि सायकानि धन्वार्हन्निष्कं यजतं विश्व रूपं।
अर्हन्निदं दयसे विश्व मम्वं न वा ओजीयां रूद्र वदस्ति।।

उक्त मंत्र में अर्हन्निंद दयसे विश्वमम्वं, इसे उद्‌धृत कर लिखा है कि हे अर्हन्। तुम जिस तुच्छ दुनिया पर दया करते हो। इसमे अर्हन् और दया दोनो जैनों के प्यारे शब्द है। मेरी तो मान्यता है कि जितना हिन्दू धर्म प्राचीन है, शायद उतना ही जैनधर्म भी प्राचीन है।'

अर्हन् शब्द का प्रयोग वैदिक विद्वान् भी श्रमणो के लिए करते रहे हैं। हनुमन्नाटक मे लिखा हैं – "अर्हन्नित्यथ जैन शासन रताः"। ऋग्वेद के अर्हन् शब्द से यह प्रमाणित होता है कि **श्रमण संस्कृति ऋग्वैदिक काल** से पूर्ववर्ती है। श्री जयचन्द्र विद्यालंकार ने व्रात्यों को अर्हतों का अनुयायी माना है। उन अर्हतो और चैत्यो के अनुयायी व्रात्य कहलाते थे, जिनका उल्लेख अथर्ववेद में आया है।

(भारतीय इतिहास की रूपरेखा प्रथम जिल्द पृ.402)

जेकोबी को यह स्वीकार करना पड़ा है कि जैन मान्यता मे कुछ ऐतिहासिकता है। पूर्वकाल में मनुष्यों की आयुकाय लंबी और बड़ी होती थी। मोहनजोदड़ो (सिंधु) के मानव शरीरों के जो अस्थिपंजर मिले है, वे इसके साक्षी हैं। वहा से लगभग चार पांच हजार पुरानी मुद्रायें और मूर्तियाँ मिली है, जो कुछ विद्वानों के अनुसार जैन मूर्तियों से मिलती है।

यथार्थतः जैनधर्म का इसकाल में आदिप्रचार ऋषभदेव द्वारा ही हुआ है। ब्राह्मण एवं बौद्ध साहित्य और शिलालेखीय साक्ष्य भी यही

बताते हैं । यों तो स्वयं ऋग्वेद में ही ऋषभ नामक व्यक्ति का उल्लेख है, परन्तु विद्वानों को शंका है कि वह जैन तीर्थंकर थे। सायण ने यह व्यक्ति वाचक नाम बताया है। यहां हिन्दू पुराण इस प्रकरण को स्पष्ट कर देते है। उनमें सिर्फ एक ही ऋषभ का वर्णन है, जो जैन तीर्थंकर के सर्वथा अनुकूल है। अतः प्रो. विरूपक्ष वडियर वेदतीर्थ के मतानुसार ऋग्वेद में प्रथम तीर्थंकर का उल्लेख मानना अनुचित नहीं हैं। भारत और मानव संस्कृति (पृ 114) अब देखना है कि भारत में वैदिक धर्म से जैनधर्म मे विशेषता कहा है ? वैदिक धर्म के मुताबिक मुख्य धर्म यज्ञ था। उसमे पशुवध आवश्यक था। जैनधर्म का प्रधान विषय था अहिंसा। वैदिक धर्म मे यज्ञ के लिए गौ आलंभनीय थी और जैनधर्म में प्रधान व्रत ही गौ रक्षा था।

भारत वर्ष मे गोमेध के लुप्त होने की बात आज भी किसी की कल्पना में नहीं आ सकती। जो वेद से पूर्व की अति प्राचीन धर्म धारा का अनुकरण करते हुए भारत में ऐसी महान आकस्मिक घटना बन सकी, उसी धर्म धारा के साथ शायद जैन और बौद्धादि अहिंसा वादियो का मूलतः योग था।

एक समय जैनमत दक्षिण भारत में प्रतिष्ठित था जैनमत सिर्फ वहीं तक था, इतना ही नहीं, परन्तु उससे भी अति प्राचीन भारतीय भाव शायद जैनमत के आदिकाल में आया हो।

भारत की पूर्वस्थिति

भारत की प्राचीन स्थिति कुछ भिन्न थी। उत्तर भारत और दक्षिण भारत के निवासियों का परस्पर संबंध कम था। भारत का विस्तार अफगानिस्तान से आगे तक विस्तृत था। मगध और नेपाल के नीचे तक समुद्र की खाड़ी फैली हुई थी। राजपूताना में भी समुद्र जल की लहरें विद्यमान थी। दक्षिण भारत में मलय पर्वत से पश्चिम दक्षिण में स्थल था। वह अब समुद्र में समाया हुआ है। उस समय द्रविड और असुर जाति के मूल निवासी समस्त भारत में फैले हुए थे। उनके अवशेष आज भी विलोचिस्तान, सिंधु ओर दक्षिण में चन्द्रहल्ली आदि स्थानों पर उपलब्ध हैं। ये मूल निवासी द्रविड़ सभ्य और धर्मकर्म को पहचानने वाले थे। दक्षिण भारत में तीर्थंकर ऋषभदेव ने अहिंसा संस्कृति का प्रचार किया था। दक्षिण के प्राचीन ग्रंथ थोल्कप्पियम् और सिलप्पदिकारम् महाकाव्य ग्रंथों से वहां जैन संस्कृति के अस्तित्व का पता चलता है।

(सं.जै. ई. भाग 3, खंड 1–2)

अभिमत जैनधर्म के संबंध में

1. मेरा सुनिश्चित विश्वास है कि जैनधर्म एक मौलिक दर्शन है, अन्य समस्त धर्मों एव दर्शनों से वह स्पष्टतया पृथक् एव सर्वथा स्वतंत्र है और इसी कारण प्राचीन भारत के दार्शनिक विचारों एवं धार्मिक जीवन का अध्ययन करने के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

डॉ.हर्मन जेकोबी (जे.ए.एक्स,1 पृ–40)

2. हम विश्वास के साथ कह सकते हैं कि अहिंसा प्रधान जैन धर्म सभवतया उतना ही अधिक प्राचीन तो है ही जितना कि वैदिक धर्म, यदि ओर अधिक भी नहीं तो इसमे कोई संदेह नहीं कि यह अहिंसा धर्म वेदों जितना प्राचीन अवश्य है।

कल्चरल होरेटेज आफ इडिया (भा 1,पृ185)

3 मोहनजोदडो से उपलब्ध ध्यानस्थ योगियो की मूर्तियों की प्राप्ति से जैनधर्म की प्राचीनता निर्विवाद सिद्ध होती है। वैदिक युग मे ब्रात्यों और श्रमण ज्ञानियों की परम्परा का प्रतिनिधित्व भी जैनधर्म ने ही किया। धर्म,दर्शन,सस्कृति, और कला की दृष्टि से भारतीय इतिहास में जैनधर्म का विशेष योग रहा है।

बाचस्पति गैरोला (भा.दर्शन पृ 93)

4 जैनो और उनके धार्मिक साहित्य का जो वर्तमान में उपलब्ध ज्ञान है, उसके बल पर यह सिद्ध करना कठिन नहीं है कि बौद्धधर्म या ब्राह्मण धर्म की शाखा होने की बात तो बहुत दूर रही, जैनधर्म भारतवर्ष का सर्वप्राचीन स्वदेशीय धर्म है।

प्रो एम एस.रामास्वामी आयगर (जै.ग., भा.16 पृ.212)

5. जो धर्म अधिक सरल हो उसे ही अपेक्षाकृत अधिक जटिल मत का पूर्वज मानना ही चाहिये और जैनधर्म से अधिक सरल धर्म कौन हो सकता है, चाहे पूजा–पद्धति, कियाकांड अथवा नैतिक आचार, किसी भी दृष्टि से देखे।

डॉ.ई.डब्ल्यु.टामस–व मेजर जनरल फर्लोंग
(जैनिज्म दी ओल्डेस्ट लिविंग रिलीजन पृ.36 पर उद्धृत)

6 भारत के महान सन्तों जैसे जैनधर्म के तीर्थंकर ऋषभदेव व भगवान महावीर के उपदेशों को हमें पढ़ना चाहिए। आज इन्हें अपने

जीवन मे उतारने का सबसे ठीक समय आ पहुँचा है, क्योंकि जैनधर्म का तत्वज्ञान अनेकान्त (सापेक्ष पद्धति) पर आधारित है और जैनधर्म का आचार अहिंसा पर प्रतिष्ठापित। जैनधर्म कोई पारम्परिक विचारों, ऐहिक व पारलौकिक मान्यताओं पर अन्धश्रद्धा रखकर चलने वाला सम्प्रदाय नहीं है, वह मूलतः एक विशुद्ध वैज्ञानिक धर्म है। उसका विकास एवं प्रसार वैज्ञानिक ढंग से हुआ है, क्योंकि जैनधर्म का भौतिक विज्ञान और आत्मविद्या का कमिक अन्वेषण आधुनिक विज्ञान के सिद्धान्तो का विस्तृत वर्णन किया है, जैसे कि पदार्थ विद्या, प्राणी शास्त्र, मनोविज्ञान और काल, गति, स्थिति, आकाश एवं तत्वानुसधान। श्री जगदीश चन्द्र वसु ने वनस्पति मे जीवन के अस्तित्व को सिद्ध कर जैन धर्म के पवित्र धर्म शास्त्र भगवतीसूत्र के वनस्पतिकाायिक जीवो के चेतनत्व को प्रमाणित किया है।

अनन्तशयनम् आयंगर (भू पू अध्यक्ष, लोकसभा)

7 साफ प्रगट है कि भारतवर्ष का अध.पतन जैनधर्म के अहिसा सिद्धान्त के कारण नही हुआ था, बल्कि जब तक भारतवर्ष मे जैनधर्म की प्रधानता रही थी, तब तक उसका इतिहास स्वर्णाक्षरो मे लिखे जाने योग्य है, और भारतवर्ष के मुख्य ह्रास का कारण आपसी प्रतिस्पर्धामय अनैक्य है, जिसकी नीव शकराचार्य के समय मे रखी गई थी।

रेव जे स्टीवेन्सन(जैनमित्र व 24 अक 40)

8 जैनधर्म का मूल मत्र अहिंसा है, और अहिंसावाद एक ऐसा दर्शन है जो आर्यो के उदय के पूर्व से चला आ रहा है।

एस.एन गोखले (इंडियन थियोसोफिस्ट)

9 सब जीवो के साथ सहानुभूति तथा दया रखना जैनधर्म का प्रधान सेद्धान्त है। 'अहिसा परमोधर्म' ही जैन दर्शन का मूल मत्र है। जैन दर्शन सब मतो के लिये आदर दिखलाता है? जैनधर्म मे अन्य धर्मो अथवा मतों के लेये सहिष्णुता पाई जाती है। जैन दार्शनिक का यह मत है कि प्रत्येक ादार्थ को भिन्न-भिन्न दृष्टिकोणों से देखने से अनन्त रूप हो सकते हैं। प्रतएव हमे अपने ज्ञान तथा विचार की सीमाओं को ध्यान में रखते हुए केसी खास मत को ही बिलकुल सच्चा या झूठा नहीं मान लेना चाहिये। इस प्रकार जैन दर्शन के अनुसार सब धर्म किसी अश में सत्य हैं।

सॉवलिया बिहारी लाल वर्मा (विश्व धर्म-दर्शन, पटना, पृ 157)

10. हिन्दू धर्म पर इस धर्म का बड़ा प्रभाव पड़ा हैं। जैनों के चौबीस तीर्थंकरों की भाँति विष्णु के चौबीस अवतार निश्चित कर मूर्तिपूजा प्रचलित करनी पड़ी। जैनों के सात तीर्थों को भाँति हिन्दुओं ने भी सात पुरियों की महत्ता कायम की। जैनधर्म के महावाक्य 'अहिंसा परमोधर्मः' को स्वीकार कर इसे वैष्णव धर्म का मूलमंत्र बनाया।

(वही–पृ. 231)

11. जैनधर्म के ऋषभदेव से लेकर महावीर तक चौबीस तीर्थंकर को चुके हैं। तीर्थंकरो का पुर्नजन्म नही होता, वे दैवी आभा हो जाते है। इस प्रकार महावीर जैनधर्म के सस्थापक नहीं थे, किन्तु जैनधर्म के वर्तमान रूप के संस्थापक एव प्रवर्तक थे।

(वही–पृ. 131)

12 इतिहास को जानने का दावा करने वालों मे से अनेक ऐसे हैं जो यह नहीं जानते कि बुद्ध के जन्म से लाखों वर्ष पूर्व से एक या दो नहीं वरन् अनेक तीर्थंकर अहिंसा धर्म का प्रचार करते चले आये थे। जैनधर्म एक अत्यन्त प्राचीन धर्म है और भारतीय सस्कृति को उसने बहुत कुछ दिया है। जैनधर्म किसी जाति विशेष का धर्म नहीं हैं वरन् वह तो प्राणी मात्र का धर्म है, अन्तरराष्ट्रीय एवं विश्वधर्म है।

डॉ कालिदास नाग(अनेकांत वर्ष 10 पृ 224)

13 जिनेन्द्र का धर्म सच्चा धर्म है, यह पृथ्वी पर मानव मात्र का धर्म है।

रेव जे.ए डुबोय

14. आजकल यज्ञो मे पशुहिसा नहीं होती, ब्राह्मण और हिन्दूधर्म मे मासभक्षण और मदिरापान बन्द हो गया, सो यह भी जैनधर्म का प्रताप है। जैनधर्म की छाप ब्राह्मणधर्म पर पडी है।

लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक (जैनधर्म का महत्व सूरत, भाग 1, पृ 81)

15 प्रत्येक धर्म की उच्चता इसी बात में है कि उसमें अहिंसा तत्व की प्रधानता हो। अहिंसा तत्व को यदि किसी ने अधिक से अधिक विकसित किया है तो वह महावीर स्वामी थे। पहले मैं मानता था कि मेरे विरोधी अज्ञान में हैं, आज मैं विरोधियों से प्यार करता हूँ, क्योकि अब मैं अपने विरोधियों की दृष्टि से भी देख सकता हूँ, मेरा अनेकान्तवाद, सत्य और अहिंसा इन युगल सिद्धान्तों का ही परिणाम है।

राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी (महावीर स्मृति ग्रंथ–आगरा भाग 1, पृ. 2)

16 सर्वोदय शब्द नया नहीं है, प्राचीन शब्द है, जैन शास्त्रों मे आया

है। जैनों की सबसे बड़ी देन है, मासाहार त्याग। इस्लाम ने आक्रमण किया, क्रिश्चियनो ने भी आक्रमण किया, परन्तु जैनधर्म ने किसी पर आक्रमण नहीं किया।

सर्वोदयी नेता संत विनोबा भावे

17. यह बात सुनिश्चित है कि जैनधर्म और बौद्धधर्म न हिन्दू ही थे और न वैदिक, तथापि वे भारतवर्ष मे ही उत्पन्न हुए और भारतीय जीवन, संस्कृति एवं दार्शनिक चिन्तन के अभिन्न अंग रहे हैं। वे शत–प्रतिशत भारतीय विचारधारा एवं सभ्यता की उपज हैं किन्तु वे हिन्दू नहीं है। अतएव भारतीय संस्कृति को हिन्दू संस्कृति कहना भ्रामक है।

जवाहर लाल नेहरू (डिस्कवरी आफ इंडिया)

18 आधुनिक ज्ञान–विज्ञान की भित्ति पर जो किले मानव समाज ने बनाये हैं और बनाता जा रहा है उनकी सुरक्षा के लिए आध्यात्मिक तत्व का सहारा लेना आवश्यक है। भगवान महावीर के जीवनचरित्र और उनकी शिक्षाओ से हमें वे तत्व आसानी से मिल सकते हैं।

राष्ट्रपति डॉ. राजेन्द्र प्रसाद

19 भगवान महावीर के संदेश किसी खास कौम या फिरके के लिए नहीं है, बल्कि समस्त ससार के लिए है।

चक्रवर्ती राजगोपालाचारी

20 जैनधर्म ने सिद्ध कर दिया है कि लोक और परलोक के सुख की प्राप्ति अहिंसाव्रत से ही हो सकती है।

डा श्रीप्रकाश

21 जैनाचार्यो की यह वृत्ति अभिनन्दनीय है कि उन्होने ईश्वरीय आलोक (रिवेलेशन) के नाम पर अपने उपदेशों मे ही सत्य का एकाधिकार नहीं बताया। इसके फलस्वरूप उन्होने साम्प्रदायिकता और धर्मान्धता जैसे उन दुर्गुणों को दूरकर दिया, जिनके कारण मानव इतिहास भयकर द्वन्द्व और रक्तपात के द्वारा कलंकित हुआ है।

डा.एम वी. नियोगी

22. यह सर्वविदित है कि जैनधर्म की परम्परा अत्यन्त प्राचीन है। भगवान महावीर अन्तिम तीर्थंकर थें। उन्होने श्रमण परम्परा को अपनी तपश्चर्या के द्वारा एक नयी शक्ति प्रदान की जिसको पूर्णतम परम्परा का सम्मान दिगम्बर परम्परा मे पाया जाता है। भगवान महावीर से पूर्व 23

तीर्थंकर हो चुके थे— उन्हीं में भगवान् ऋषभदेव प्रथम तीर्थंकर थे जिसके कारण उन्हें आदिनाथ कहा जाता है। ऋषभनाथ के चरित ये उल्लेख है कि महायोगी भरत ऋषभदेव के शत पुत्रों में ज्येष्ठ थें और उन्हीं से यह देश भारत वर्ष कहलाया।

डा. वासुदेव शरण अग्रवाल

23. बौद्धधर्म की अपेक्षा जैनधर्म अधिक, बहुत अधिक प्राचीन है, बल्कि यह उतना ही पुराना है जितना कि वैदिक धर्म। जैन अनुश्रुति के अनुसार मनु चौदह हुए हैं। अन्तिम मनु नाभिराय थे। उन्हीं के पुत्र ऋषभदेव हुए, जिन्होनें अहिंसा और अनेकान्त आदि का प्रवर्तन किया। भरत ऋषभदेव के ही पुत्र थे, जिनके नाम पर हमारे देश का नाम भारत पड़ा।

डा. रामधारी सिंह 'दिनकर'

24. जैनधर्म के सारे संकेतों से स्पष्ट मालूम होता है कि इस धर्म का प्रभाव बेबिलोन से लेकर यूरोप तक सर्वत्र व्याप्त था। ईसापूर्व 7वीं सदी में यूनानी मनीषी पैथागोरस निकले। वह एक जैन साधक थे और जैन सन्यासी भी। इस तरह जैनधर्म संसार के सारे धर्म तथा मानविक आत्मविकास के मूल में है। कहा जा सकता है कि इसी के ऊपर मानव समाज के विकास की प्रतिष्ठा आधारित है।

डा. नीलकंठ दास, भुवनेश्वर

25. जैनियो का निरीश्वरवाद इतना उदार तथा व्यापक है कि हमारे जैसे अजैनी और ईश्वरवादी के लिए वह ईश्वरवाद ही है। कई दृष्टियों से उससे ऊपर उठ जाता है । वेदान्त यदि एकवाद है तो जैन धर्म अनेकान्तवाद है।

डा. परिपूर्णानन्द वर्मा

26. यदि हम भगवान् महावीर के बताए हुए मार्ग पर चलें तो संसार की बहुत सारी मौजूदा समस्याऐं हल हो सकती है।

डा.गोपालस्वरूप पाठक(उपराष्ट्रपति)

27. ***बाबू विमलचरण लाल एम.एस.ए.कलकत्ता*** - अपनी पुस्तक **Historical Gleaning** में लिखते है – भारत के इतिहास में जैन धर्म ने जरूरी काम किया है। यह धर्म निःसंदेह बौद्ध धर्म से पुराना है। यह भी प्रगट है कि महावीर स्वामी गौतम बुद्ध के समकालीन होते हुए भी

पुराने थे। कथाओं के अनुसार जैनियो के सिद्धांत, भारत में बहुत प्राचीन काल से मौजूद थे। रिषभ नेमि आदि तीर्थंकरों के नाम वैदिक साहित्य में प्रसिद्ध हैं जैन धर्म के पालने वालों को पहले निर्ग्रंथ कहते थे। यह प्रमाणित है कि बौद्ध धर्म की स्थापना के समय मे निर्ग्रंथ लोग एक विशाल व प्रभावशाली समूह में थे। उनका क्रियाकांड, तत्व ज्ञान व संगठन तब मौजूद था।

28. ***सर डा. सर्वपल्ली राधाकृष्णन्*** अपनी पुस्तक 'दी इडियन फिलोस्फी' में लिखते हैं– जैन पुराणो में ऋषभदेव को जैन धर्म का संस्थापक कहा है। इस बात के प्रमाण मिले है कि सन् ई. से 100 वर्ष पहले लोग श्री ऋषभ की पूजा करते थे जो पहले जैन तीर्थंकर है। इसमे कोई सदेह नहीं है कि जैन धर्म श्री वर्द्धमान और श्री पार्श्वनाथ तीर्थंकर से भी पहले फैला हुआ था। यजुर्वेद मे ऋषभ, अजित व अरिष्ट नेमि इन तीन तीर्थंकरो के नाम प्रसिद्ध है। भागवत् पुराण भी यहीं कहता है कि ऋषभ ने जैन धर्म स्थापित किया। गत 2300 वर्षो के इतिहास को देखा जावे तो प्रगट होगा कि जैन राजाओं ने सेनापतियो ने मन्त्रियो ने व सेठो ने भारत के प्रसिद्ध राजनैतिक काम किये है।

यूनानियो के आक्रमण को रोकने वाले व भारत साम्राज्य को प्रभावशाली बनाने वाले महाराज चन्द्रगुप्त मौर्य जैन धर्मी थे। उनके पोते प्रसिद्ध अशोक भी अपने पूर्व राज्य काल मे जैनी थे। सन् ई से 150 वर्ष पूर्व कलिग देश का सम्राट् राजा खारवेल जैनी था यह बात उडीसा के खडगिरि, उदयगिरि के शिला लेख से प्रगट है।

दक्षिण व पश्चिम मे राज्य करने वाले अनेक वशो के अनेक राजा जैनी थे। गगवश के सर्व राजा जैनी थे। इस वंश ने दूसरी से ग्यारहवीं शताब्दी तक दक्षिण मे राज्य किया था। राष्ट्रकूट वश के प्रसिद्ध राजा अमोघवर्ष जैनी थे। गग वशी राजा राचमल के प्रसिद्ध सेनापति चामुण्डराय जैन थे जिन्होंने मैसूर के श्रवणवेलगोला स्थान के पर्वत पर जगत की आश्चर्यकारी 56 फुट ऊंची ध्यानस्थ श्री गोम्मट स्वामी की मूर्ति दशवीं शताब्दी में स्थापित की थी। गुजरात के प्रसिद्ध कुमारपाल राजा जैनी थे। करोड़ो रूपयों से अद्भुत कला के आबू पर्वत के जैन मन्दिर निर्माता वस्तुपाल व तेजपाल व विमलपाल प्रसिद्ध सैनिक व राज्य मन्त्री थे। राणा प्रताप को उदयपुर राज्य पुन सस्थापन कराने में प्रचुर धन की सहायता देने वाले भामाशाह सेठ जैनी थे। जयपुर के प्रसिद्ध दीवान अमरचन्द जिनके कारण जयपुर राज्य में पशु वध

बन्द हुआ था, जैन थे। दक्षिण व गुजरात में मांसाहार प्रचार की कमी होने में कारण जैन राजाओं का शासन है। हजारों शिलालेख जैन राजाओं की कीर्ति को स्थापित करते है।

(ब्र. शीतलप्रसाद)

29 ***प्रो. तान-युन-शान, अध्यक्ष चीना भवन, विश्वभारती*** "सबसे पहले जैन तीर्थंकरों द्वारा अहिंसा के सिद्धांत की गंभीर एवं कमिक व्याख्या की गई और उसका भली प्रकार तथा विशेष नया प्रचार किया गया और यह भी अधिक महत्व के साथ वर्द्धमान महावीर के द्वारा हुआ"

30. ***डा. एच. बुड्स एक्सटर्डम, हालैंड :-*** अंतिम तीर्थंकर महावीर विषयक चिंतन हमें प्राचीन भारतीय संस्कृति के मूलाधार द्वारा किया साधारणतया समग्र भारतीय संस्कृति के संपर्क में लाया है।

31 ***प्रो. डा. लुई रिनाउड, पेरिस, फ्रांस :-*** तीर्थंकरों की मान्यता अत्यंत प्राचीन है जैसाकि मथुरा के पुरातत्व से सिद्ध है।

(रिलीजन्स आफ एन्सिएंट इंडिया पृ.111–112)

32. ***महात्मा शिवव्रत लाल जी वर्मन एम.ए. :-*** जैनधर्म तो एक अपार समुद्र है जिसमें इन्सानी हमदर्दी की लहरें जोरशोर से उठती है।

(जैनधर्म का महत्व सूरत, भाग–1, पृ.1–14)

33. ***जार्ज बर्नार्डशा :-*** जैनधर्म के सिद्धांत हमें अत्यंत प्रिय हैं। मेरी इच्छा है कि मृत्यु के पश्चात् मैं जैन परिवार में जन्म धारण करूं।

(जैन शासन पृ.430)

34 ***डा. जे.जी. बुल्हर, सी.आई.ई., एल.एल.डी. :-*** जैन धर्म के प्राचीन स्मारकों से भारत वर्ष के प्राचीन इतिहास की बहुत जरूरी और उत्तम सामग्री प्राप्त होती है। जैन धर्म प्राचीन सामग्री का भरपूर खजाना है।

(भारतवर्ष के प्राचीन जमाने के हालात पृ.307)

35. ***प्रो. डा. मेक्समूलर एम.ए., पी.एच.डी. :-*** जैनधर्म अनंतानंत गुणों का भंडार है, जिसमें बहुत ही उच्चकोटि का तत्व–फिलासफी भरा हुआ है। ऐतिहासिक, धार्मिक और साहित्यिक तथा भारत के प्राचीन कथन जानने की इच्छा रखने वाले विद्वानों के लिए जैनधर्म का स्वाध्याय बहुत लाभदायक है।

(इन्साइक्लोपीडिया)

36. ***डा. चार्लोट क्रौ.ज. संस्कृत प्रोफेसर बर्लिन यूनिवर्सिटी :-*** जैन धर्म के सिद्धांतों पर मुझे दृढ़ विश्वास है यदि सब जगह उसका पालन किया जावे तो वह इस पृथ्वी को स्वर्ग बना देगा। जहां तहां शांति और आनंद ही आनंद होगा।

(जैन वीरों का इतिहास और हमारा पतन अन्तिम पृष्ठ)

37 ***डा. एम.ए.बी. संट :-*** हांलाकि यह बात स्पष्ट रूप से सिद्ध हो चुकी है कि महावीर अंतिम चौबीसवें तीर्थंकर थे।इनसे पहले अन्य तेईस तीर्थंकर हुए जिन्होने अपने–अपने समय में जैनधर्म का प्रचार किया।

(जैनगजट भा.10, पृ 4)

38 ***मि.आर्ब जे.ए.डबाई मिशनरी :-*** निःसदेह जैनधर्म ही पृथ्वी पर एक सच्चा धर्म है और यही मनुष्य मात्र का आदि धर्म है।
(डिस्क्रिप्सिन आफ दी करैटर मैनर्स एण्ड कस्टम्ज ऑफ दी पीपिल आफ इंडिया)

39 ***प्रज्ञाचक्षु गोविन्द राम काव्य तीर्थ :-*** वैशाली के महाराज चेटक थे, जो तेइसवें तीर्थंकर पार्श्वनाथ के तीर्थ के जैन साधुओं के भक्त और बडे पक्के जैनी थे। उन्होने प्रतिज्ञाकर रखी थी कि अपनी पुत्रियो का विवाह जैनधर्मावलबियो से ही करूँगा।

40 ***आर.देशमुख. :-*** ने 'इडस सिविलाइजेशन ऋग्वेद एण्ड हिन्दू कल्चर' अपनी पुस्तक में लिखा है– "जैनो के पहले तीर्थंकर सिधु घाटी सभ्यता से ही थे। सिधु जनो के देव नग्न होते थे। जैन लोगों ने उस सभ्यतासस्कृति को बनाये रखा और नग्न तीर्थंकरों की पूजा की।"उन्होने भाषा के सबध में भी लिखा है– "सिंधु जनों की भाषा प्राकृत और प्राकृत जनसामान्य की भाषा है। जैनों और हिन्दुओं में भारी धार्मिक भेद है। जैनो के समस्त प्राचीन धार्मिक ग्रंथ प्राकृत में है। विशेषतया अर्ध मागधी मे, जबकि हिन्दुओं के समस्त ग्रंथ संस्कृत में है। प्राकृत भाषा के प्रयोग से भी यह सिद्ध होता है जैन प्राग्वैदिक है और सिन्धु घाटी से उनका संबंध था।"

41. ***डॉ. प्रेमसागर जी :-*** लिखित 'सिंधुघाटी में ऋषभ युग' शीर्षक शोध लेख में लिखा है। 'समूची सिंधु घाटी', उसमें चाहें मोहनजोदड़ो हो या हडप्पा, ऋषभदेव की थी। उनकी ही पूजा अर्चना होती थी।"

वैदिक आर्यो के भारत आगमन और सप्त सिंधु से आगे बढ़ने से पहले भारत में द्रविड़, नाग आदि मनुष्य जातियां थी, उस काल की संस्कृति को द्रविड़ संस्कृति कहा जाता है। डा. हेरूस, आदि अनेक

प्रसिद्ध विद्वानों और पुरातत्वज्ञों ने उस संस्कृति को द्रविड़ तथा अनार्य संस्कृति का अंग माना है। ***प्रो.एस. श्रीकंठ शास्त्री*** ने सिंधु सभ्यता की जैनधर्म के साथ समानता बताते हुए लिखा है– "अपने दिगम्बर धर्म, योगधर्म वृषभ आदि विभिन्न लांछनों को पूजा आदि बातों के कारण प्राचीन सिंधु सभ्यता जैनधर्म के साथ अद्‌भुत सादृश्य रखती है। अतः मूलतः यह अनार्य अथवा कम से कम अवैदिक तो है ही।"

42. ***मेजर जनरल जे.सी.आर.फर्लांग*** :- एम.आर.एस.ई.ने अपने ग्रंथ 'शार्ट स्टडीज आफ कम्पेरेटिव रिलिजन' पृ. 243 में लिखा है– " ईसा पूर्व अज्ञात समय से कुछ पश्चिमी उत्तरी व मध्यभारतीय तुरानी, जिनको द्रविड़ कहते है, के द्वारा शासित था। द्रविड श्रमण धर्म के अनुयायी थे। श्रमण धर्म जिसका उपदेश ऋषभ देव ने किया था, वैदिको ने उन्हें जैनो का प्रथम तीर्थंकर माना है। मनु ने द्रविडों को व्रात्य कहा है, क्यों कि वे जैन धर्मानुयायी थे।"

43. ***श्री नीलकंठ शास्त्री*** :- ने 'उड़ीसा में जैनधर्म ' पृ.3 अपनी पुस्तक में जैनधर्म को संसार का मूलधर्म बताते हुए द्रविडों को जैनों से सवद्ध किया है। वे लिखते है कि–"जैनधर्म ससार का मूल अध्यात्मधर्म है। इस देश मे ***वैदिक धर्म आने से बहुत*** पहले से ही यहां जैनधर्म प्रचलित था। संभव है कि ***प्राग्वैदिकों में*** शायद द्रविडो में यह धर्म था।"

44 ***लोकमान्य बालगंगाधर तिलक*** :- ग्रंथो तथा सामाजिक व्याख्यानो से जाना जाता है कि ***जैनधर्म अनादि*** है। यह विषय निर्विवाद है तथा मतभेद से रहित है पुनश्च इस विषय में इतिहास के सुदृढ सबूत है।
(अहिंसा वाणी जुलाई 92, पृ.197–98)

45. ***फ्रेंच विद्वान ए. गिरिनार*** :- जैन और बौद्ध धर्म की प्राचीनता के संबंध में मुलाकात करने पर जैनधर्म वास्तव में बहुत प्राचीन है। मानव समाज की उन्नति के लिए जैनधर्म में सदाचार का बड़ा मूल्य है। संसार में प्रायः यह बात प्रचलित है कि भगवान बुद्ध ने आज से 2500 वर्ष पहले अहिंसा सिद्धांत का प्रचार किया था। किसी इतिहास के ज्ञानी को इसका बिलकुल ज्ञान नहीं कि महात्मा बुद्ध से करोड़ो वर्ष पूर्व एक नहीं अनेक तीर्थंकरों ने अहिंसा के सिद्धांत का प्रतिपादन किया है। प्राचीन क्षेत्र और शिलालेख इस बात को प्रमाणित करते है कि जैनधर्म प्राचीन धर्म है, जिसने भारतीय संस्कृति को बहुत कुछ दिया।

(जैनधर्म पृ 12)

46. ***डा. कालीदास नाग, वाइस चांसलर (कलकत्ता यूनिवर्सिटी)*** :- जैनधर्म किसी खास जाति या संप्रदाय का धर्म नहीं है, बल्कि यह अंतराष्ट्रीय सार्वभौमिक तथा लोकप्रिय धर्म है। आज के संसार में सबका यही मत है कि अहिंसा सिद्धांत का महात्मा बुद्ध ने आज से 2500 वर्ष पहले प्रचार किया। किसी इतिहास के जानने वाले को इस बात का बिलकुल ज्ञान नहीं है कि महात्मा बुद्ध से करोड़ों वर्ष पहले एक नहीं, बल्कि अनेक तीर्थंकरों ने इस अहिंसा सिद्धांत का प्रचार किया है जैनधर्म बुद्धधर्म से करोंडों वर्ष पहले का है। मैनें प्राचीन जैन क्षेत्रों और शिलालेखों के स्लाइड्स तैयार करके इस बात को प्रमाणित करने का प्रयत्न किया हैकि जैनधर्म प्राचीन धर्म है। जिसने भारत संस्कृति को बहुत कुछ दिया परन्तु अभी तक ससार की दृष्टि में जैनधर्म को महत्व नहीं दिया गया। उनके विचारों में यह केवल बीस लाख आदमियों का एक छोटा सा धर्म है हालाकि जैन धर्म एक विशाल धर्म है और अहिंसा पर तो जैनों को पूर्ण अधिकार प्राप्त है।

(अनेकांत वर्ष 10, पृ.224)

47. ***मुख्योपाध्याय श्री वरदाकांत एम.ए.*** :- जैनधर्म भगवान महावीर से बहुत पहले दिगम्बर ऋषि ऋषभदेव ने स्थापित किया था।

(जैनधर्म के संस्थापक श्री ऋषभदेव खंड 3)

48. ***प्रसिद्ध विद्वान डा.ए.एन. उपाध्ये कहते हैं*** :- जैनधर्म के साथ सांख्य एवं बौद्ध दर्शनों के कुछ बातों में समानता तथा दूसरी और इन तीनों की आर्य वैदिक बौद्ध धर्म भेदों के साथ समान रूप से कुछ बातों में असमानता और ·साथ ही जैनधर्म, आजीविक मत, पूरणकश्यप आदि के विचारों में एक प्रकार के सादृश्य को देखकर मैं प्राचीनकाल में एक महान **मागध धर्म** के अस्तित्व में विश्वास करने को विवश हो जाता हूँ। यह मागध धर्म अपने मूलभूत तत्वों में विशुद्ध भारतीय था और पूर्वी भारत में गंगा तटवर्ती प्रदेश में, आर्यो के मध्यप्रदेश में प्रविष्ट होने के बहुत पूर्व ही परिपुष्ट हो चुका था। संभवतया ब्राह्मण ग्रंथों के युग के अंतिम पाद में यह दो धारायें एक आर्य और दूसरी देशीय (भारतीय या मागधीय) परस्पर सम्पर्क में आई। उन दोनों के पारस्परिक संपर्क एवं किया प्रतिक्रिया के फलस्वरूप एक ओर तो उपनिषदों का उदय हुआ जिनके द्वारा याज्ञवल्क्य आदि ने सर्वप्रथम आत्मविद्या, का प्रचार किया, दूसरी और प्राचीन मागधधर्म की महान परम्परा में उसके

सतेज प्रतिनिधियों के रूप में तत्कालीन जैनधर्म तथा बौद्धधर्म जनता में प्रचारित याज्ञिक कर्मकांडी वैदिक धर्म के विरोध में क्षेत्र में उतरे।

49. ***भिक्सु आनंद कौशल्यायन*** :- के विचारानुसार उक्त बात पर जो उपाध्ये जी ने जो बल दिया हैकि आर्यवैदिक विचार धारा अवैदिक देशीय विचारधारा से प्रभावित हुई और उसने उससे प्रेरणा प्राप्त की,अत्यत महत्वपूर्ण है।

50. ***महामहोपाध्याय गंगानाथ झा*** :- का कहना है – कि "नि.संदेह कतिपय सिद्धातों मे जैनदर्शन का बौद्ध, वेदात, सांख्य, न्याय और वैशेषिक दर्शनो के साथ साम्य है। किन्तु इस बात से जैन दर्शन का स्वतंत्र अस्तित्व उदय और विकास असिद्ध नहीं होता।"

51. ***प्रो.जी.सत्यनारायण मूर्ति के शब्दों में*** :- "जैनधर्म के कुछ सिद्धात अपने विशिष्टतया निराले है। वे उस पर एक स्वतंत्र स्वाधीन अस्तित्व की छाप छोडते है।"

52 ***प्रो चिंताहरण चक्रवर्ती*** :- का कथन है कि – "यद्यपि अपने वर्तमान ज्ञान के आधार पर हमारे लिए जैन और ब्राह्मण धर्मो से सबधित अनेक बातो की आपेक्षिक प्राचीनता निर्णय करना संभव नहीं है तथापि जैन धर्म की यथार्थवादिता एवं उसकी बुद्धिवादिता एक सामान्य दृष्टा का भी ध्यान आकर्षित करने से नहीं चूकती।"

जैनधर्म के वैज्ञानिक सिद्धातो को देखते हुए उसकी **प्राचीनता वेदों से भी पूर्व की** सिद्ध होती है वेद यद्यपि ऐतिहासिक काल से पहले के है। आधुनिक खोज के.अनुसार 4000 वर्ष पूर्व के वेद माने जाते है। जैन धर्म के इस युग के संस्थापक श्रीऋषभदेव जी वेदों के बनने के बहुत पहले के अवतीर्ण हुए थे।

जैनधर्म में वनस्पति, पृथ्वी,जल, अग्नि आदि मे जीवन का होना। अणुवाद सिद्धांत के दर्शन किसी दर्शन मे नहीं होते जो कि जैन दर्शन में है। इसी प्रकार शब्द आदि के सबध मे है।

53 ***मि.ई.थामस साहब*** :- 'अर्ली फेथ आफ अशोक' पुस्तक में बतलाते है कि "जैनधर्म अत्यंत सरल होगा वह उसके जटिल धर्म से प्राचीन समझा जाएगा।"

54. ***सरदार वल्लभभाई पटेल*** :- अहिंसा वीर पुरूषों का ध र्म है। कायरों का नहीं। जैनों को अभिमान होना चाहिए कि कांग्रेस

उनके मुख्य सिद्धांता का अमल समस्त भारत वासियों से करा रही है।
(अनेकांत वर्ष 6, पृ. 39)

55. ***आचार्य नरेन्द्र देव :-*** अगर उनकी (महावीर) शिक्षा संकीर्ण रहती तो जैनधर्म अरब आदि देशों तक न पहुँच पाता।
(ज्ञानोदय वर्ष 1, पृ. 82)

56. ***श्री गोविंद वल्लभ पंत :-*** जैनधर्म देश का बहुत प्राचीन धर्म है। इसके सिद्धांत महान है। जैनधर्म के आदर्श बहुत ऊंचे है।
(जैन संदेश, आगरा 12-2-1951, पृ. 2)

57. ***बौद्धभिक्षु धर्मानंद कौशंबी :-*** भगवान महावीर ने पूरे 12 वर्ष के तप और त्याग के बाद अहिंसा का संदेश दिया। हिंसा का अधिक जोर था। यदि महावीर ने अहिंसा का सदेश नही दिया होता तो आज भारत में अहिंसा का नाम न लिया जाता।
(भ.महावीर का आदर्श जीवन पृ 12)

58. ***विश्वकवि साहित्य सम्राट् रवीन्द्रनाथ टैगोर :-*** ने लिखा है कि "महावीर ने भारत को ऊचे स्वर में मोक्ष का सदेश दिया। उन्होने कहा धर्म एक सामाजिक रूढि नहीं है, किन्तु वास्तविक सत्य है। मोक्ष केवल सांप्रदायिक बाह्य कियाकांड से नहीं मिल सकता, प्रत्युत सत्य धर्म के स्वरूप का आश्रय लेने से प्राप्त होता है। धर्म के अतर्गत मनुष्य और मनुष्य के बीच रहने वाला भेदभाव कभी स्थाई नहीं रह सकता।

59. ***जैनधर्म नास्तिक नहीं है :-*** रा.रा.वासुदेव गोविन्द आपटे,बी.ए – जैनधर्म ईश्वर की मौजूदगी को स्वीकार करता है।पाणिनि ऋषि के सूत्रानुसार–

परलोकोऽस्तीति मतिर्यस्यास्तीति आस्तिकः
परलोको नास्तीति मतिर्यस्यासी नास्तिकः।
'अस्तिनास्ति दिष्टं मतिः'

(पाणिनीय व्याकरण 4/4/90)

60. ***अनेकांत-स्याद्वाद पर लोकमत :-*** महामहोपाध्याय डा. गंगानाथ झा, वाइस चांसलर प्रयाग विश्वविद्यालय– जब से मैंने शंकराचार्य द्वारा जैन सिद्धांत का खंडन पढ़ा तब से मुझे विश्वास हुआ कि इस सिद्धांत में बहुत कुछ हैं, जिसे वेदांत के आचार्यो ने नहीं समझा और जो कुछ मैं अब तक जैनधर्म को जान सका हूँ उससे मेरा यह विश्वास हुआ है कि यदि वे (शंकराचार्य) जैनधर्म को उसके असली ग्रंथों

से देखने का कष्ट उठाते तो उन्हे जैनधर्म के विरोध करने की कोई बात नहीं मिलती।

61. ***आचार्य आनंद शंकर ध्रुव प्रो. वाइस चांसलर हिन्दूविश्वविद्यालय काशी :-*** जैनधर्म में अहिंसातत्व जितना रम्य और भक्ति मार्ग जितना स्तुत्य है, उनसे कहीं अधिक सुन्दर स्याद्वाद सिद्धांत हैं।

62. ***प्रसिद्ध एडवोकेट डा. ए.सी. घोस, देहली :-*** स्याद्वाद ऐसा बढिया सिद्धात है कि इस में असत्य का पता नहीं लगता।

63 ***पाश्चात्य विद्वान सर विलियम हैमिल्टन :-*** मध्यस्थ विचारो के विशाल मदिर का आधार जैनो का यह अपेक्षावाद ही है।

64 ***डा. थामस एम.ए., पी.एच.डी, लाइब्रेरियन इंडिया आफिस लाइब्रेरी :-*** न्याय शास्त्र मे जैन न्याय का स्थान बहुत ऊचा है। स्याद्वाद का सिद्धात बहु है। वह वस्तु की भिन्न–भिन्न स्थितियो पर प्रकाश डालता है।

65 ***हिन्दी सम्राट् श्री महावीर प्रसाद जीद्विवेदी 'सरस्वती' में लिखते हैं :-*** प्राचीन ढर्रे के हिन्दू धर्मावलंवी बडे–बडे शास्त्री तक अब भी नही जानते कि जैनियों का 'स्याद्वाद' किस चिडिया का नाम हैं? धन्यवाद है जर्मनी, फास, और इग्लैंड के कुछ विद्यानुरागी विशेषज्ञो को, जिन की कृपा से इस धर्म के अनुयायियों के कीर्तिकाल की खोज की गई और भारत वर्ष के लोगों का ध्यान आकृष्ट हुआ। यदि ये विद्वान जैनो के धर्म ग्रंथों की आलोचना न करते, उनके प्राचीन लेखको की महत्ता प्रकट न करते तो हम लोग शायद आज भी पूर्ववत अज्ञान के अंधकार मे ही डूबे रहते।

66. ***संस्कृतज्ञ प्रो. डा. हर्मन जेकोवी एम.ए. पी.एच. डी. वर्लिन जर्मनी :-*** जैनधर्म के सिद्धांत प्राचीन भारत वर्ष के तत्व ज्ञान और धार्मिक पद्धति का अध्ययन कराने वालों के लिए बडे महत्त्व की वस्तु है। इस स्याद्वाद से सर्वसत्य विचारों का द्वार खुल जाता है।

67. जैनधर्म के सिद्धांत मुझे अत्यंत प्रिय है। मेरी आकांक्षा है कि मृत्यु के पश्चात् मैं जैन परिवार में जन्म धारण करूं।

(जार्ज वनार्ड शा)

पौराणिक संस्कृति

जब सप्त सिंधु प्रदेश निवासी आर्यों में बलिदान प्रथा की प्रधानता थी तो दूसरी और गंगा के पूर्व देशों में दूसरी अहिंसा प्रधान संस्कृति का प्रसार था, जिसके निर्माता भगवान् ऋषभ थे। यह श्रमण संस्कृति थी। जब वे आर्य सप्तसिधु से पूर्व की ओर बढे तो उनका वहां के निवासियों से संघर्ष हुआ। भगवान ऋषभ ने खेती, शिल्प, वाणिज्य आदि से आजीविका की शिक्षा दी थी किन्तु आर्यो ने कृषि जीवन नहीं अपनाया। वे कबीलों के रूप में थे। ऋषभदेव समाज को क्षत्रिय,वैश्य, और शूद्र इन तीनों वर्गो में समाज को विभाजित किया सबको उनके विभाग के अनुसार शिक्षण भी दिया। श्रमण संस्कृति के उपासक आर्यों के कियाकांड को पसंद नहीं करते थे। वे आत्मतत्व अन्वेषक थे।

आर्यो के कोरे कर्मकाड से लोगो की रूचि हटने लगी। तब उपनिषदो की रचना हुई। वैदिक आर्य तो मुक्ति को जानते ही नहीं थे। उनके लिए स्वर्ग ही सर्वोच्च्य था।

श्रमण सस्कृति मे मोक्ष को ही अंतिम लक्ष्य माना गया है। उपनिषदो ने आध्यात्मिक सिद्धातो का कथन तो किया किन्तु वैदिक कियाकाड का विरोध नहीं किया।

डॉ. राधाकृष्णन् लिखते है :-

"उपनिषदो ने प्राचीन वैदिक कियाकाड को ऊँचे अध्यात्मवाद से जोडने का प्रयत्न किया। किन्तु तत्कालीन पीढी ने उससे रूचि नहीं दिखलाई। फलत उपनिषदो का ऊँचा अध्यात्मवाद लोकप्रिय नहीं हो सका। एक और यह दशा थी, दूसरी और याज्ञिक धर्म अब भी बलशाली था। उपनिषदों का ब्रह्मवाद और वेदों का बहुदेवतावाद उपनिषदों का आध्यात्मिक जीवन और वेदों का याज्ञिक कियाकांड, उपनिषदों का मोक्ष और ससार तथा वेदों का स्वर्ग और नरक, यह तर्क विरूद्ध संयोग अधिक दिनों तक नहीं चल सकता था अतः पुन:निर्माण की सख्त जरूरत थी। समय एक ऐसे धर्म की प्रतीक्षा कर रहा था जो गंभीर और अधिक आध्यात्मिक हो तथा मनुष्यों के साधारण जीवन में उतर सके या लाया जा सके। धर्म के सिद्धांत का उचित सम्मिश्रण करने के पहले यह आवश्यक था कि सिद्धांतों के उस बनावटी सबंध को तोड़ डाला जावे।"

डॉ. राधाकृष्णन्

के इस चित्रण से स्पष्ट है कि जब वैदिक कियाकांड का विरोध हुआ और जनता की रूचि उस ओर से हटने लगी तो वैदिकों को अपनी स्थिति बनाये रखने के लिए कुछ नये परिवर्तन की जरूरत हुई। अतः उन्होने श्रमण सस्कृति के आध्यात्मिक तत्व को अपनाकर उपनिषदों की रचना की। उपनिषद द्वारा जहां अध्यात्म की चर्चा थी वहां पक्ष वैदिक कियाकांड का, फलतः श्रमण सस्कृति के साथ मेल नहीं हो सका। यो मेल तो जगत्कर्तृत्व के संबंध मे भी नहीं रहा क्योकि श्रमण सस्कृति ईश्वर को मानकर भी जगत्कर्ता नहीं मानती। इसी कारण वेदानुयायी उसे नास्तिक की परिभाषा 'नास्तिको वेद निंदक·।' जो वेद वाक्य नहीं मानते वे नास्तिक है।

श्री पं. गोपालदास जी बरैया,

जो महान विद्वान थे, कहा करते थे कि 'नास्ति को वेद निदक' अर्थात् वेद निदक को नास्ति–वेद का निंदक कौन नही है। जो अहिसा मे विश्वास करते है वे वेद हिंसा के समर्थक वेदो की निदा करते ही है यथा जैन, सांख्य आदि। इस संबध मे लोगो को 'याज्ञिकी हिंसा हिंसा न भवति' यज्ञ में की गई हिसा हिंसा नही मानी जाती, कह कर समझाने की कोशिश की जाती रही है।

दोनो सस्कृतियों मे यह विरोध होने से पुननिर्माण की आवश्यकतानुसार तेवीसवे तीर्थंकर पार्श्वनाथ का जन्म वाराणसी मे हुआ श्री पार्श्वकुमार वन मे एक तापस को पंचाग्नितप करते हुए एक काष्ट की अग्नि मे जलते हुए नाग–नागिन को देखा और तापस की निंदा की। पार्श्व कुमार ने दीक्षा लेकर केवलज्ञान प्राप्त किया और बिहार कर जन साधारण को अहिसा का महत्व समझाया।

वैष्णव एवं शैव धर्म

दीवान बहादुर कृष्ण स्वामी आयंगर (एशिष्ट इडिया पृ 588) ने लिखा है – "कि उस समय एक ऐसे धर्म की आवश्यकता थी जो ब्राह्मण धर्म के इस पुननिर्माण काल में बौद्धधर्म और जैन धर्म के विरूद्ध जनता को प्रभावित कर सकता, उसके लिए एक मानव देवता और उसकी पूजा विधि की आवश्यकता थी।" पुननिर्माण ने एक ऐसे धर्म को जन्म दिया जो, श्री.डा.राधाकृष्णनके अभिप्राय (इंडियन फिलोसफी पृ. 275–76) के अनुसार उतना नियमबद्ध नहीं था। तथापि उपनिषदों के धर्म से अधिक

सतोषप्रद था। उसने एक संदिग्ध और शुष्क ईश्वर के बदले में एक जीवित मानवीय परमात्मा दिया। भगवद्‌गीता, जिसमें कृष्ण विष्णु के अवतार तथ उपनिषदों के पर ब्रह्म माने गये, पचरात्र समुदाय और श्वेताश्व तथा बाद के अन्य उपनिषदो का शैवधर्म इसी धार्मिक कांति के फल हैं।

प्रसिद्ध इतिहासज्ञ स्व. ओझा जी ने :-

(राजपूताने का इतिहास प्र.स.पृ. 10–11) लिखा है – कि 'बौद्धधर्म और जैनधर्म के प्रचार से वैदिक धर्म को बहुत हानि पहूँची। इतना ही नही, किन्तु उसमे परिवर्तन करना पडा और वह तपे सॉचे मे ढलकर पौराणिक धर्म बना गया। उसमे बौद्ध ओर जैनो से मिलती धर्म संबधी बहुत सी नई बातो ने प्रवेश किया। इतना ही नहीं, किन्तु विष्णुदेव की पूजा उतनी ही प्राचीन है जितनी ऋग्वेद तथा प्राचीन वैदिक काल मे भी विष्णु। एक बडे देव माने जाते थे। वैदिक सप्रदाय मे विष्णु की मौलिक स्थिति का पता चलता है। किन्तु वैष्णव सप्रदाय का पता उस काल मे नहीं चलता। महाभारत के अर्वाचीन भाग मे वैष्णव नाम आया है। श्री हेमचद्र राय चौधरी का मत (अष्टादश पुराणा, श्रवणाद यद् फलंभवेत्। तत्फल समवाप्नोति वैष्णवे नात्र सशय 97) है कि महाभारत के उक्त भाग का ठीक–ठीक रचना काल निश्चित नहीं है किन्तु अनेक प्रमाणो के आधार पर यह स्पष्ट निकल सकता है कि ईस्वी सन् की पॉचवी शती के आगे–पीछे 'परम वैष्णव' शब्द सर्वसाधारण मे प्रयुक्त हुआ है। ब्राह्मण ग्रथों का विष्णु भक्ति की अपेक्षा यज्ञ से ही अधिक सबंध है। अनेक शिलालेखो मे यह प्रमाणित होता हैं कि भागवत् लोग वासुदेव के भक्त थे। महाभारत (शातिपर्व) में लिखा है कि कृष्ण वासुदेव ने अर्जुन को भागवत धर्म का उपदेश दिया।"

सर आर जी भंडारकर के अनुसार कहा जाता है कि श्री कृष्ण ने मथुरा राज्य के भागवत धर्म की स्थापना की । यह भागवत धर्म ही आज के वैष्णव धर्म का पूर्वज है।

अन्वेषकों का वक्तव्य है कि प्रारंभ में भागवत धर्म का और ब्राहमण धर्म का केवल सख्यभाव था। किन्तु जब मौर्य वंशी राजाओं ने बौद्धधर्म के प्रचार का बीडा उठाया तो दोनों धर्म आपस में मिल गये और इस मिलन के फलस्वरूप वासुदेव कृष्ण का तथा ब्राहमण धर्म के देवता नारायण और विष्णु का भी एकीकरण कर दिया गया।

इतिहास से पता चलता है कि उत्तर भारत के शक और कुशान राजवंश वासुदेव कृष्ण के भागवत धर्म के पक्षपाती नहीं थे। जबकि गुप्त राजाओं के कुलदेवता वासुदेव थे। गुप्तराजाओं ने भागवत धर्म के प्रति वही किया जो अशोक ने बौद्धधर्म के लिए। गुप्तों के पतन और हूणों के आगमन के साथ ही उत्तर भारत से भागवत धर्म की महत्ता जाती रही। किन्तु दक्षिण भारत मे इसने पैर जमाये और महाराष्ट्र को पकड़ा। महाराष्ट्र से यह तमिल देश में गया और फिर चारों और फैलता गया।

ऊपर यह बताया गया है कि ब्राहमण कालीन याज्ञिक कियाकांड की प्रतिकिया के फलस्वरूप भागवत धर्म का उदय हुआ। इस धर्म के गुरू जन जहां वैदिक कियाकाड की सार्वजनिक खुली भर्त्सना को रोकते थे। वहा कुछ नये सिद्धांतों का भी प्रचार करते थे, जिसमें एक अहिंसा भी था। छादोग्योपनिषद के अ 3, व 117 मे आत्मयज्ञ की उपासना बतलाई है। उसमे तप,दान,आर्जव,अहिंसा और सत्य वचन ही उसकी दक्षिणा बतलाई है। आगे लिखा है कि घोर अंगीरस ऋषि ने देवकी पुत्र श्री कृष्ण को यह यज्ञ दर्शन सुनाया, जिससे वह अन्य विधाओं के विषय में तृष्णाहीन हो गए। (भारतीय धर्म ओर अहिसा ले. कैलाश चंद जी शास्त्री) अ इ र पृ. 726–27 से विदित होता है कि मैगस्थनीज के समय में विष्णु पूजा की तरह ही शिव पूजा भी अच्छी तरह प्रचलित हो चुकी थी। सीति ने महाभारत में प्राचीन धर्म को बचाने के लिए बौद्ध धर्म के विरोधी सभी उपधर्मो का सकलन किया है जिनमें शैवधर्म भी है। इस तरह जब वैशपायन का भारत वैष्णव सप्रदाय से सवद्ध था तब सीति का महाभारत किसी संप्रदाय विशेष से संवद्ध प्रतीत नहीं होता।

प्राचीन भारतीय इतिहास के जानकारों से यह बात अपरिचित नहीं है कि मौर्य सम्राट् या तो जैनधर्म के पोषक थे या बौद्धधर्म के? इसी से अतिम मौर्य सम्राट् वृहद्रथ को मारकर शुंगवंशी पुष्यमित्र सम्राट् बन बैठा। उसने श्रमणो पर बड़े अत्याचार किये और वैदिक धर्म के पुनरूद्धार का प्रयत्न किया। सम्राट् अशोक ने कलिंग पर चढ़ाई करने के बाद के युद्ध में नरसंहार से द्रवित होकर भविष्य में युद्ध के बजाय प्रेम से विजय करने का संकल्प लिया था। युद्ध को तिलांजली दे दी थी।

वैदिक यज्ञआदि के शब्दार्थ

यज्ञ के तीन भेद मिलते है :-

1. औषधि यज्ञ--जिसमें पुष्पफूल आदि का उपयोग होता था।

2. आत्म यज्ञ--जो आध्यात्मिक रूप मे किये जाते थे।

3. प्राणी यज्ञ-- जिसमें पशु और नर की बलि दी जाती थी।

औषधि यज्ञ :-

महाभारत (शांतिपर्व, अध्याय 337/श्लोक3--5--6--17) में एक चर्चा आई है--अजैर्यष्टव्यम इस वैदिक श्रुति के अर्थ मे विवाद देवताओं और ब्रह्मर्षियों में उत्पन्न हो गया। देवताओ ने कहा, यहा अज याने बकरे से यज्ञ करना चाहिए और ब्रह्मर्षियों ने कहां, बीजो द्वारा जो अकुरोत्पत्ति योग्य नहीं है,उनसे यज्ञ करना चाहिए। बकरे का वध उचित नहीं है।

यह प्रश्न राजा वसु के पास आने पर वसु ने देवताओ का पक्ष लेकर हिंसा का समर्थन किया। वसु सत्य के प्रभाव से आकाश मे चलता था किन्तु इस असत्य का समर्थन करने और ब्रह्मर्षियों के शाप से आकाश से गिरकर पाताल मे चला गया। ऐसा ही विवाद उत्तर पुराण (जैनाचार्य गुणभद्र 10वीं शताब्दी) मे भी पर्वत नारद का आया है जहा राजा वसु ने पर्वत का यश लिया और नरक मे गया।

इस प्रकरण से यह स्पष्ट होता है कि पहले पशु यज्ञ नहीं थे और पीछे उनका विरोध भी किया गया था। वेदो मे जो हिंसा का विधान बताया गया है वह शब्दों का विपरीत अर्थ निकालकर बताया गया है।

महाभारत (शांतिपर्व अध्याय 2 63 श्लोक 18--21)में ही लिखा है कि ब्राह्मण वेदाध्ययन मे तत्पर रहते थे। स्वय संतुष्ट थे और दूसरों को संतोष की शिक्षा देते थे।

नमि और अरिष्ट नेमि तीर्थंकरो के समय मे हिसक यज्ञ के विरोध मे आत्म यज्ञ का स्वर प्रबल हो उठा था। नेमि तीर्थंकर ने तो विवाह की बारात में आए हुए मांसाहारी बाराती राजाओं के विरोध में वाड़े में बंद पशुओं को छुडाकर बिना विवाह किये गिरनार पर जिन दीक्षा ली थी। वहां उस समय अरिष्ट नेमि के चचेरे भ्राता श्रीकृष्ण जी भी आत्मयज्ञ के प्रतिपादन मे प्रयत्नशील थें। उनके द्वारा अर्जुन को उपदेश रूप में

श्रीमद्भगवद्गीता अपूर्व अध्यात्म ग्रंथ है।

वृहदारण्यकोपनिषद् (गीताप्रेस से प्रकाशित उपनिषद् अंक पृ 508) चतुर्थ ब्राहमण संतानोत्पत्ति प्रकरण में स्वस्थ पुत्र ऊक्ष एव ऋषभ शब्दों का प्रयोग आया है। इन दोनों का अर्थ राजा राजेन्द्रनाथ व मि.राबर्ट अर्नेस्ट हयूम ने युवा व वृद्ध बैल कर उसके मांस खाने का समर्थन किया था, जिसका खंडन यह है कि ऊक्षायाने सोमलता (रस पूर्ण) और ऋषभ याने औषधी का पौधा होता है। यह आयुर्वेद शास्त्र चरकसंहिता खंड 1 अ 4—33 मे लिखा है । प्रस्तुत उपनिषद ग्रथ की टिप्पणी में भी ऊक्ष और ऋषभ को वाचस्पत्य कोष के अनुसार पर्यायवाची शब्द औषधि अर्थ मे बताया गया है। सुश्रुतसंहिता आयुर्वेद ग्रथ के सूत्रस्थान नामक प्रथम खड के 38 वे अध्याय में सैंतीस द्रव्य गुणो के अंतर्गत ऋषभ औषधि का उल्लेख है। यह ऋषभ औषधि हिमालय पर्वत के शिखर पर उत्पन्न होती है। 'भाव प्रकाश' आयुर्वेद ग्रथ मे भी इसका कथन है । इसमे गूदा नहीं होता। इसकी छोटी पत्तियाँ होती है। यह बैल के सींग के आकार की होती है। यह बलकारक होती हैं। इसकी अष्टवर्ग नामक औषधियों में गणना है।

मेघदूत (कालिदास कृत) पूर्वार्द्ध श्लोक 45 में सुरभि तनया (गौ) के आलभन से पृथ्वी पर उत्पन्न प्रवाह से चर्मण्वती (चंबल नदी) बन गई यह कविवर ने लिखा है। यहां आलभन मे लभ् और लाभ् के प्राप्ति और स्पर्श दोनो समानार्थ है। इसका अर्थ प्रोक्षण (धोकर साफ करना) होता है, जिसका अर्थ मारना गलत कर हिंसा का समर्थन किया गया है।

महाभारत (शाति पर्व 123—127) मे निम्नलिखित दो पद्य है—

संस्कृतेः रंति देवस्य यां रात्रिभवसत् गृहे।
आलभ्यन्त शतंगावः सहस्राणि च विंशतिः।।
महानदी चर्मराशिक्लेदात् ससृजे यतः।
ततश्च चर्मण्वतीत्येवं विख्याता सा महानदी।।

अर्थ—दशपुर के राजा संस्कृति के पुत्र राजा रतिदेव अतिथियो के लिए 20100 गाये जल से धोकर साफ करते हुए उन्हें स्पर्श कर के देते थे। उस भीगी हुई चर्म राशि से जल बहकर विशाल चंबल नदी प्रकट हुई। ये राजा अहिंसक प्रसिद्ध थे। यहां आलंभ शब्द धोकर साफ करके स्पर्श करने अर्थ में है। सकल्प मे देते समय छूकर देना होता है। गायों को मारने से चर्म

को लेकर जो रक्त निकला उससे नदी बन गईयह अर्थ सर्वथा गलत है।

मनु स्मृति 5–41 मे प्रक्षिप्त पद्य–

मधुपर्के च यज्ञेच, पितृवदेव कर्मणि।
अत्रैव पशवोऽहिंस्याः, नान्यः कश्चिदिति स्थितिः।।

मधुपर्क,यज्ञ,पितृकर्म,देवकर्म इनमे पशुओं की वृद्धि व उनके दुग्ध आदि का उपयोग करना चाहिए। उनकी हिंसा नहीं करना चहिए क्योंकि यहां पशवोऽहिंस्याः अर्थात् अहिस्या बनता है। यहां मधुपर्क का अर्थ गौरस सहित मिश्री का है, मांस का अर्थ नहीं है।

हिंस्या. में हन हिंसा गत्योः के अनुसार गावः हन्यंते अर्थात् गायें चलाई व बढाई जाती है। इसी प्रकार गोमेध का अर्थ गोसंवर्धन है। अध्वर अहिंसक यज्ञ है। गो शब्द के दूध,दही, धृत, मक्खन, छाछ, मूत्र, गोबर, ये अंतर्गत पर्याये है तथा गाय, गोचर्म व बाल अर्थ मे भी व्यवहार होता है।

पाश्चात्य देश के कुछ अंग्रेजो ने आर्य सस्कृति को विकृत बनाने के लिए वेदो आदि के विपरीत अर्थ कर दिये है। जिनसे लाभ उठाकर स्वार्थी और मांसप्रिय लोगों ने हिसा और मास का प्रचार कर दिया। हमारे उक्त उद्धरण व कथन साफ है इसके प्रमाण रूप मे देखिए–महाभारत शाति पर्व अ 265,9 में लिखा है–

सुरामत्स्या मधु मांस मासवं कृषरोदनम्।
धूर्तैः प्रवर्तितं ह्येतन्नैतद् वेदेषु कल्पितम्।।

अर्थ– मद्य, मछली, शहद, मांस, आसव (आयुर्वेद में पानक) प्राणिज भात आदि जीवहिंसा से उत्पन्न खाद्य पदार्थ इनका धार्मिक यज्ञादि वैदिक कियाओं मे उपयोग वेदो मे नहीं है। किन्तु धूर्त लोगो की कल्पनायें है।

पुराणों वेदों और उपनिषदों में

महाभारत में युगादि आदिनाथ ऋषभदेव तथा नेमिनाथ तीर्थंकर के उर्जयन्त या रेवताद्रि (गिरनार) से मोक्ष जाने का उल्लेख निम्न प्रकार है–

रेवताद्री जिनोनेमिः युगादि विपुलाचले।

ऋषीणामाश्रमादेव मुक्ति मार्गस्य कारणम्।।

गिरनार पर नेमि जिनेन्द्र ने और विपुलाचल कैलाश पर आदिनाथ ने स्थिरता (मुक्ति) ली। ऋषियों के लिये ये मोक्षमार्ग के निमित्त है, इनके ध्यान से मुक्ति होती हैं।

स्कद पुराण में भी ऐसा ही बताया गया है–

नेमिनाथ शिवेत्येवं नामचक्रेऽथ वामनः।

वामन ने भगवान नेमिनाथ का नाम शिव रखा।।

यजुर्वेद मे लिखा है–

ओं रक्ष-रक्ष अरिष्ट नेमि स्वाहा

हे विघ्न निवारक नेमिनाथ। हमारी रक्षा करो।

डा. विमलशरण लाहा ''केम्ब्रिज हिस्ट्री आफॅ इण्डिया'' में बतलाते हैं :-

अरिष्ट नेमि अथवा नेमिनाथ बाईसवें तीर्थंकर थें। "वे एक वरद क्षत्रिय धर्म प्रचारक एवं समाज के धुरीण हो गए हैं। यें संयमी, ध्यानमग्न, चतुर और शांत स्वभावी थे। उनको सत्यदर्शन हुआ। वे शुद्ध, सत्य और धर्म में प्रवीण थे। उन्होने समस्त बंधन नष्ट किये।"

डा. वासुदेवशरण अग्रवाल लिखते है :-

मैंने अपनी "भारत की मौलिक एकता" नामक पुस्तक (पृ 22–24) मे दौष्यंत भरत से भारत वर्ष लिखकर भूल की थी, इसकी ओर कुछ मित्रों ने मेरा ध्यान आकर्षित किया, उसे अब सुधार लेना चाहता हूँ।

श्री ज्वाला प्रसाद जी मिश्र ने भागवत पुराण का उल्लेख किया है– नाभेरसा वृषभ आसुसुदेव सूनु र्येवैविचार समदृष्ट जडयोग चर्यम्। यत् परम हंसस्य ऋषभः पदमामनंति स्वस्थः प्रशांतः करण परिमुक्त संगः

अर्थ– अग्नींध्र पुत्र नाभि से मरू देवी पुत्र ऋषभ देव भये, सम्यक् दृष्टा, जड़ की नांई योगाभ्यास करते भये। जिनके परमहंस पद को ऋषियों ने नमस्कार कियो,स्वस्थ शांत इन्द्रिय सब संग त्यागे। जिनसे जैनमत प्रगट भयौ।

कैलाशेविपुले रम्ये वृषभोऽयं जिनेश्वरः।
चकार स्वावतारं च सर्वज्ञः सर्वगः शिवः ।।

अर्थ– बड़े सुन्दर कैलाश पर ऋषभदेव (प्रमासपुराण 5) ने सर्वज्ञ और शिव पद का अवतार लिया।

अष्टषष्ठिषु तीर्थेषु यात्रायां यत्फलं भवेत्।
श्री आदिनाथ देवस्य-स्मरणेनापि तद्भवेत्। (मनुस्मृति)

68 तीर्थो की यात्रा का जो फल होता है वह आदिनाथ ऋषभदेव के स्मरण से प्राप्त हो जाता है

12. शिवपुराण 37/57 का प्रमाणहै–

नाभे पुत्रश्च वृषभो वृषभात् भरतोऽ भवत्।
तस्य नाम्ना त्विदं वर्षं भारतं चेति कीर्त्यते।।

नाभि के पुत्र वृषभ और वृषभ के पुत्र भरत हुए। भरत के नाम से इस वर्ष (देश) को भारत वर्ष कहते हैं।

13. अग्निपुराण 10/1011 क्या बताता है–

जरामृत्यु भयं नास्ति धर्मा धर्मौ युगादिकम्।
नाधर्मं मध्यमं कृत्वा तुल्याऽदेशान्तु नाभितः।
ऋषभो मरुदेव्यां च ऋषभात् भरतोऽभवत्।
ऋषभोऽदात् श्रीपुत्रे शाल्यग्रामे हरिंगतः।
भरताद् भारतं वर्षं भारताद् सुमति स्त्वभूत्।।

उस हिमवत् प्रदेश (पूर्व नाम भारत) मे जरा और मृत्यु का भय नहीं था, धर्म और अधर्म भी वहां नहीं थे उनमें माध्यम (समभाव) था।

नोटः– यह भोग भूमि के समय का कथन है। वहां नाभि राजा के मरू देवी से ऋषभ का जन्म हुआ ऋषभ से भरत हुए। ऋषभ ने भरत को राजश्री देकर सन्यास ग्रहण कर लिया। भरत के पुत्र का नाम सुमति था।

वैदिक साहित्य के आधार से डा. विंटरनीट्स ने (हि.इं.लि.जि. 1 पृ. 52) लिखा है "अपनी प्राचीनता के कारण वेद भारतीय साहित्य मे सर्वोपरि स्थित है।"

वेद चार है, जिनके मत्रों का उपयोग यज्ञानुष्ठान मे होता था। होता,उदगाता,अध्वर्यु,ब्रम्हा ये चार ऋत्विज यज्ञ में आवश्यक थे। होता मंत्रोंचारण कर देवताओं का आह्वान करता था। मंत्र समुदाय का

संकलन ऋग्वेद में हैं।

उद्‌गाता ऋचाओं को मधुर स्वर से गाता था, इसके लिए सामवेद है। यज्ञ के नाना अनुष्ठानों का संपादन अध्वर्यु करता था। इसके लिए यजुर्वेद है। सम्पूर्ण भाग का निरीक्षक बह्मा था, जिससे कोई विघ्न न आवे इसके लिए अथर्ववेद हैं।

ककर्दवे वृषभो युक्त आसीद्।
अवावचीत् सारथिरस्य केशी।।
दुधेर्युक्तस्य द्रवतः सहानसः।
ऋच्छंतिष्म निष्पदो मुद्‌गलानीम्।।

यहां सायण ने अपने भाष्य में –(ऋग्वेद 10,102,6) केशी को वृषभ का विशेषण बतलाया है। यथा 'अथवा अस्य सारथिःसहायभूतः केशी प्रकृष्ट केशी वृषभ अवावचीत् भृशमशब्दयत् इत्यादि'

अर्थात् मुदगल ऋषि ने केशी वृषभ को शत्रुओं का विनाश करने के लिए अपना सारथी नियुक्त किया। इस ऋचा का आध्यात्मिक अर्थ यह है कि मुदगल ऋषि की जो इन्द्रियॉं पराङ्मुखी थी, वे उनके योगयुक्त ज्ञानी केशी वृषभ का धर्मोपदेश सुनकर अन्तर्मुखी हो गई। ऋग्वेद में जो केशीसूक्त आया है, वह ऋषभदेव के उल्लेख का सूचक है। डा. हीरालाल जी ने भी यही लिखा है कि ऋग्वेद में मुनियों का निर्ग्रंथ साधु तथा उन मूर्तियों के नायक केशी का वृषभदेव के साथ संबंध हो जाने से जैनधर्म की प्राचीन परम्परा पर महत्वपूर्ण प्रकाश पड़ता है। यह केशी जैन परम्परा में प्रचलित रहा।

ऋग्वेद में वातरशना (दिगम्बर) मुनि के संबंध की ऋचायें (ऋग्वेद 10,135,2,3) में आई हैं। मुनयो वातरशना पिशंगा इत्यादि

स्वस्ति नः इन्द्रो वृद्धश्रवाः स्वस्ति नः पूषा विश्व वेदसः
स्वस्ति न स्तार्क्ष्यो अरिष्ट नेमिः स्वस्ति नो वृहस्पति र्दधातुः।।

(ऋग्वेद 1,89,6) तीर्थंकर नेमिनाथ का समय ई.पूर्व 1000के लगभग माना गया है। महाभारत में उनका नाम हरिवंश में आया है। यहां ऋग्वेद में भी है। यहां अरिष्ट नेमि का अर्थ हानिरहित नेमि वाला या शतपथ ब्राम्हण के अनुसार अहिंसा की धुरी है। वृहस्पति के समान इसमें अरिष्ट नेमि की स्तुति भी है। पार्श्वनाथ तीर्थंकर के बारे में डा.जेकोबी ने (इंडियन अन्टीक्वरी, वाल्यूम 9 पेज 160) लिखा है कि बुद्ध के समय निर्ग्रंथ संप्रदाय कोई नवीन

संप्रदाय नहीं था। यही मत पिटकों का भी जान पड़ता है।

भागवत में ऋषभदेव के जीवन वृत्त का वर्णन है:–

अथह भगवान वृषभदेवःस्ववर्ष कर्मक्षेत्र मनुमन्यमानः
प्रदर्शित गुरु कुलवासः लब्धवरै गुरु भिरनुज्ञातो
गृहमेधिना धर्मा ननुशिक्ष मापीः यतं जनया भास।

(गीता प्रेस) 5/4/8

भगवानृषभ संज्ञ अग्न्यतत्र स्वयं नित्य निवृत्तानर्थ परम्पर· केवला नंदानुभव ईश्वर एव विपरीत वत्कर्माण्यारभमाणः इत्यादि

(वही 5/4/14)

भावार्थ– भगवान ऋषभदेव ने सर्व लौकिक कियाओं का संपादन किया। वे परम स्वतंत्र भौतिक आसक्ति से रहित आनद स्वरूप साक्षात ईश्वर थे। समता, शाति और करूणा के साथ धर्म, अर्थ, यश, संतानसुख, योग और मोक्ष का उपदेश देते हुए गृहस्थाश्रम में लोगो को नियमित जीवन व्यतीत करने का उपदेश दिया। ऋषभदेव समस्त धर्मो के सार रूप वेद के गुह्य–गुह्य रहस्य के ज्ञाता थे वे सामदानादिरीति के अनुसार जनता का पालन करते थे। उन्होने सौ यज्ञों का सपादन किया था। उनके शासन काल में प्रजा सुखी थी, उसे किसी भी बात की कमी नहीं थी। ऋषभदेव ने अनेक देशो में बिहार किया था तथा देश, राष्ट्रऔर समाज हित का उपदेश दिया था।

(तीर्थंकर महावीर और उनकी आचार्य परम्परा भाग 1 पृ. 9)

तीर्थंकर नमि 21 वें तीर्थंकर अनासक्ति योग के प्रतीक थे। नमि मिथिला के राजा थे। हिन्दू पुराणों में जनक राजा के पूर्वज के रूप में माने गये है। नमि तीर्थंकर ईस्वीसन से सहस्त्रों वर्ष पूर्व हुए है।

नमि की अनासक्ति का उदाहरण पालि महाजनक जातक का निम्न प्रकार है–

सुसुखं वत जीवाम येसंनो नत्थि किंचन।
मिथिलाये दहमानाय न मे किंचि अदह्यथ।।

यह नमि दीक्षा के समय के पूर्व निर्मोह रहने का अभिप्राय है।

वैदिक काल याने ऋग्वेदादि रचना के बाद कमशः ब्राह्मण, आरण्यक और उपनिषद का काल आता है। यह ईसा पूर्व 800 शती के काल की परम्परा है।

डा. रमेशचंद्र दत्त बताते है कि जब आर्य लोग गंगा की घाटी में फैले, ऋग्वेदादि चार वेद संग्रहीत हुए, तभी ब्राह्मण ग्रंथों की रचना हुई जिनमें यज्ञ विधि लिखी गई। आरण्यकों याने वन में जाने की प्रथा में वन की विविध कियाओं का वर्णन है।उपनिषद में आत्मा के निकट बैठना और उनका शिक्षण लेना। आरण्यकों में वर्णाश्रम धर्म का विकास दिखलाई देता है। उपनिषद दार्शनिक ग्रंथ हैं।उपनिषद वैदिक कियाकलापों के विरोध में है।उपनिषदों में एक देवता ब्रह्म बतलाया है। सब देवता उसी की शक्तियाँ है। मैत्रायणीय उपनिषद में ब्रह्मा, रूद्र, विष्णु आदि देवताओं को अविनाशी ब्रहमा का प्रथम रूप लिखा है। ब्रह्म के प्रभाव से अग्नि आदि देवता सब हतप्रभ बन जाते है। प्रजापति भी ब्रह्मा का सेवक है।

प्राचीन काल में क्षत्रिय बौद्धिक जीवन से संबद्ध रहते आए हैं। इसका समर्थन उपनिषदों से होता है। शतपथ ब्राह्मण में विदेह राजा जनक अपने ज्ञान से ऋषियों को मुग्ध कर लेता है। उपनिषदों में अनेक बार कथन आता है कि क्षत्रियों के पास सर्वोच्य विद्या थी। छांदोग्य उपनिषद (5–3) में एक सवाद श्वेतकेतु और प्रवाहण का आया है। प्रवाहण ने पूछा कुमार! क्या तुम्हें मालूम है कि इस लोक से जाने पर प्रजा कहां जाती है? वह फिर इस लोक में फिर कैसे आती है? यह पितृलोक भरता क्यों नहीं है? श्वेतकेतु ने सभी प्रश्नो का उत्तर नही में दिया।इस प्रकार बहुत विस्तार से चर्चा है जिसमें समाधान नहीं हो पाया।

डा. दास गुप्ता ने :-

(हि.इ.फि.,जि.1,पृ. 31) लिखा है कि उच्चज्ञान कि प्राप्ति के लिए ब्राह्मण क्षत्रियों के पास जाते थे। यह अनुमान करना शक्य है कि साध ारणतया क्षत्रियों में गंभीर दार्शनिक अन्वेषण की प्रवृत्ति थी, जिसने उपनिषदों के सिद्धांतों के निर्माण में प्रमुख प्रभाव डाला इत्यादि।

श्री रमेश चन्द्र दत्त ने :-

भी (प्रा.भा.सं.इ.भा.5 पृ.110–111) यही विचार प्रकट करते हुए लिखा है कि "जबकि ब्राह्मण लोग किया संस्कारों को बढ़ाये जाते थें तो विचारवान सच्चे लोग यह सोचते थे कि क्या धर्म केवल इन्ही किया संस्कारों और विधियों को सिखलाता है, उन्होने आत्मा के उद्देश्य और ईश्वर के विषय में खोज की, वे नये तथा कृतोद्यम विचार ऐसे वीरोचित पुष्ट और दृढ़ थे कि ब्राह्मण लोगों ने जो कि अपने को ही बुद्धिमान समझते थें, अंत को हार मानी और वे क्षत्रियों के पास उनकों समझने के

लिए आए। उपनिषदों में ये ही दृढ़ और पुष्ट विचार हैं।"

भारत की धार्मिक क्रांति के अध्ययन में जो विद्वान लोग अपना सारा ध्यान आर्य जाति की ओर ही लगा देते है और भारत के समस्त इतिहास में द्रविड़ों ने जो बड़ा भाग लिया है उसकी उपेक्षा कर देते है वे महत्व के तत्वों तक पहुँचने से रह जाते है।

(रि.लि.इ.पृ. 4–5)

लोकमान्य तिलक ने :-

भी गीता रहस्य में (पृ 344) में लिखा है कि जैमिनी ने वेदों का स्पष्ट मत बतलाया है कि गृहस्थाश्रम में रहने से ही मोक्ष मिलता है। (वेदांतसूत्र 3,4,17,20) कर्मकांड के इस प्राचीन मार्ग को गौण मानने का आरंभ उपनिषदों में ही पहले पहल देखा जाता है। उपनिषदकाल में यह मत पहले पहल अमल में आने लगा कि मोक्ष पाने के लिए इसके पश्चात वैराग्य से कर्म सन्यास करना चाहिए। ज्ञानकांड और कर्मकाड में से किसी को गौण न कहकर भक्ति मार्ग के साथ इन दोनो का मेल कर देने के लिए गीता की प्रवृत्ति हुई है।

आत्मा पुर्नजन्म, सन्यास, तप और मुक्ति ये सारे तत्व परस्पर मे सवद्ध हैं। आत्म विद्या का एक छोर पुर्नजन्म है तो दूसरा छोर मुक्ति है और सन्यास लेकर अरण्य में तप करना पुर्नजन्म से मुक्ति का उपाय है। ये सब तत्व वैदिकेतर संस्कृति से वैदिक संस्कृति में प्रविष्ट हुए हैं। तभी तो विद्वानों का कहना है कि "अवैदिक तत्वों का प्रभाव केवल देश में विचारो के विकास के लिए एक नये प्रकार के दृश्य से परिचय में ही लक्षित नहीं होता, किन्तु सत्य तक पहुँचने के उपायों के परिवर्तन में भी लक्षित होता है।

(हि.रि.ई.वे.पृ.32)

वेदात मेतं पुरुषं महांत मादित्य वर्णं तमसः परस्तात्
तमेव विदित्वाऽतिमृत्यु मेति नान्यः पंथाः विद्यतेऽयनाय

(यजुर्वेद अ.31, मं. 18)

त्वामामनंति मुनयः परमं पुमांस मादित्य वर्णममल तमसः
त्वामेव सम्यगुपलभ्य जयंति मृत्युं नान्यः परस्तात्।
शिवःशिवपद स्यमुनीन्द्र पंथाः।।

(आ.मानतुंग–भक्तामर स्तोत्र)

उक्त पद्यों की तुलना कीजिए। ये दोनों ऋषभदेव के विशेषण हैं। ऐसे ही ओर भी है।

श्रमण

सिकंदर के श्रमण समकालीन यूनानी लेखकों ने (इं.पा.पृ.383) साधुओं को दो–दो श्रेणियों में विभाजित किया है। एक श्रमण और एक ब्राह्मण। अशोक के शिलालेखों में श्रमण और ब्राहमण पृथक बतलाये है। श्वेताम्बर जैन आगमोमेंश्रमणकेपांचप्रकारहै। निग्रंथ, शाक्य, तापस, गैरुक आजीवक। जैनसाधु निर्ग्रंथ, बौद्ध शाक्य, जटाधारी वनवासी तापस, लाल वस्त्रधारी गैरुक, गौशालक के अनुयायी आजीवक बतलाये है।

(अभिधान राजेन्द्र कोश श्रमण)

महावीर और बुद्ध दोनो के अनुयायी साधु श्रमण कहे जाते थे। महावीर और बुद्ध भी दीक्षा के बाद महाश्रमण कहलाये। तैत्ति. आर. मे भी वाक्य इस प्रकार है– वातरशना ह था ऋषभ श्रमणाः,उर्ध्वमंथिनो वभूवु.(2–7) वातरशन (नग्न) ऋषि श्रमण थे। ऊर्ध्व मंथिन याने उर्ध्व रेता अर्थात् पवित्र अर्थ सायण ने किया है। ऋग्वेद में (1,131,2) मुनियों के विशेषण रूप में वातरशना आया है। इसका अर्थ सर्वत्र नग्न किया गया है।

दिगंबरत्व (मुनि)

ऋग्वेद मे– मुनयो वातरशना पिशंगा वसते मला (मडल 10–2–136,2)

वातरशना मुनयः–दिगम्बर-मुनि (साधुनहीं)पवन रूप करधनी को ध ारण करने वाले

भागवत (पचम स्कंध अ.6,पाठ20)– ऋषभ भगवान का जन्म वातरशना नाना श्रमणाना ऋषीणां धर्मान् दर्शायितुकाम. मरुदेव्यां तनुवावतार – वातरशनाको धारण करने वाले दिगम्बर मुनि धर्म को दिखाने के लिए, मरूदेवी के शरीर में हुआ। यहां वातरशना का पर्याय श्रमणशब्द है। यह श्री बेबर महाशय ने लिखा है।

महाभारत में श्री कृष्ण अर्जुन से कहते है–

आरोहस्व रथे पार्थः। गांडीवं च करे कुरु।
निर्जिता मे दिवीमन्ये, निर्ग्रंथो यस्य सम्मुखे।।

हे अर्जुन रथ पर सवार हो जाओ, गांडीव धनुष को हाथ मे पकड़

लो। जिसके सामने दिगंबर मुनि है, समझ लो पृथ्वी को जीत लिया ऐसा मैं मानता हूँ।

एक प्रतिभाशाली जैन विद्वान ने 'मिलि आस करो सु अकव्वर की' इस समस्या की पूर्ति इस प्रकार की है–

जिय बहुतक भेष कियो जग में
छवि भागई आज दिगंबर की।
चिंतामणि प्रगटयो हिय मे तब कौन जरूरत अडम्बर की।।
जिन तारनतरन हि सेय लियो, परवाह करे को जब्बर की।
जिह आस नहीं परमेश्वर की
मिलि आस करो सुअकव्वर की।।

भर्तृहरि ने दि.मुनि का निम्न प्रकार सुंदर चित्रण किया है–

पाणिः पात्रं पवित्रं भ्रमण परिगतं भैक्ष्यमक्षय्यमन्नम् ।
विस्तीर्णं वस्त्रमाशा दशक ममलं तल्पमत्यल्प मुर्वी
येषां निःसंगी करण परिणत स्वांत संतोषितास्ते
धन्याः सन्यस्त दैन्य व्यतिकर निकरा कर्म निर्मूलयन्ति

अर्थ– युगल हस्तपुर में शुद्ध आहार लेनेवाले, दशदिशा रूप वस्त्र ग्रहण करने वाले, अल्पभूमि मे एक करवट शयन करने वाले, परिग्रह रहित सतोष वृत्ति वाले, दैन्य भाव से सर्वथा रहित दिगम्बर मुनि ध्यान द्वारा कर्मो का क्षय करते है।

जैन दर्शन की प्राचीनता

प्रो. ह्यूसन ने उपनिषदों के चार भाग बताये है। :-

प्रथम में वृहदारण्यक, छादोग्य, तैतीरीय, ऐतरेय और कौपीतकी ये पॉच।

द्वितीय मे कठक, ईश, श्वेताश्वर, मुंडक और महानारायण ये पॉच।

तृतीय में प्रश्न, मैत्रायणी और मांडुक्य ये तीन। चतुर्थ मे शेष।

डा. याकोवी बताते है :-

कि इन में सांख्य के कतिपय मौलिक विचार पाये जाते है।योग दर्शन भी इसके साथ है।

इनमें आत्मा के अमरत्व का समर्थन नहीं है, से जो जड तत्व की उससे भिन्नता भी प्रदर्शित कर सके। ये दोनों सिद्धांत इनसे पूर्व जैन और सांख्ययोग सदृश प्राचीनतम दर्शनों में पाये जाते है।

वादरायण के ब्रहम सूत्र वेदांत दर्शन के अंतर्गत है। ब्रहमसूत्र में जीवको अनादि एवं नित्य माना है। कठ और श्वेताश्वर उपनिषदों में ब्रहम से आत्माओ का पृथक अस्तित्व माना है, दोनों में ऐक्य का भी समर्थन हैं। जैन और सांख्य जड़ को भी स्थायी मानते है।साख्य मतानुसार जड प्रकृति (प्रधान)जो नाना रूप होती है। जैनधर्म में पुदगल नाना अवस्थाओ में परिवर्तित होता है। आकाश आदि पांच अजीव द्रव्य परिणामी नित्य है। इस प्रकार ये दो दर्शन प्रचीनतम हैं। शेष चार्वाक आदि अपने ढंग से विकसित हुए। चार्वाक (भूतवाद) अर्वाचीन है।

आत्मद्रव्य सांख्य मानता है परन्तु उसमें ज्ञान बिना चेतना मानता है वह उसके मत से नित्य है।

बौद्धधर्म और जैनधर्म

भंडारकर के शब्दो में कुछ समय बुद्ध जैन साधु भी रहे। 'महात्मा बुद्ध वाज ए जैन संत फार सम टाइम' प्रो. भंडारकर, जे.बी.एम.अलाहाबाद फर्वरी 1925 पृ.25

माज्झिम निकाय (बौद्धग्रथ) 1/2/2 हिन्दी पृ 48–49 के अनुसार बुद्ध ने स्वीकार किया है "वहां सारि पुत्र! मेरी यह तपस्विता थी। अचेलक नग्न था। मुक्ताचार, हस्तावलेखन नष्ट हिमांदतिक न, तिष्ठ भंदतिक (ठहरिये और भिक्षा करो, अपने उद्देश्य व नियंत्रण से नहीं खाता था। केशडाढ़ी लोचने वाला था। पीछे कठोर तपस्या से घबराकर मध्यम मार्ग ग्रहणकर बौद्धधर्म स्थापित किया।

मज्झिम निकाय पी.पी एस.आइ पी.पी 92–93 मे लिखा है– मैने निर्ग्रंथो से पूछा, ऐसी घोर तपस्या की वेदना को क्यो सहन कर रहे हो?

उन्होने कहा, निर्ग्रंथ ज्ञात पुत्र महावीर सर्वज्ञ और सर्वदर्शी है। उन्होने बताया है कि कठोर तप करने से कर्म कटकर दुख क्षय होता है।बुद्ध कहते है, यह कथन हमार लिए रूचि कर प्रतीत होता है और हमारे मन को ठीक जचता है।

डा जैकोवी को जैनधर्म, बौद्धधर्म की माता और लोकमान्य तिलक को भ.बुद्ध,भ महावीर के शिष्य स्वीकार करना पडा। (डा जैन (सूरत) वालम एक्स पी 48) (जैनधर्म महत्व भाग 1 (सूरत) पृ 83– शांति के अग्रदूत वर्द्धमान महावीर से पृ.438)

नारायण श्रीकृष्ण और तीर्थंकर नेमिनाथ

नारायण श्रीकृष्ण के पिता वसुदेव ओर तीर्थंकर नेमिनाथ के पिता समुद्र विजय दोनो सहोदर भाई थे।

ऋग्वेद (1/14/89/9) मे 'स्वस्ति नस्तार्क्ष्यो अरिष्टनेमिः' आया है। यह तीर्थंकर नेमिनाथ के लिए है।

छान्दोग्योपनिषद् में अरिष्ट नेमि का नाम घोर अंगिरस आया है। धर्मानंद कौशबी भी भगवान नेमिनाथ का नाम अंगिरस मानते है(भारतीय संस्कृति और अहिंसा) घोर शब्द जैन श्रमणों की तपस्या की उग्रता बताने के लिए अनेक स्थानों पर आया है।

छांदोग्योपनिषद् में श्रीकृष्ण को अगिरस ऋषि द्वारा 'त्वअक्षतमसि–अच्युतमसि–प्राण संशितमसि। इस प्रकार उपदेश दिया गया है।

ऋग्वेद–यजुर्वेद–सामवेद में भगवान नेमिनाथ को तार्क्ष्य अरिष्ट नेमि लिखा है–

स्वस्ति नः इन्द्रो वृद्धश्रवाः स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः
स्वस्ति नः स्तार्क्ष्योऽ रिष्टनेमिः
स्वस्ति नो वृहस्पतिर्द धातु

इस मंत्र में सर्वादि के विषहरण करने वाले गरुड समान विघ्न हर नेमिनाथ की स्तुति की गई है।

डॉ राधाकृष्णन ने (इडियन फिलोसफी वाल्यूम 1, पृ 247) लिखा है कि यजुर्वेद मे ऋषभनाथ, अजितनाथ ओर अरिष्ट नेमि इन तीर्थंकरों का उल्लेख पाया जाता है।

स्कद पुराण के प्रभास खड मे वर्णन हैं कि अपने जन्म के पिछले भाग में वामन ने तप किया। उस तप के प्रभाव से शिव ने वामन को दर्शन दिये। वे शिव श्यामवर्ण नग्न पद्मासन स्थित थे। वामन ने उनका नाम नेमिनाथ रखा। वे नेमिनाथ इस घोर कलिकाल में सब पापों का नाश करने वाले है। उनके दर्शन और स्पर्श से करोडो यज्ञो का फल प्राप्त होता है। (सस्कृत हिन्दी अनुवाद) कर्नल टॉड ने अरिष्ट नेमि के सबध मे लिखा है कि प्राचीन काल मे चार बुद्ध या मेधावी महापुरूष हुए हैं। उनमें प्रथम आदिनाथ, दूसरे नेमिनाथ। नेमिनाथ ही स्कैंडोनोबिया निवासियो के प्रथम ओडिन तथा चीनियो के प्रथम 'फो' देवता थे।

प्रो वारनेट, डॉ नागेन्द्रनाथ वसु, डा फुहर्र, मिस्टर करण, डा हरिदत्त, डॉ प्राणनाथ विद्यालकार इत्यादि का स्पष्ट मत है कि भगवान अरिष्ट नेमि को प्रभावशाली पुरूष एव ऐतिहासिक पुरूष मानने मे कोई बाधा नही।

महाभारत मे वासुदेव का उल्लेख है। भडारकर, लोकमान्य तिलक, डा. राम चौधरी आदि विद्वानों ने पाणिनि व्याकरण के सूत्रों के आधार पर ईसा की सात शताब्दी पूर्व वासुदेव की उपासना प्रचलित होना बताया है। रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार 'सूरदास' में वासुदेव भक्ति का निरूपण महाभारत काल में हुआ। विष्णु और वासुदेव का ऐकत्व भी महाभारत काल में स्वीकार किया है। (सूरदास 26) डा. भंडारकर ने दोनों वासुदेव

व कृष्ण को पहले दो पृथक्–पृथक् माना है, पीछे एक हो गये है।

महाभारत काल दोनो को एक ही मानता है। वासुदेव मुख्य नाम था, कृष्ण गोत्रसूचक था। 'दीर्घनिकाय' भी दोनो नाम को एक ही मानता है। डा. राम कुमार वर्मा, कात्यापन, पतजालि दोनों को एक ही मानते हैं। (हिन्दी सा की आलो. इति पृ 472) भगवान नेमिनाथ ने निवृत्ति प्रधान लोकोत्तर महापुरूष एवं नारायण श्री कृष्ण ने प्रवृत्ति प्रधान होकर हिंसा मास–मदिरा के विरोध मे गौरस द्वारा अहिंसा का प्रचार प्रसार किया। उन्होंने मासाहारी क्षत्रियो को आत्मालोचन के लिए विवश कर दिया। दोनों असाधारण महामानव थे। महाभारत मे 'नारायण नमस्कृत्य नर चैव नरोत्तमम्' कहकर कृष्ण की महत्ता का अपूर्व वर्णन किया है। वे लोक रक्षक आदर्श नरोत्तम थे। श्रीमद्भगवत में कृष्ण को परम ब्रहम बताया है।

ऋषभ और शिव

मोहनजोदड़ो से प्राप्त नग्न दो योगी की मूर्ति को श्री रामप्रसाद चन्द्रा ने संभावना रूप में ऋषभदेव की मूर्ति बतलाया और हरप्पा से प्राप्त नग्न धड़ को श्री रामचन्द्रन् ने ऋषभ की मूर्ति बतलाया था। दोनों स्थानों से शिव की मूर्ति मिली है। उस पर डा. राधा कुमुद मुकर्जी ने अपना अभिप्राय प्रकट किया है कि 'यदि उक्त मूर्तियाँ ऋषभ का ही पूर्व रूप है तो शैव धर्म की तरह जैनधर्म का मूल भी ताम्रयुगीन सिंधु सभ्यता तक चला जाता है। इससे सिंधु सभ्यता एव ऐतिहासिक भारतीय सभ्यता के मध्य की खोई हुई कडीका भी एक उभय साधारण सांस्कृतिक परम्परा के रूप मे कुछ उद्धार हो जाता है।'

डा मुकर्जी के 'उभय साधारण सास्कृतिक परम्परा' शब्द बडे महत्व के है। उभय शब्द से यदि हम जैनधर्म के प्रवर्तक ऋषभ और शैवधर्म के आधार शिव को ले तो हमे उन दोनो के मध्य मे एक साधारण सांस्कृतिक परम्परा का रूप दृष्टिगोचर होता है और उस पर से हमें एक कल्पना होती है कि दोनो का मूल एक तो नहीं है?अथवा एक ही मूल पुरूष दो परम्पराओ में दो रूप लेकर तो अवतरित नहीं हुआ है, क्योकि कुछ रूपों में हम आशिक की रूपता पाते है।

(जै सा इ पूर्व पीठिका पृ 107)

माघे कृष्णे चतुर्दश्यां, आदि देवो महानिशि।
शिवलिंग तयोद्भूतो, कोटि सूर्य समप्रभः।।

(ईशान संहिता)

उक्त वैदिक ग्रथ में लिखा है कि माघ कृष्ण चतुर्दशी (गुजराती व दक्षिण के पचांग में यही फाल्गुन कृष्णाचतुदर्शी कहलाती है)शिवरात्रि या ऋषभ निर्वाण तिथि है। इस दिन आदिदेव को शिवलिंग रूप से प्रकट होना बतलाया है। काल माधवीय नागर खंड में भी लिखा है कि

माघ मासस्य शेषेया, प्रथमे फाल्गुनस्य च।
कृष्णा चतुदर्शी या तु, शिवरात्रि प्रकीर्तिता।।

पूर्व श्लोक का ही इसमें भी समर्थन है। माघ कृष्ण और फाल्गुन कृष्ण एक होने पर भी जैनों ने माघ कृष्ण मान लिया है और अन्य मत में फाल्गुन कृष्ण की मान्यता है।

विकम की प्रथम शताब्दी के पूर्व आचार्य धरसेन के शिष्य पुष्पदंतभूतवली

द्वारा लिखित षट्खडागमकी टीका (प्राकृत सस्कृत) धवला (श्री आचार्य वीरसेन कृत) के मगलाचरणों मे निम्नांकित पद्य उल्लेखनीय है–

दलिय मयणप्पयावा त्तिकाल विसएहि तीहिपण्णेति।
दिट्ठ सयलत्थ सारू सुदाद्धति उरा, मुणिव्वइणो ।।२४।।
तियरयण तिसूल धारिय मोहंधासुर कबंधविंदहरा।
सिद्ध सयलप्परूवा अरहंता दुण्णयकयंता ।।२५।।

अर्थ– कामदेव के प्रताप को दलित करने वाले, त्रिकाल के विषय रूप त्रिनेत्र से सर्वपदार्थ ज्ञाता, त्रिपुररूप मोह,राग, द्वेष को भस्म कर देने वाले, मुनिपति याने दिगम्बर मुनिपति– ईश्वर, सम्यग्दर्शन ज्ञान,चारित्र इन रत्नत्रय रूप त्रिशूलधारी, मोहरूप अधकार के कबध (धड) वृन्द के हरण कर्ता, सपूर्ण आत्म स्वरूप के प्राप्त करने वाले, दुर्नय के अतकर्ता श्री अरहत होते है। यहा सर्वप्रथम परमात्मदशा प्राप्त करने वाले ऋषभ देव की अरहंत अवस्था परमात्म दशा का रूपक है। अर्हंत पूज्य को कहते हैं।

यहां रूपकालंकार में शिव और ऋषभदेव की तुलना निम्न प्रकार है–

शिव	ऋषभदेव
नग्नत्व नीलकंठस्य	दिगम्बर मुनि अवस्था
जटाजूट में गंगा	हिमवन पर्वत के पद्मद्रह से निकलने (गगावतरण) वाली गंगा का प्रवाह नीचे जटाजूट वाली मुर्ति पर गिरता है। ऋषभमूर्ति जटावाली प्राचीन उपलब्ध है
पार्वती पति	योगी के शरीर के पृष्ठभाग की रीढ की अस्थि पार्वती कहलाती है ऋषभ भी योगी माने जाते है।
विषपान (नीलकंठ)	रागादिविकार को पीने वाले
नादिया वाहन	वृषभ चिन्ह
गणेश (पुत्र)	केवल ज्ञानी या गौतम गणधर
गगा	स्वानुभूति
त्रिशूल	रत्नत्रय
नरक(अध)असुर	मोहरूपी असुर
शिवरात्रि	ऋषभ के मोक्ष का दिन

कैलाश में शिवलिंग	कैलाश मुक्ति स्थान तिब्बत की भाषा में लिंग (क्षेत्र) पूजा कैलाश की आकृति लिंग रूप है। भरत चक्रवर्ती द्वारा वहां घंटे भी इसी आकार के निर्माण कराये थे। प्रलयकर्ता छठे काल के पश्चात् होने वाले प्रलय
भारत	ऋषभ पुत्र भरत से भारत वर्ष नाम

नाभेः पुत्रश्चर्षभः वृषभ, ऋषभाद्भरतोऽभवत् ।
तस्य नाम्ना त्विदंवर्षं भारतं चेति कीर्त्यते।।५७।।

(विष्णुपुराण द्वितीयांश अ.1)

नाभिराय के पुत्र ऋषभ से भरत चक्रवर्ती पुत्र हुए, उनके नाम से भारत वर्ष नाम प्रसिद्ध हुआ। शातपथ नामक प्रसिद्ध ग्रंथ ने इस भरत को सूर्यवशी बताकर इस मत को नष्ट कर दिया कि चन्द्रवंशी दुष्यंत के पुत्र के नामपर इस देश का नाम भारत वर्ष पड़ा। शिवपुराण, वायुपुराण, स्कदपुराण, अग्नि पुराण, नारदीय पुराण, कर्णपुराण, गरूडपुराण, ब्रह्मांड, बाराह एव लिग पुराण भी इसके समर्थक हैं कि ऋषभ पुत्र भरत से भारत नाम प्रसिद्ध हुआ।

उपनिषद् और अध्यात्म विद्या

प्रो. डा. हीरालाल जी ने भारतीय सस्कृति में जैनधर्म का योगदान (म.प्र शासन साहित्य परिषद भोपाल 1962 द्वारा प्रकाशित) पृ. 49 पर लिखा है कि—वैदिक साहित्य का एक अग आरण्यक और उपनिषद् कहलाने वाले ग्रथ है, जिनमें हमें भारत के प्राचीनतम दर्शन शास्त्रियोंका तत्व चितन प्राप्त होता है।

को अद्धा वेद क इह प्रवोचत्।
कुत आजाता कुत इयं विसृष्टिः।।
(ऋग्वेद १०,१२९,६)

अर्थात् कौन ठीक से जानता है और कौन ठीक से कह सकता है कि यह सृष्टि कहां से उत्पन्न हुई? ऐसे तत्व चिंतनात्मक विचारो के दर्शन वेदो में भी अविच्छिन्न धारा दृष्टिगोचर होती है और न उक्त प्रश्नो के समाधान का कोई व्यवस्थित प्रयत्न किया गया, दिखाई देता है। इस प्रकार का चितन आरण्यको और उपनिषदो मे हमे बहुलता से प्राप्त होता हैं। इन रचनाओ का प्रारभ ब्राहमण काल मे अर्थात् ई.पू. आठवीं शताब्दी के लगभग हो गया था। और सहस्रो वर्ष पश्चात् तक निरतर प्रचलित रहा, जिसके ग्रथ पाये जाते है। ये ग्रथ केवल अपने विषय और भावना की दृष्टि से ही नही, किन्तु अपनी ऐतिहासिक व भौगोलिक परम्परा द्वारा शेष वेदिक साहित्य से अपनी विशेषता रखते हैं, जहा वेदो में देवी—देवताओ का आह्वान, उनकी पूजा अर्चना तथा सासारिक सुख और अभ्युदय संबंधी वरदानो की माग की प्रधानता है, वहां उपनिषदों मे उन समस्त बातों की कठोर उपेक्षा और तात्विक एव आध्यात्मिक चितन की प्रधानता पाई जाती है। इन चितन का आदि भौगोलिक केन्द्र वेदप्रसिद्ध पचनद् प्रदेश व गगा—यमुना के पवित्र मध्यदेश न होकर वह पूर्व प्रदेश है, जो वैदिक साहित्य में धार्मिक दृष्टि से पवित्र नहीं माना गया।

अध्यात्म के आदि एवं प्रधान चिंतक जनक जैसे क्षत्रिय राजर्षि जनक एवं उनके पूर्वज नमिराजा जैनधर्म के 21वे तीर्थंकर हुए है।"

मेरे (लेखक) पास 'कल्याण' का उपनिषद अंक है। उसमें उपलब्ध 122 उपनिषद की सूची है। इस अंक (जनवरी 1949 गीता प्रेस गोराखपुर)में 54 उपनिषदों का वर्णन है।

महोपनिषद (साम वेदीय) द्वितीय अध्याय में देखिये—महातपस्वी दिगम्बर शुकदेव जी ने अपने पिता कृष्ण द्वैपायन व्यास जी से प्रश्न किया, यह जगत् प्रपंच कैसे उत्पन्न हुआ, किस प्रकार विलीन होता है? यह क्या है,किस प्रकार है?कब हुआ है? बतलाइये। व्यास जी बहुत कुछ कहने के बाद पुत्र को संतुष्ट न देखकर बोले— मै तत्वतः इन बातों को नहीं जानता। मिथिलापुरी में जनक नामके राजा है, वे इन सब बातों को भली भांति जानते है। पुत्रः तुम उनसे सब कुछ प्राप्त कर सकते हो। शुकदेव जी जनक के पास विदेह नगरी पहुँचे ।।14—20।। बहुत सी चर्चा के पश्चात् राजा जनक ने कहा— शुकदेव जी, मैं सारे ज्ञान विस्तार को कहता हूँ। जिसके जानने में पुरूष शीघ्र ही मुक्ति को प्राप्त कर सकता है। दृश्य जगत है ही नहीं—यह बोध हो जाने पर मन की दृश्य विषय से परिशुद्धि हो जाती है।(अध्यात्म दृष्टि से) जब यह बोध परिपक्व हो जाता है,तब उससे निर्वाण रूपी परमशांति प्राप्त होती है। वासनाओं का तो निःशेष परित्याग होता है, जो श्रेष्ठ त्याग है, उसी विशुद्ध अवस्था को साधु जनों ने मोक्ष कहा है। आत्म विद्या का ज्ञान उपनिषदों से ही होता था, वेदों से नही, इस संबंध में देखिए — अंगिरा के पास जाकर शौनक ने पूछा भगवन्। किसे जानने पर यह सबकुछ जान लिया जाता है? अगिरा ने कहा—दो विद्यायें हैं—एक परा और दूसरी अपरा। ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद, शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरूक्त, छन्द और ज्योतिष यह अपरा है तथा जिससे उस अक्षर (नित्य)परमात्मा का ज्ञान होता है, वह परा है।

(मुंडकोपनिषद् 1/1/3—5)

श्रमण परम्परा में क्षत्रियों की प्रमुखता रही है। क्षत्रिय की उत्कृष्टता का उल्लेख 'वृहदारण्यकोपनिषद्' में भी है। वहा लिखा है आरंभ में एक ब्रह्म ही था। अकेले होने के कारण वह विभूतियुक्त कर्म करने में समर्थ नहीं हुआ उसने अतिशय से क्षत्रइस प्रशस्त रूप की रचना की अर्थात् देवताओं में जो क्षत्रिय,इन्द्र,वरूण,सोम,रूद्र,मेघ,यम,मृत्यु और ईशान आदि है, उन्है उत्पन्न किया, अत. क्षत्रिय से उत्कृष्ट कोई नहीं है। क्षत्रियों की श्रेष्ठता उनकी रक्षात्मक शक्ति के कारण नहीं, किन्तु आत्मविद्या की उपलब्धि के कारण थी। यह आश्चर्य पूर्ण नहीं, किन्तु बहुत यथार्थ बात है कि **ब्राह्मणों को आत्मविद्या क्षत्रियों से प्राप्त हुई है।**

आरूणि के पुत्र श्वेतकेतु पंचाल देशीय लोगों की सभा में आये। वहा प्रवाहण ने श्वेतकेतु से पूछा, प्रजा कहाँ जाती है, वह इस लोक मे कैसे आती

है आदि प्रश्नों का उत्तर उसे प्राप्त नहीं हुआ तब श्वेतकेतु के पिता गौतम के पास आएऔर गौतम राजा के स्थान पर अपनी जिज्ञासा प्रस्तुत की। राजा ने कहा–गौतम पूर्वकाल में तुमसे पहले यह विद्या ब्राह्मणों के पास नहीं गई। इसी से सम्पूर्ण लोकों में क्षत्रियों का ही अनुशासन होता रहा है।

(छान्दोग्योपनिषद 5/3/1–7, पृ.472–479)

अध्यात्म विद्या की परम्परा बहुत प्राचीन रही है, संभवतः वेद रचना के पहले भी रही है। उसी के पुरस्कर्त्ता क्षत्रिय थे। ब्राह्मण पुराण भी इस बात का समर्थन करते है कि **भगवान ऋषभ क्षत्रियों के पूर्वज थे**।

(ब्रह्मांड पुराण पूर्वार्द्ध अनुषंगपाद अध्याय 14/60)

आर्यो के आगमन के पहले भारत मे सभ्य और असभ्य दो जातियॉं थी।असुर, नाग और द्रविड ये सभ्य और दास ये असभ्य थे। असुर अर्हन् ध र्म के उपासक थे। विष्णु पुराण (3/17/18) पद्मपुराण (सृष्टिखंड,अध याय 13, श्लोक 170–413) मत्स्य पुराण (अध्याय 14,श्लोक43–49) और देवी भागवत पुराण (स्कध 4,अ.13,श्लोक 56–57) मे असुरों को आर्हत् का अनुयायी बनने का उल्लेख है। वेदो और पुराणों में कथित 'देवदानव युद्ध' आर्यो और आर्य पूर्व जातियों के प्रतीक का युद्ध है।आर्यो के आगमन के साथ–साथ असुरों से उनका संघर्ष छिडा और वह तीनसौ वर्ष तक चलता रहा (अथदेवासुर युद्धमभूत्वर्ष शतुत्रय, मत्स्य पुराण,अ.24,श्लोक 30) असुर प्रारंभ मे आकमण मे आर्यो से पराजित नहीं हुए । जब तक वे सदाचारी और सगठित रहे। जब असुरों के आचरण में शिथिलता आई तब आर्यो से वे परास्त हो गए

(महाभारत, शांति पर्व,227/59–60, एवं अ.228/49/50)

आर्यो का प्रभुत्व उत्तर भारत पर अधिक हुआ। दक्षिण भारत मे उनका प्रवेश देर से हुआ। विशेष प्रभावशाली रूप मे नहीं हुआ। पदमपुराण (13/412)मे बताया है कि असुर लोग जैनधर्म को स्वीकार करने के बाद नर्मदा के तट पर निवास करने लगे। इससे स्पष्ट है कि अर्हत का धर्म उत्तरभारत मे आर्यो का प्रभुत्व बढ जाने के बाद दक्षिण भारत मे विशेष बलशाली बन गया। असुरों का उत्तर से दक्षिण की और आना उनकी एवं द्रविडों की सभ्यता और संस्कृति की समानता का सूचक है।

श्रमण परम्परा में धर्म संघ के लिए तीर्थ शब्द का प्रयोग होता था और उसके प्रवर्तक तीर्थंकर कहलाते थे।

(भगवती 20/8)

भारतीय विद्याओं में आत्म विद्या सर्वोच्च है। आत्मविद्या को ज़ान लेने पर सब कुछ जान लिया जाता है (मुंडकोपनिषद् 11+3) भगवान ऋषभ मोक्ष धर्म के प्रवर्तक अवतार है

(श्रीमद् भागवत्1/2/20)

भगवान ऋषभ के 100 पुत्र थे उनमें नव पुत्र वानरशन श्रमण बने। वे आत्मविद्या विशारद थे।

(श्रीमद् भागवत 11/2/20)

ब्रह्म का साक्षात्कार पाने वाले विद्वान सन्यासी के लिए यज्ञ का यजमान आत्मा है. अंतःकरण की श्रद्धा पत्नी है। शरीर समेधा है।हृदय वेदि है। मन्यु (कोध) पशु है। तप अग्नि है और दम दक्षिणा है।

(तैत्तिरीय आरण्यक, प्रपाठक अनुवाक 64, भाग 2 पृ.779)

सर राधाकृष्णन अपने भारतीय दर्शन (इंडियन फिलासफी भाग1 पृ 287) में लिखते है – जैन परम्परा के अनुसार जैनधर्म के संस्थापक श्री ऋषभदेव थे जो शताब्दियों पहले ही हो गए है। इस बात का प्रमाण है कि ई पू प्रथम शताब्दी से प्रथम तीर्थंकर श्री ऋषभदेव की पूजा होती थी। इसमें संदेह नहीं कि जैनधर्म वर्धमान या पार्श्वनाथ से भी पहले प्रचलित था। यजुर्वेद में ऋषभदेव,अजितनाथ, और अरिष्ट नेमि इन तीन तीर्थंकरों के नामों का निर्देश है। भागवत् पुराण इस बात की पुष्टि करता है कि ऋषभ देव इस काल चक मे जैनधर्म के सस्थापक थे।

जिस समय वैदिक आर्य भारत वर्ष में आए उस समय भी यहां ऋषभदेव का धर्म मौजूद था और उनके अनुयायियो से भी वैदिक आर्यो का सघर्ष अवश्य हुआ होगा। द्रविड वश मूलत भारतीय है और द्रविड संस्कृति भारतीय है, क्योंकि द्रविड भाषा मे केवल भारत वर्ष में ही पायी जाती है। यह द्रविड़ संस्कृति अवश्य ही जैनधर्म से प्रभावित रही है। यही कारण है जो जैनधर्म में द्रविड़ नामका एक संघ पाया जाता है। द्रविड़ संघ का एक मात्र घर दक्षिण भारत ही है। अतः उनके पभाव मे वैदिक आर्य बहुत बाद में आए होंगे यही वजह है जो ऋग्वेद के बाद में संकलित किये गये, यजुर्वेद में कुछ जैन तीर्थंकरों के ही नाम पाये जाते है।

जब वैदिक धर्म यज्ञ प्रधान बन गया और पुरोहितो का राज्य हो गया तो उसके बादमें आम जनता में जो उनके प्रति अरुचि पाते है, जिसका उल्लेख ऊपर किया है वह आकस्मिक नहीं है, किन्तु शुष्क

कियाकांड की विरोधिनी उस श्रमण संस्कृति के जन्मदाता ऋषभदेव थे। उसी के फलस्वरूप उपनिषदों की रचना की गई, जिनसे वेद का प्रमाण तो स्वीकार किया गया किन्तु उससे प्राप्त होने वाले ज्ञान को नीचा ज्ञान बतलाया गया। इस प्रकार उपनिषदों ने ऊँचे आध्यात्मिक सिद्धांत का प्रतिपादन तो किया किन्तु वैदिक कियाकांड का विरोध नहीं किया।

सर राधाकृष्णन के अनुसार—(इंडियन फिलासफी भाग 2, पृ. 264—65) जब समय आध्यात्मिक सिद्धांत के प्रति एक निष्ठा की चाह थी। तब हम उपनिषदों में टालने की नीति का व्यवहार होता हुआ पाते है। वे प्रारंभ तो करते है आत्मा को समस्त बाहय प्रवृत्तियों से स्वतंत्र करने से, किन्तु उसका अत होता है उसी पुरानी लडी को जोडने सें। जीवन का नया आर्दश स्थापित करने के बदले वे पुराने मार्ग को ही फैलाते हुए दिखाई देते है। आध यात्मिक राज्य का उपदेश देना उसको स्थापित करने से एक बिलकुल जुदी ही वस्तु हैं। उपनिषदों ने प्राचीन वैदिक कियाकाड को ऊचे अध्यात्मवाद से जोडने का प्रयास किया, किन्तु तत्कालीन पीढ़ी ने इसमें कतई अभिरूचि नहीं दिखाई। फलतः उपनिषदों का ऊचा अध्यात्मवाद लोकप्रिय नहीं हो सका। इसने पूरे समाज को भी प्रभावित नहीं किया। एक ओर यह दशा थी, दूसरी और यात्रिक धर्म अब भी बलशाली था। फल यह हुआ कि निम्न ज्ञान के द्वारा उच्च ज्ञान दलदल मे फंसा दिया गया'

(जैनधर्म कैलाशचंद जी शास्त्री 373—74)

जैन, बौद्ध, आजीवक,गैरिक, तापस आदि (दशवैकालि क—पत्र 68) तथा रक्त पट, चरक, परिव्राजक, शैव, कापालिक(मूलाचार 5—62) ये अवैदिक सप्रदाय तथा सांख्य दर्शन अवैदिक संप्रदाय वैदिक धारा का विरोधी था। उसने श्वेताश्वतर, प्रश्न, मैत्रायणी इन प्राचीन उपनिषदों को प्रभावित किया था। उपनिषद् पूर्ण रूप से वैदिक धारा के ग्रथ नहीं है। वैदिक साहित्य का मुख्य भाग यज्ञ हैं। समूचा यजुर्वेद उसी से युक्त है। श्रमण धारा व उपनिषद धारा समान है। इनका प्रवाह अध्यात्म विद्या की ओर था। क्यो आए है,कहाँ जांएगे आदि प्रश्न का विचार अध्यात्म विद्या से संबंधित है

(केनोपनिषद्)

धर्म,अर्थ,काम इस त्रिवर्ग का कथन लौकिक साहित्य से सबधित है। आचार्य शकर के अनुसार ईश, केन, कठ, प्रश्न, मुंडक, मांडूवय, तैत्तिरीय, ऐतरेय, छांदोग्य, वृहदारण्यक ये प्राचीन है और डॉ. वेलकर और रानाडे,

छादोग्य, वृहदारण्यक, ईश, कठ, ऐतरेय, तैत्तिरीय, मुंडक, कौषीत कि, केन प्रश्न दत उपनिषदों को प्राचीन मानते है

(हिस्ट्री आफ इंडियन फिलासफी, भाग 2, पृ. 87–90)

यह पहले बतलाया गया है कि पराविद्या अध्यात्म या आत्म विद्या है जिससे ब्रहम की प्रप्ति होती है। अपराविद्या वेद है (मुडकोपनिषद् 2–5) प्रश्नोपनिषद में बताया गया है कि ऋग्वेद के द्वारा साधक इस लोक को, यजुर्वेद द्वारा अंतरिक्ष को और सामवेद के द्वारा तृतीय ब्रहम लोक को प्राप्त होता है।

ध्वन्दोग्य उपनिषद् 6/5/1 तथा वृहदारण्यक 2/2/9–10 मे आत्म यज्ञ की स्थापना का उल्लेखकर किसी अवैदिक धारा की ओर संकेत किया है। **वैदिक ऋषियों में उदारभाव और सर्वग्राही भावना भी रही है।**

मुडक,छादोग्य,आदि उपनिषदो मे अनेक स्थल ऐसे है जहां श्रमण विचार धारा का प्रतिबिंब है। जर्मन विद्वान हर्टले ने यह प्रमाणित किया है कि मुडकोपनिषद मे लगभग जैन सिद्धॉत जैसा वर्णन मिलता है।

वृहदारण्यक के याज्ञवल्क्य कुषीतक के पुत्र कहोल से कहते है, यह वही आत्मा है जिसे जान लेने पर ब्रहमज्ञानी पुत्रैषणा, वित्तैषणा, लोकैषणा, इनसे मुँह फेरकर ऊपर उठ जाते है। एम विण्टरनिट्ज ने अर्वाचीन उपनिषदो को अवैदिक माना है

(प्राचीन भारतीय साहित्य पृ.190–191)

महाभारत, शातिपर्व अध्याय 263 श्लोक 18–21 मे लिखा है कि प्राचीन काल मे ब्राह्मण सत्य यज्ञ और दम यज्ञ (इन्द्रिय विजय) का अनुष्ठान करते थे। वे परम पुरूषार्थ (मोक्ष)के प्रति लोभ रखते थे। उन्हें धन की प्यास नहीं रहती थी। वे उससे सदा तृप्त थे। वे प्राप्त वस्तु का त्याग करने वाले और ईष्या द्वेष से रहित थे। वे शरीर और आत्मा के तत्व को जानने वाले और आत्मयज्ञ परायण थे। वे वेद के अध्ययन में तत्पर रहते थे। स्वय संतुष्ट थे और दूसरों को संतोष की शिक्षा देते थें।

अहिंसा सकलो, धर्मो,हिंसा धर्म स्तथा हितः

(महाभारत शांतिपर्व अ.272, श्लोक 20)

भारत से बाहर जैनधर्म

सर हेनरी सलिन्सन :-

के अनुसार मध्य एशिया के बलरव नगर का नया बिहार तथा ईटो से निर्मित स्मारक–अवशेष वहा कश्यप के आने की सूचना देते है। कश्यप एक प्रसिद्ध जैन मुनि थे। मध्य एशिया के कियामिशि नगर (कैस्पिया) मे सिकदर के यूनानी सिपाहियो ने बहु सख्यक निर्ग्रंथ साधु देखे थे।

भगवान महावीर के पूर्व मध्य एशिया के कैस्पिया, अमना, समरकद, बलरव आदि नगरो मे जैनधर्म फैला था। ई पूर्व छठी शताब्दी मे यूनान के इतिहासकार हेरोडोतस ने अपने इतिहास मे एक ऐसे भारतीय धर्म का उल्लेख किया है जिसमे मास निषेध था। जिसके मानने वाले शाकाहारी थे। 580 ई पूर्व उत्पन्न दार्शनिक पैथेगोरस, जो भगवान महावीर का समकालीन था, जीवात्मा के पुनर्जन्म व आवागमन तथ कर्मसिद्धात मे विश्वास करता था। जीवहिंसा व मांसत्याग का उपदेश देता था। कुछ वनस्पतियों को अभक्ष्य मानता था। इस सप्रदाय के विचारक आयोनियन या आरफिल कहलाते थे। उक्त विचारो की समानता जैनधर्म से है यह बौद्ध या वैदिक मत से मेल नही खाता है।

मेजर जनरल फर्लांग :-

का कथन है कि लगभग 1500 से 800 ई पूर्व पर्यन्त, किन्तु इससे भी पूर्व सपूर्ण उत्तर, पश्चिम तथा मध्यभारत मे तुरानियो (द्रविड) का प्रभुत्व था। हमने इसके साथ ही एक ऐसा दार्शनिक सदाचार एव नव प्रध ान धर्म अर्थात् जैनधर्म प्रचलित था। जिसके आधार मे अन्य धर्मो मे सन्यास मार्ग विकसित हुआ।

एशिया के विभिन्न भागो मे दक्षिण व पूर्व के सिहलद्वीप (लका) जावा, बोर्नियो, ब्रहम आदि देशो मे भारतीय उपनिवेश थे जहा भारतीय सस्कृति व धर्म के मानने वाले थे। अमन व मकसूदनिया मे जैनधर्म था, चीनी यात्रियों ने वहा जैन साधुओ का होना लिखा है। यूनानी लेखक हिरोडोतस ने उत्तरी अफ्रीका के इथियोपिया में जैन साधु भ्रमण करते देखे थे। इस प्रकार उस काल में जैनधर्म एशिया के पश्चिम, मध्य व दक्षिण पूर्व एवं अफ्रीका के उत्तरी भाग व यूनान में फैला हुआ था।

प्रसिद्ध जर्मन इतिहास लेखक वान्क्रमर के अनुसार मध्य पूर्व मे प्रचलित 'समानिया' सप्रदाय श्रमण शब्द का अपभ्रंश है। इतिहास लेखक जी.एफ. मूर लिखते है कि हजरत ईसा की जन्म शताब्दी के पूर्व ईराक,श्याम, फिलिस्तान मे जैन मुनि और बौद्धभिक्षु सैकड़ो की सख्या मे चारो ओर फैले हुए थे।

'सियादत्त नाम नासिर' के लेखक लिखते है कि इस्लाम धर्म के कलन्दरी तबके पर जैनधर्म का काफी प्रभाव था। कलन्दर चार नियमों का पालन करते थे–साधुता, शुद्धता, सत्यता और दरिद्रता। वे अहिसा पर अखड विश्वास रखते थे।

इस सबध मे विश्वभरनाथ पाडे ने 'अहिसक परम्परा' लेख मे लिखा था।

यूनान में जैन

यूनानी इतिहास से पता चलता है कि ईसा से कम से कम चार सौ वर्ष पूर्व दिगबर भारतीय तत्ववेत्ता पश्चिमी एशिया मे पहुँच चुके थे, पोप के पुस्तकालय मे एक लातीनी आलेख मे, जिसका हाल मे अनुवाद हुआ, पता चलता है कि ईसा की जन्म शताब्दी तक इन दिगम्बर भारतीय दार्शनिको की एक बहुत बडी सख्या इथियोपिया (अफ्रीका) के वनो मे रहती थी और अनेक यूनानी विद्वान वहां जाकर उनके दर्शन करते थे और उनसे शिक्षा लेते थे यूनान के दर्शन और अध्यात्म पर इन दिगम्बर महात्माओ का इतना गहरा प्रभाव पडा कि चौथी सदी ईसा पूर्व मे प्रसिद्ध यूनानी विद्वान पिटो ने भारत आकर उनके ग्रंथों और सिद्धातों का विशेष अध्ययन किया। फिर यूनान लौटकर एलिस नगर मे एक नई यूनानी दर्शन पद्धति की स्थापना की।

(खड 2 पृ 128) (भारत और मानव सस्कृति–विश्भरनाथ पाडे)

आचार्य जिनसेन के महापुराण (9 वी शताब्दी) के अनुसार दशम शीतलनाथ तीर्थकर के समय मे वैदिक आर्य भारत मे पूर्व की ओर से फैलते हुए पजाब से लेकर पश्चिमी उत्तर प्रदेश को अपना केन्द्र बना लिया। श्रमण शासक अग, मगध तथा पूर्वी उत्तर प्रदेश मे सीमित होते चले गये।

मेसोपोटामिया की प्राचीन संस्कृति

ईसा से लगभग चार हजार वर्ष पहले मेसोपोटामिया में सभ्यता अपनी प्रारंभिक स्थिति से निकलकर निश्चित उन्नत्ति की ओर कदम बढ़ा रही थी। मेसोपोटामिया को संस्कृतिक दृष्टि से हम तीन भौगोलिक

हिस्सो में बांट सकते है। दजला और फिरात का पूर्वी भाग अथवा आधुनिक बगदाद और ईरान की खाडी के बीच का हिस्सा काबुल और वैविलोनिया कहलाता था। इसके भूभाग में प्रागैतिहासिक काल से ही एक जाति बस गई थी जिसे इतिहास में सुमेरो जाति कहा जाता है। यह जाति कहां से आई इसके निश्चित ऐतिहासिक प्रमाण नहीं मिलते किन्तु सुमेरी भाषा और भारतीय द्रविड़ भाषाओं के साम्य को देखते हुए बहुत से इतिहासज्ञों का यह मत है कि सुमेरों जाति का सबंध दक्षिण भारत के द्रविड़ो से रहा होगा। इस बात के ऐतिहासिक प्रमाण मिलते हैं कि सुमेरो सस्कृति और सिधु सभ्यता के केन्द्र मोहनजोदडो मे गहरा आदान–प्रदान का संबध था।

(भा मा स पृ 90)

अन्य सभ्यताओं से संबंधं

पूर्व मेसोपोटामिया लेख में यह बतलाया था कि सुमेरी भाषा और भारतीय द्रविड़ भाषाओ के साम्य को देखते हुए इतिहासज्ञो का यह मत है कि सुमेरी जाति का सबध दक्षिण भारत के द्रविडो से रहा होगा इस दृष्टि से सुमेरी सभ्यता के सबध मे यहा बताया जा रहा है।

सुमेरी सभ्यता ईराक की सर्वप्रथम सभ्यता थी। सिध मे मोहनजोदडो इराक मे 'उर' और नीलनदी के किनारे 'अविदा' के पुराने खडहरो को खोदकर पुराने इतिहास के अन्वेषको के, ईसापूर्व पाचहजार वर्ष पुरानी जो वस्तुएँ सामने हैं, उनसे ज्ञात होता है कि उस वक्त भारत, सुमेर और मिस्र तीनो सभ्यतायें परस्पर मिली हुई थीं। सुमेर दोनो के मध्य मे था। उर इराक का सबसे प्राचीन शहर था। वहा की सबसे पुरानी कब्रे, जिनमे वहां के राजाओं के पजर व बहुमूल्य सामान मिले है, 3500 ई पू. से पहले का माना जाता है। यह समय मिस्र के प्रथम राजकुल के सम्राट् मेनी के पूर्व का था।

'अविदा' की खुदाई में उस समय की ऐसी वस्तुएँ मिली है जो सुमेरी वस्तुओं से मिलती हुई हैं। ये सब मेनी सम्राट् के समय की हैं। मेसोपोटामिया में ये मेनी के सैकड़ों वर्ष पूर्व से मिलती है।

जाहिर है मिश्र मे ये नये लोग एशिया से ही गये थे। सुमेरी और भारतीय कभी न कभी एक ही जाति थी। मेनी के समय में सुमेर की सभ्यता मिस्री सभ्यता से ऊंची थी। इराक में उर के पास के गांव में जो खुदाई हुई है उसमें हिन्दुस्तान की मार्शल की मिट्टी के बर्तन मिलते है।

एक सींगवाली मूर्ति सुमेर के शक्ति के देवता अवनी से मिलती है। हडप्पा में बाद के समय का एक सिंगारदान मिला है जो उर के पहले राजकुल के समय का उर में मिला है। मोहनजोदड़ो का एक खास शक्ल का घडा इराक में निप्पर के एक घोडे से मिलता है।

सर जान मार्शल लिखते है कि इस किस्म की मिलती जुलती चीजों को बहुत बढ़ाया जा सकता है। ये चीजें इस बात को सावित करने के लिए काफी हैं कि उस जमाने में यानी सरगन के पहले या सरगन के समय मे हिन्दुस्तान और सुमेर मे आना-जाना, लेना-देना, और सभ्यता की दूसरी बातो मे गहरा सबध था। सर जान यह भी लिखते है कि इन पुराने देशों मे मार्शल मिट्टी के इन पुराने देशो मे मिट्टी के बर्तनों के जो नमूने मिले हैं उनमे सावित होता है कि सिधु, वलुचिस्तान ओर ईराक की संस्कृतियो का एक दूसरे से गहरा सबध था।

सुमेरी जाति ने सर्वप्रथम दक्षिण मेसोपोटामिया पर कब्जा किया, वहां से वह उत्तर की ओर बढी। इतिहासज्ञों की राय है कि सुमेरी काठियावाड से ईरान की खाडी के रास्ते इराक और मेसोपोटामिया पहुँचे। सन 1936 मे काठियावाड मे एक पुराना ताम्रपत्र मिला है, जिसमें वहा के निवासियो का नाम 'श' लिखा है। सुमेरी जाति का नाम शू है। काठियावाड का पुराना नाम सुराष्ट्र है। सुमेरी विद्वान थे। उनकी शारीरिक गठन भारतीय आर्यो की सी थी। सुमेर की भूमि अत्यत उपजाऊ थी। उनका धधा खेती था। उर की खुदाई से पता चलता है कि पुराने जमाने मे भारत और सिध से सुमेर का नजदिकी सबध था। असूरिया में 2700 ई पू के सुमेरी मकान मिले है। शाम के उत्तरी हिस्से में 3000 ई पू. की बनी हुई सुमेरी सील पाई गई है।

उर के पहले राजकुल में पहले सुमेरी सस्कृति और सुमेरी सभ्यता अपनी स्थिति सुदृढकर ली थी, पूरे इराक पर सुमेर का राज्य था। उर मे एक कब्रिस्तान मिला है। जिसकी प्रथम कब्रें ईसा से 3500 वर्ष पूर्व की है। कब्रों में शवों के साथ में बहुमूल्य वस्तुऐं रखी हुई मिली है उर की खुदाई में 5500 वर्ष पुराना एक राष्ट्रध्वज मिला है। यह झंडा सीप और लाजवर्द का बना हुआ है उसमें अपूर्व चित्रकारी है। उर में अनेक राजकूलों ने राज्य किये। बीच में राजधानी उर के स्थान में अगारे नगर आ गई थी। फिर भी उर का महत्व कम नहीं हुआ। अनेक राजा हुए

अनेक मंदिर बने। सुमेरी सभ्यता दूर-दूर तक फैली। यूरोप की सभ्यता सुमेरी विचारों की नींव पर ही कायम हुई है। बाईबिल से मालूम होता है कि पहले यहूदियों ने , बाद में उनके द्वारा यूरोप ने सुमेरी विचारों और विश्वासों को ग्रहण कर लिया। हजरत ईसा की दस आज्ञाओं की बुनियाद में सुमेरी आज्ञायें ही है। प्रसिद्ध विद्वान बूली लिखते हैं – कि इतिहास की खोजों से मालूम हुआ कि यूनान के जिज्ञासु हृदय ने लिविया से, खस्तियों से, फोजेशिया से, केट से, वाबुल से, मिस्र से, भारत से ज्ञान की प्यास को बुझाया। ईसा से लगभग 1500 वर्ष पूर्व मानव सस्कृति के अंतर्गत यूनान का अध्याय जोड़ा गया। भारतीय, सुमेरी ओर मिस्री सभ्यता की किरणें केट और सीरिया से यूनान पहुँची। प्रारभ मे यूनानी कबीले एक ही बोली ओर एक ही परम्परा में बधे हुए थें। धीरे – धीरे आर्यो के जत्थे पर्वत श्रेणियो को पारकर दक्षिण की उपन्यकाओं मे प्रविष्ट हुए और सैकडों वर्षों के अंतर में यूनान पहुँचे। प्रत्येक आगतुक ने अपना धर्म और रीति रिवाज अलग-अलग स्थापित किया इस तरह नये समाज की रचना मे 7-8 शताब्दियाँ बीत गई। यूनानी परिश्रमी थे। उन्हें भारत, सीरिया, मेसोपोटामिया, केट, से जो कुछ मिला, ग्रहणकर अपनी सभ्यता को दृढ किया यूनान मे सिंधु, नील, दजला और फिरातकी सभ्यताओ का मिश्रण हुआ। ईरान मे सामाजिक, धार्मिक और राजनैतिक एकता होने से उसकी सस्कृति का जन्म हो रहा था। बाद में यूनानी जनतत्र और ईरानी राजतत्र में सघर्ष हुआ जिसमे ईरान को नम्र होना पडा। यूनानी जनस्वातत्र्य मे बाढ आ गई। यूनानी समाज में प्रत्येक क्षेत्र में उन्नति प्रारभ हो गई। यूनानी समाज मे प्रत्येक व्यक्ति का महत्व था। जनस्वातत्र्य के इस वातावरण में यूनान में 200 वर्ष के भीतर सोलनसरी, पेटीक्लीज सयाल ऊँचे राजनीतिज्ञ, पिथागोर और सुकरात जैसे महान सत, अफलातून और अरस्तू समान महान दार्शनिक, वुकरात समान रसायन शास्त्री, एचिल और सोफोक्लीज तुल्य साहित्यिक, ब्राइगो, फिडिया और पलिगनीतु जैसे कलाकार एवं सिकदर जैसे विजेता का जन्म दिया। यूनानी संस्कृति ने जल्दी ही अधिक उन्नत्ति कर ली। सामाजिक ढांचे की दुर्बलता के कारण उसका सूरज जल्दी डूब भी गया।

दर्शन और विज्ञान में सर्वप्रथम यूनान में 'थेली' का नाम आता है, वह यूनानी वैज्ञानिक और दर्शन शास्त्री माना जाता है। ज्योतिष, रेखागणित का भी वह प्रथम विद्वान था। उसके बाद उसके शिष्य पिथागोर यूनानी दर्शन के विद्वान हुए। अफलातून, अरस्तू, सुकरात और सिकंदर तो विश्व

प्रसिद्ध व्यक्ति हुए हैं। यूनानी जिज्ञासु और विद्वान मिस्र, ईरान आदि में जाकर वर्षों शिक्षा ग्रहण कर अपने देश को समृद्ध बनाया। महाकवि होमर यूनान का प्रसिद्ध था। एंथिल यूनान का महान नाटककार था।

यूनानी संस्कृति के बाद सभ्यता को उसकी देन बहुमूल्य और महत्वपूर्ण है। पिथागोर और तीर्थंकर पार्श्वनाथ समकालीन थे। पिथागोर भारत आया था। जब वह यहाँ से वापस गया उसने अहिंसा, सत्य एवं अचौर्य का व्रत लिया और केवल शुक्ल वस्त्र पहनना प्रारंभ किया।

ईसा से दो सौ वर्ष पूर्व मिस्र की राजधानी सिकंदरिया में तौरेत और यहूदी धर्मग्रथो का यूनानी भाषा में अनुवाद हुआ। यहूदी ग्रंथ यूनानी भाषा मे लिखे गये।

वह समय धार्मिक एव सांस्कृतिक प्रसार का था। सिकंदरिया और पाटलीपुत्र में राजदूतो एवं दार्शनिक विद्वानों का आना जाना तथा व्यापार का सबध भी हो गया था। पीछे बौद्धधर्म का पश्चिमी दुनिया में प्रचार प्रसार भी हो रहा था। बौद्धभिक्षुओं के सिवाय उन देशों में जिन्मोसोफिस्ट या हाइलोविदो, जिन का शब्दार्थ नगे फिलास्फर या दिगम्बर तत्ववेत्ता एवं हाइलोविदो का अर्थ वानप्रस्थ है। ये लोग शमन (श्रमण) कहलाते थे। जिनका यूनानी लेखकों ने वर्णन किया है, उससें प्रकट है कि इनमें से अनेको का सबध जैनधर्म से भी था। इतिहास से यह स्पष्ट है कि जैन, बौद्ध और सनातन तीनों धर्म के विद्वान एक साथ उन दिनों दूर–दूर के देशों में जा धर्म प्रचार करते थे। यूनानी इतिहास सेपता चलता है ईसा से कम से कम चार सौ वर्ष पूर्व दिगम्बर भारतीय तत्ववेत्ता पश्चिमी एशिया में पहुँच चुके थे। यूनान के दर्शन और अध्यात्म पर इन दिगम्बर मान्यताओं का इतना गहरा प्रभाव पड़ा कि चौथी सदी ई.पूर्व में यूनानी विद्वान पिरों ने भारत आकर उन ग्रथो और सिद्धांतो का विशेष अध्ययन किया।

भारत से लौटने के बाद पिरो दिगम्बर रहता था। वह योगाभ्यास करता था और निर्विकल्प समाधि में विश्वास करता था ई.पूर्व दूसरी सदी में 'ऐस्सेनी' सम्प्रदाय की यहूदियों में स्थापना हुई। इनका मुख्य सिद्धांत अहिंसा था। ये पशुबलि, मांस मदिरा सेवन के विरूद्ध थे।

ज्ञानविज्ञान और विद्या की दृष्टि से यहूदी जाति एक अत्यंत क्षमाशील है। यूनानियों ने उनके देश को पराधीन बनाया। इतिहास बताता है कि बाबुली सम्राट् हजारों यहूदियों को बंदी बनाकर दूर–दूर

देशों में ले गए किन्तु उनकी स्वतंत्र भावनाओं को बंदी बनाने में सफल नहीं हुए। अरबों के भीषण हमलों से यहूदी छिन्न–भिन्न होकर सारी दुनिया में बिखर गये। नात्सियों के भयंकर अत्याचार भी उनके जातीय गुण को नष्ट नहीं कर सके। यहुदी एक विशुद्ध जाति बनी रही।

संसार की सबसे पुरानी सभ्यताओं में से एक चीनी सभ्यता भी मानी जाती है। जापानियों ने सभ्यता चीन से सीखी है। 1911 ई. में पुराने राजकुलों के विरूद्ध राज्यक्रांति होने से उनकी हुकूमत खत्म होकर जनतंत्र चीन में स्थापित हो गया। मिस्र और काबुल की सभ्यताओं से भी पुरानी चीनी सभ्यता है। चीन में लिपि की दीर्घकालीनता विज्ञान का प्रारंभ, कागज, छपाई, कम्पास एवं बारूद काम प्रथम माना जाता है।

चीनी कौम का जन्मदाता हुआँग–ति (2700 ई.पू.) सम्राट को माना जाता है। चीन का इतिहास उस समय से शुरू होता है।

महात्मा कन्फूशियस द्वारा संग्रहीत दो गीत उल्लेखनीय है :–

१. जब सूरज निकलता है मैं उठ जाता हूँ
जब सूरज डूबता है मैं आराम करता हूँ
पानी पीने के लिए मैं कुआ खोद लेता हूँ
और खाना खाने के लिए जमीन जोतता हूँ
सम्राट् की हुकूमत सम्राट् के पास रहे
मुझे उससे क्यो लेना देना।

२. ऐ खुश किस्मत बादल! फैला दो
अपने रंगों को चारों तरफ
ऐ सूरज और ऐ चाँद! चमकाओ
और सुन्दर बनाते रहो
दिन और रात को हमेशा-हमेशा

भारत और चीन के लोग सदा से परस्पर मित्रता का व्यवहार करते आए हैं। जापानी विद्वान प्रो. हाजिमें नाकामुरा, पी.एच.डी., टोकियो ने 'चीनी साहित्य में श्री ऋषभदेव' लेख में प्रकट किया है कि भगवान ऋषभदेव के व्यक्तित्व से जापानी भी अपरिचित नहीं है। चीनी साहित्य द्वारा उनका परिचय प्राप्त हुआ है। जापानी उन्हें रोकशव नाम से पुकारते हैं।

आर्यदेव द्वारा रचित षट्शास्त्र का चीनी रूपांतर मिलता है। कपिल, कणाद, ऋषभ आदि भगवान कहलाते हैं। ऋषभ के शिष्य गण निर्ग्रन्थों

के धर्म ग्रंथो का पाठ करते हैं। वे तपस्या करो, केशलोंच करो, उपवास करो आदि कहते है।

पुरातत्व और धर्मग्रंथों से प्रमाणित होता हैकि जैनधर्म अत्यधिक प्राचीन है।

जुलाई 42 के 'हिन्दुस्तान रिव्यू' मे प्रो. तानयून शान ने लिखा है कि "शीतराज्य (ई पू. 246–227) से पूर्व भारत से बौद्ध धर्म चीन पहुँच चुका था।" तानयुन शान के मतानुसार दोनों राष्ट्रो मे सांस्कृतिक एकता का सूत्रपात आज से दो हजार वर्ष पूर्व ही हो गया था।

अशोक जैसे अंतराष्ट्रीय राजा के समय धर्म की सुगध चीन भी जा पहुँची यह अनैतिहासिक नहीं जान पडती। इतिहास से पता चलता है कि चीन से फाहियान, हुएनसाग, इत्सिंग (675 से 695 तक) नालदा मे विद्यार्थी थे। ऐसे विद्वान भारत यात्री आए और भारत से ब्राह्मण कालीन कवयथ, मातग, कुमार जीव श्रमण तथा गुनरल श्रमण जैसे प्रसिद्ध अनुवादक चीन गये। वहा सस्कृत से चीनी भाषा मे लगभग 98 पुस्तको का अनुवाद कश्यप मातग ने किया। हुएनत्साग 657 पुस्तके भारत से ले गया था जिनमें से 75 पुस्तको का अनुवाद कर सका। अमोघवज्र–उत्तर भारत का ब्राह्मण कुल का श्रमण सन् 710 ई मे चीन गया। वह भारत और लका के शास्त्रो पर लगभग 500 हस्तलिखित पुस्तके संग्रहीत करता रहा। उसे चीनी सम्राट् ने 'प्रज्ञा कोष' की उपाधि दी। कुमार जीव श्रमण, जो भारतीय श्रमण था, सन् 383 मे चीन गया वहा पुस्तको का अनुवाद करता रहा। उसकी 50 पुस्तके उपलब्ध है। देव,दानपाल, दिवाकर, गौतम, धर्मदेव, धर्मनदी, धर्मप्रिय, भरत, धर्मरक्षा, धर्मरूचि, नरेन्द्र, उज्जैन का परमार्थ, प्रभाकर, प्रमिति, बुद्धभद्र, मगध का मैत्रेय, रत्नमति, बज्रबोधि दक्षिण भारतीय श्रमण प्रज्ञा (हुई थी) भारतीय श्रमण, ज्ञानश्री भारतीय श्रमण ये सब चीन जाने वाले तथा, डा राधाकृष्णन् की इण्डिया एड चाइना पुस्तक के अनुसार अनेक नाम हैं जो चीन धर्म प्रचारार्थ गये थे। अजता और एलोरा की चित्रकला के आदर्श ले जाने वाले भी चीन गये थे। एक समय राजधानी लोयाग में तीन हजार भारतीय योगियों के सिवाय दस हजार भारतीय परिवार जीवन यापन करते थे। भारतीय संस्कृति का प्रभाव चीन वासियों के जीवन के हर अग पर समान रूप से पडा है।

महाभारत मे चीन वासियो का वर्णन बहुत बार आया है। आदि पर्व, सभापर्व, उद्योग पर्व में चीनी सैनिकों का भारतीय सेना के साथ के

उल्लेख हैं। रामायण में भी उल्लेख हैं।

चीनी यात्री फाहियान चौथी शताब्दी का एक प्रसिद्ध यात्री भारत आया था। चीन से वह पैदल रवाना हुआ उसकी समुद्र यात्रा में 15 वर्ष लगे जिनमें 9 वर्ष चलने मे और बाकी पढने में। तीस देशों की उसने यात्रा की।

जैसे चीन के बारे मे कहा जाता है कि 10 हजार वर्ष पूर्व चीनी इतिहास के अनुसार योउत्साओं और सुएइजेन ने घर बनाना और लकडी जलीकर भोजन बनाना सिखलाया फिर धीरे–धीरे परिवार–विवाह के लिए नियम बनाये, जातियॉ बनी, इस तरह चीनी सभ्यता का निर्माण हुआ।

महाभारत आदि मे चीन का वर्णन आता है भारत को चीन का पता व सबध था। जापान इससे बहुत पीछे था। सैकडो जापानी चीन आए और वहा से शिक्षण प्राप्त कर अपने देशो मे प्रचार प्रसार किया। जापान ने सभ्यता चीन से सीखी। ईसा की छठी शताब्दी मे कोरिया होकर भारत से बौद्धधर्म का प्रवेश हुआ। कोरिया से लेखक, कवि, पत्रकार, चित्रकार आदि जापान पहुँचे। जापान मे पुराने धर्म पूजा विधि, देवगण पर बौद्धध र्म प्रभाव पडने से परिवर्तन भी हुआ। पहले जापान मे शिन्तो धर्म था शितो का सिद्धात देवताओ के मार्ग पर चलना था। जापान मे बौद्धधर्म के महायान दर्शन का प्रचार प्रसार हुआ। वहा ईसा की प्रथम शती में बाहर देशो से मिष्ट फलादि भी लाये गये जिनसे नवीन फलाहार का प्रचार प्रसार हुआ। हिन्दूधर्म के शिव–पार्वती गणेश, सरस्वती, सूर्य आदि का भी प्रचार हुआ। इनकी मूर्तियो का निर्माण हुआ।

ईसा की प्रथम शताब्दी मे अश्वेत अफ्रीका के साम्राज्य थे। उनकी अपनी सभ्यता थी। वे जगली नहीं थे। उनको मूर्तिकला, चित्रकला, आर्थिक योजना, अपने नियम विधान का ज्ञान था। वहा की राजधानी घना मे सोनिन की फला जाति का शासन था। वह देश नगर, सैनिक आदि से सपन्न था। वस्त्र निर्माण व आभूषण का भी प्रचार था। वहा निग्रो सभ्यता थी। इनमे समष्टिवाद प्रचलित था। यूरोप निवासियो ने उन पर अत्याचार कर उन्हें बदनाम कर दिया और अमरीका आदि में करोडो की सख्या में ले जाकर बेच दिया। वहा ईसाई धर्म का प्रचार भी किया गया।

(भारत और मानव सस्कृति के आधार पर)

मक्का में जैनमंदिर

वास्तुकला मर्मज्ञ फर्म्यूसन ने अपनी पुस्तक विश्व की दृष्टि में इस बात की पुष्टि की है कि मक्का में मोहम्मद साहब के पूर्व जैन मंदिर विद्यमान थे, किन्तु काल की कुटिलता से जब जैन लोग उस देश में नहीं रहे तो मधुपति के दूरदर्शी श्रावक मक्का से वहां पर स्थित मूर्तियों को ले आए थे, जिनकी प्रतिष्ठा अपने नगर में करा दी गई जो आज भी वहां विद्यमान है महाकवि रत्नाकर ने कन्नड काव्य 'भरततेश वैभव' में लिखा है कि सम्राट् भरत मक्का गये तो वहा के राजाओ ने भरत का स्वागत किया।

आधुनिक इतिहास द्वारा

ई. अठारहवीं शती के लगभग ग्रीक और रोम के प्राचीन साहित्य के पाश्चात्य विद्वानो ने प्राचीन भाषाओ का अध्ययन प्रारम्भ किया तो उन्हे सस्कृत भाषा के शब्द और प्रत्यय, ग्रीक ओर लेटिन भाषा के सबंध मे अन्वेषण करने पर तुलनात्मक भाषा विज्ञान द्वारा ऐतिहासिक अनुसंधान की दिशा मिली। उसके परिणाम स्वरूप ऋग्वेद विश्व की प्राचीनतम पुस्तक और ज्ञानविज्ञान का भडार बतलाया गया।

वैदिक साहित्य का परिचय मिलने पर पाश्चात्य विद्वान बौद्ध और जैन साहित्य के सपर्क मे आए। उन्होने ऐतिहासिक पद्धति द्वारा प्राप्त साधनो से इन धर्मो की खोज की। यूरोप मे उस समय जैन धर्म के ग्रन्थों के उपलब्ध ा न हो सकने से विद्वानो मे विचारभेद हो गया जिसे डा बुहलर ने अपनी पुस्तक (ई से जै पृ 23) मे प्रकट किया। पीछे खोजो के फलस्वरूप डा याकोवी एव डा बुहलर आदि विद्वानो ने जर्मन विद्वानो के सहयोग से जैनध ार्म न केवल बौद्धधर्म से एक स्वतत्र धर्म प्रमाणित हुआ। किन्तु उससे प्राचीन भी प्रमाणित हुआ बौद्धधर्म के मान्य विद्वान श्री रे डे विडस (बु ई पृ 143) ने भी स्वीकार किया है कि भारत के सम्पूर्ण इतिहास मे बौद्धधर्म के उत्थान से लगाकर आज तक जैन लोग एक व्यवस्थित समाज के रूप मे रहते आए हैं।

डा याकोबी जैनधर्म को बौद्धधर्म से प्राचीन प्रमाणित करके ही चुप नहीं बैठे, उन्होने बुद्ध से 250 वर्ष पूर्व होने वाले भगवान पार्श्वनाथ को भी ऐतिहासिक पुरूष प्रमाणित किया और इसको ऐतिहासिक व्यक्तियो ने सादर स्वीकार किया। उडीसा की हाथी गुफा से प्राप्त खारवेल का शिलालेख भी इसका समर्थक हैं।

श्री जायसवाल ने नागरी प्रचारिणी पत्रिका भाग 8, अक 3, पृ 301 मे प्रकाशित कराया था कि पूर्व समस्त शिलालेखो मे जैनधर्म का यह सबसे प्राचीन शिलालेख है। इससे ज्ञात होता है कि पटना के नद के समय मे उडीसा (कलिगदेश) मे जैनधर्म का प्रचार था और जिनेन्द्र की मूर्ति की पूजा होती थी। ऋषभदेव की मूर्ति को नद उडीसा से पटना ले आया था। वह मूर्ति प्रथम तीर्थंकर की कलिग जिन के नाम से प्रसिद्ध थी। जब खारवेल ने मगध पर चढाई की तो वह उस मूर्ति को भी वहॉ से वापस ले आया था। ईसवी सन् से 458 वर्ष पहले और विकम सवतसे 400 वर्ष पूर्व उडीसा मे जैनधर्म का प्रचार था।

पूर्वकालीन स्थिति

सूर्यवंशोत्पन्न अयोध्या पति श्री रामचन्द्र मुनिसुव्रत बीसवें तीर्थंकर के काल में दोनो संस्कृतियों के समन्वय करने वाले महान पुरुष हुए। जिन के कारण भारतीय संस्कृति का प्रकाश दक्षिण देश में पहुँचा। वेदों में 'मुनयोवातरशना' के रूप में दिगम्बर मुनियों का उल्लेख मिलता है। वैदिक आर्य श्रमणोपासक पूर्वी आर्यो को व्रात्य कहते थे। अथर्ववेद में व्रात्यस्ताये के रूप मे उनकी स्तुति की गई है।

तेईसवे तीर्थंकर नेमिनाथ श्रीकृष्ण के चचेरे भ्राता थें। जरासंध के आतक से यदुवंशियों को शैरीपुर छोड़कर द्वारका में रहना पड़ा। महाभारत के युद्ध के पूर्व वैदिक आर्यो का प्रभाव बहुत बढ़ा हुआ था। इस युग में वैदिक क्षत्रियों की राजनैतिक शक्ति सर्वोपरि थी। इस युग के अंत में श्रीराम के समान ही यदुवशी श्रीकृष्ण ने भी वैसी ही श्रमण और वैदिक दोनों सस्कृतियो के समन्वय का स्तुत्य प्रयत्न किया उनका दोनो परंपराओं मे सम्मान रहा। तीर्थंकर अरिष्टनेमि का यजुर्वेद में स्मरण किया गया है। जैन परम्परा में श्रीकृष्ण नारायण, अर्धचकवर्ती, त्रिखंडाधिपति माने गये है। पांडव गण भी जैन धर्मोपासक और अंत में तपकर के पूर्व तीन मुक्ति को ओर अंत के दो सर्वार्थसिद्धि को प्राप्त हुए बतलाये गये है।

महाभारत युद्ध से वैदिक क्षत्रियों की राजसत्ता अवनत होकर उसका अंत सा हो गया।

प्रो. जयचंद्र विद्यालंकार :-

का कथन है कि भारत का प्राचीन इतिहास जितना वेदों को मान्य करने वालों का हैं उतना ही वेद विरोधी जैनों का है। जैनों के प्राचीन तीर्थंकर भी वैसे ही वास्तविक ऐतिहासिक पुरूष हैं जैसे कि वेदों के रचयिता ऋषिगण तथा ब्राह्मण परम्परा के अन्य प्राचीन महापुरूष।

श्रमण संस्कृति शुद्ध भारतीय प्राचीन मानव संस्कृति है जो वैदिक धर्म और ब्राह्मण संस्कृति के उदय के संभवतया कुछ पूर्व ही अस्तित्व में आ चुकी थी और विकसित हो चुकी थी। ब्राह्मण–वैदिक संस्कृति के उदय के उपरान्त वह (श्रमणसंस्कृति) उसके साथ संघर्ष करती, समन्वय करती, आदान–प्रदान करती तथा अपनी सत्ता बनाये रखती हुई विकसित होती

रही।(भा. इति. एक दृष्टि प्र अ.) वर्तमान इतिहास कार अब भारतवर्ष का नियमित इतिहास महाभारत युद्ध के बाद से मानने लगे है। इसका प्राचीन युग महाभारत युद्ध से लेकर मुसलमानो द्वारा भारत की विजय के साथ समाप्त होता है। इस ढाईसहस्र वर्ष के दीर्घ प्राचीन युग का पूर्वार्ध उत्तर भारत के इतिहास से संबंधित है।

प्रो. पार्जीटर के अनुसार :-

महाभारत की तिथि ई. पूर्व 950 है। डा काशीप्रसाद जायसवाल ई पूर्व 1450, जयचन्द्र विद्यालंकार के अनुसार 1424 किन्तु बहुमत 15वीं शताब्दी ई. पूर्व के लगभग हुआ मानता है।

इस घटना के बाद अर्जुन पौत्र परीक्षित हस्तिनापुर साम्राज्य का अधिपति हुआ। इस प्रकार ई. पूर्व 1400 के लगभग भारतीय इतिहास का प्रारंभ माना जाता हैं। यही काल कलियुग के प्रारम्भ का ब्राह्मण परम्परा मानती है। जब श्रीकृष्ण की ऐतिहासिकता में कोई संदेह नहीं किया जाता तो उनके चचेरे भ्राता तीर्थंकर अरिष्टनेमि को ऐतिहासिक व्यक्ति मानने में कोई कारण नहीं रहता।

प्रसिद्ध कोषकार डा नगेन्द्रनाथ बसु, पुरातत्वज्ञ डा फुहरर, प्रो बारनेट, कर्नलटाड्, मि. कर्वा, डॉ.हरिसत्य भट्टाचार्य, डा. प्राणनाथ विद्यालकार, डा.राधाकृष्णन आदि अनेक प्रामाणिक विद्वान नेमिनाथ की ऐतिहासिकता में संदेह नहीं करते। ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद, ऐतरेव ब्राह्मण, यास्क, निरूक्त, वेदार्थदीपिका, सायणभाष्य, महाभारत, स्कंद पुराण एवं मार्कंडेय पुराण, आदि प्राचीन ग्रन्थो में उनके उल्लेख है।

कर्नल टाड अपने :-

'राजस्थान' में लिखते है कि "मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि प्राचीन काल में चार बुद्ध या मेधावी महापुरूष हुए उनमें प्रथम ऋषभदेव एव द्वितीय नेमिनाथ थे।

डा. फुहरर :-

'एपी ग्रेफिका इंडिका व्हाल्यूम – 2 पृ. 206 – 207 में लिखते हैं– जैनध र्म के 22वें तीर्थंकर नेमिनाथ ऐतिहासिक पुरूष माने गये है। भगवद् गीता के परिशिष्ट में श्री वरवे इसे स्वीकार करते हैं कि नेमिनाथ श्रीकृष्ण के भाई थें। वे जैनियों के 22 वे तीर्थंकर श्रीकृष्ण के समकालीन थे। तो शेष इक्कीस तीर्थंकर श्रीकृष्ण के कितने वर्ष पहले होने चाहिए यह पाठक अनुमान कर

सकते है। नेमिनाथ के पश्चात् तेईसवें तीर्थंकर पार्श्वनाथ जो काशी के राजकुमार थे, जिनके वंश में सम्राट् ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती हुआ था।

डा. राय चौधरी

के अनुसार काशी के ये राजे वैदिकधर्म एवं यज्ञों के विरोधी थे। बौद्ध अनुश्रुति पार्श्व पिता अश्वसेन थे। महाभारत में अश्वसेन नागनरेश का उल्लेख मिलता है। पार्श्वनाथ का जन्म ई.पूर्व 847 में हुआ था।

डा. जार्ल चार पेंटियर के अनुसार :-

'जैनधर्म के मूल सिद्धांतों के प्रमुखतत्त्व महावीर के बहुत पूर्व पार्श्वनाथ के समय से ही व्यवस्थित रहे आये प्रतीत होते है।'

प्रो. हार्सवर्थ :-

के अनुसार गौतमबुद्ध के समय से पूर्व ही पार्श्वनाथ द्वारा स्थापित जैनसंघ, जो निर्ग्रंथ संघ कहलाता था, एक विधिवत् सुसंगठित धार्मिक संप्रदाय था।"

प्रो. जयचन्द्र विद्यालंकार का कथन है :-

अथर्ववेद में जिन व्रात्यों उल्लेख है वे अर्हन्तों और चैत्यों के उपासक थे। वे अर्हंत और उनके चैत्य बुद्ध के समय के बहुत पहले से विद्यमान थे। **डा विमल चरण लाहा कहते है** कि " महावीर के उदय के पूर्व भी यह धर्म जिसके कि वे अंतिम उपदेशक थे, वैशाली तथा उसके आसपास के प्रदेशों में अपने किसी पूर्व रूप मे प्रचलित रहता रहा प्रतीत होता है। ऐसा प्रतीत होता है कि कम से कम उत्तरी एवं पूर्वी भारत के कितने ही क्षत्रिय जन, जिनमें कि वैशाली निवासियों की प्रभुसत्ता थी, पार्श्वनाथ द्वारा स्थापित एवं प्रचलित धर्म के अनुयायी थे। आचारांग सूत्र आदि से पता चलता है कि महावीर के माता–पिता पार्श्व के उपासक एवं श्रमणों के अनुयायी थें।"

बुद्ध के शरीरांत की तिथि का बहुमान्य मत ई.पू. 483 है। तीस वर्ष की आयु में उन्होने गृहत्याग किया, उसके छहवर्ष बाद उन्हे बोधि प्राप्त हुई। जीवन के शेष 44 वर्ष धर्म प्रचार किया। वज्जिसंघ नामक गणतंत्र के अंतर्गत क्षत्रिय कुंडग्राम के कश्यप गोत्री क्षत्रिय नेता सिद्धार्थ की पत्नी त्रिशला देवी से वर्धमान महावीर का जन्म हुआ। यह चैत्रशुक्ला 13, 30मार्च सन् 599 ई. पू. का समय था। वज्जिसंघ के अध्यक्ष वैशाली के लिच्छवी शासक चेटक महावीर के मातामह (नाना) थे। महाराज चेटक के दस पुत्र थे। ज्येष्ठ पुत्र सिंहरथ जो बज्जिसंघ के सेनापति थे। महाराज चेटक की सात पुत्रियां थी। चेलना श्रेणिक (विंवसार) मगध नरेश के साथ विवाही थी।

दूसरी कौशांबी नरेश शतानीक के साथ। तीसरी दशार्ण के राजा दशरथ के साथ, चौथी सिंधुराज सौवीर के साथ, महाराज उदयन के साथ पांचवी, अंत की दो ज्येष्ठा और चंदना बाल ब्रह्मचारिणी रही। वैशाख शुक्ला 10 (26 अप्रैल ई.पू. 557) को महावीर केवलज्ञानी हुए।

इन्द्रभूति (गौतम) अग्निभूति, वायुभूति, आर्यव्यक्त, सुधर्म, मौंडिकपुत्र, मौर्यपुत्र, अकंपित, अचल, मैत्रेय, प्रभास ये ग्यारह ब्राह्मण गणधर थे। कार्तिक कृष्णा 30 मंगलवार 15 अक्टुबर ई.पू. 527 या विक्रम पूर्व 470 तथा शक पूर्व 605 के प्रातः (चतुर्दशी के अंत)सूर्योदय के पूर्व मध्यम पावा में श्री महावीर का निर्वाण हुआ।

'संस्कृति के चार अध्याय' में श्री रामधारीसिंह दिनकर ,

पंचसंस्करण, पृष्ठ 130पर लिखते हैं:–

"जैन धर्म का अहिंसावाद वेदों से निकला है, ऐसा सोचने का कारण यह है कि ऋषभदेव और अरिष्टनेमि जैनमार्ग के इन दो प्रवर्तक का उल्लेख ऋग्वेद में मिलता है। जैनधर्मके पहले तीर्थंकर श्री ऋषभदेव है। उनकी कथा विष्णुपुराण और भागवत पुराण में भी आती है, जहाँ उन्हें महायोगी, योगेश्वर और योग तथा तप मार्ग का प्रवर्तक कहा गया है।

इन दोनों पुराणों का यह भी कहना है कि दशावतार के पूर्व होने वाले अवतारों में से एक अवतार ऋषभदेव भी हैं। इससे यह पता चलता है कि वेदो के गार्हस्थ्य प्रधान युग थे वैराग्य, अहिंसा और तपस्या के द्वारा धर्मपालन करने वाले जो अनेक ऋषि थे, उनमें श्री ऋषभदेव का अन्यतम स्थान था और उनकी परम्परा में भी लोग अहिंसा तथा तपश्चर्या के मार्ग पर बढ़ते रहे। उन्होने जैनधर्म का पथ प्रशस्त किया।" संस्कृति की चार अध्याय के प्रारम्भ में **जवाहरलाल जी नेहरू की प्रस्तावना** है। अनेक मतो के कथन करते हुए सारभूत यह पढ़ने में आई कि द्रविड़ और आर्य इसी देश के मूल निवासी थे। यह इसलिए कि आर्यो का मूल अभिजन रूस के दक्षिण में था और यही से आर्यो की कुछ शाखायें पश्चिम की ओर यूरोप पहुँच गई और कुछ शाखाऐं ईरान चली गई। उस समय न तो देश बने थे, न मानवों की टोलियाँ एक भाग से दूसरे भाग तक दौड़कर जाती थीं। दक्षिणी रूस से ईरान अफगानिस्तान तक जाने में उन्हें कईसौ वर्ष लगें होगे। ईरान से भारत आने में भी शताब्दियाँ लगी होंगी। इसलिए भारत को आर्यो ने अपने लिए नया देश नहीं समझा तो इसमें आश्चर्य नहीं। जब आर्य ईरान में थें, उस समय संस्कृत और इरानी दो नही,

भाषा एक ही थी। (पृ.23) आर्य ईरान से पंजाब तीन हजार वर्ष पहले पहुँच चुके थे। वेदों की रचना कदाचित् उसके बाद की है। किन्तु अपनी सभ्यता का विकास वे पहले कर चुके थे। हम इस निष्कर्ष से भाग नहीं सकते कि मोहनजोदड़ों की सभ्यता आर्ये भिन्न सभ्यता थी। संस्कृत भाषा भारत में आर्यो के साथ आई। आर्य शब्द की व्युत्पत्ति ऋ–गति के अर्थ के कारण आर्य गत्वर (गयन करने वाले) थे। ये एशिया के रेगिस्तानी इलाकों से भारत पहुँचे। भारत में काश्मीर, पश्चिोत्तरभारत और पंजाब ये उनके पौरूष के कीड़ा क्षेत्र थें। वहीं रहकर उन्होने भारत की संस्कृति का निर्माण किया।

डॉ. मंगलदेव शास्त्री ने लिखा है कि

"बहुत से विद्वानो को भी पर जानकर आश्चर्य होगा कि वैदिक संहिताओं में मुक्ति, मोक्ष अथवा दुःख शब्द का प्रयोग एक बार भी हमको नहीं मिला। नरक शब्द ऋग्वेद संहिता, शुक्ल यजुर्वेद माध्यंदिन संहिता तथा सामसंहिता में एक बार भी नहीं आया है। अथर्ववेद सहिता में नरक शब्द केवल एक बार प्रयुक्त हुआ है।"

"आर्यो के प्राचीन साहित्य मे निवृत्ति विरोधी विचार इतने प्रबल है कि निवृत्तिवादी दृष्टिकोण को आर्येतर माने बिना चल नहीं सकता। इसी प्रकार ऋषि और मुनि शब्दों का युग्म भी विचारणीय है। ऋषि शब्द का मौलिक अर्थ मंत्रदृष्टा है। वैदिक आर्य गृहस्थ होते थे और सामिष आहार से उन्हे परहेज नहीं था।

मुनि गृहस्थ नहीं होते थे। पुराणों मे ऋषि और मुनि के प्रायः पर्यायवाची होने का एक कारण पुराणो का आचार वैदिक और प्राग्वैदिक संस्कृतियो का समन्वित रूप हैं। जब बौद्ध और जैन आंदोलन खडे हुए, बौद्धो और जैनों ने प्रधानता ऋषि शब्द को नहीं, मुनि शब्द को दी। इसमे भी यही अनुमान दृढ होता है कि मुनि परम्परा प्राग्वैदिक रही होगी। इस अनुमान की पुष्टि इस बात से भी होती है कि मोहनजोदड़ों की खुदाई में योग के प्रमाण मिले हैं और जैनमार्ग के आदि तीर्थंकर श्री ऋषभदेव थे, जिनके नाम, योग और वैराग्य की परम्परा उसी प्रकार लिपटी हुई है, जैसे कालातर मे वह शिव के साथ समन्वित हो गई।"

डा. राधाकृष्णन का कथन है :-

"इस विषय के प्रमाण है कि ईसवी सन् के एक शताब्दी पूर्व लोग प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव की पूजा करते थे। इसमें कोई संदेह नहीं है कि वर्धमान और पार्श्वनाथ के पूर्व में भी जैनधर्म विद्यमान था। यजुर्वेद मे

ऋषभदेव, अजितनाथ तथा अरिष्ट नेमि इन तीन तीर्थंकरों का उल्लेख पाया जाता है। भागवत पुराण से, ऋषभदेव जैनधर्म के संस्थापक थे, इस विचार का समर्थन होता है।"

हिन्दी अनुवाद – इण्डियन फिलोसफी पेज 1–2–7–8

श्री विनोबाभावे लिखते है :-

" जैन विचार निःसंशय प्राचीन काल से है, क्योंकि 'अर्हन् इंददयसे विश्व मम्बम्' इत्यादि वेद वचनों में यह पाया जाना हैं। इस पंक्ति का अर्थ वेद के व्याख्याकार सायण के शब्दों मे यह है– हे अर्हन् तुम इस विशाल विश्व की रक्षा करते हो। इस वाक्य का भाव भी जैनों के मूलभूत जीवदया अहिंसा सिद्धांत के अनुकूल है।"

सर षण्मुखं चेट्टी :-

ने मद्रास में महावीर जयती पर अपने व्याख्यान मे कहा था कि "आर्य लोग भारत में बाहर से आए थे। उस समय भारत में जो द्रविड लोग रहते थें उनका धर्म जैनधर्म ही था। अत. प्रमाणित होता है कि भारत वर्ष के आदि निवासी जैनधर्म के आराधक रहे हैं।"

(केन्द्रीय धारा सभा के भूतपूर्व अध्यक्ष श्री चेट्टी के भाषण से)

डा.ए.गिरनार ने लिखा है :-

"जैनधर्म मे मनुष्य की उन्नत्ति के लिए सदाचार को अधिक महत्व प्रदान किया गया है। जैनधर्म अधिक मौलिक, स्वतत्र तथा सुव्यवस्थित है।"

डा जिमर :-

जैनधर्म को आर्यो का पूर्ववर्ती धंर्म कहते है । जैन धर्म प्राग्वैदिक है (फिलोसफीज ऑफ इंडिया पेज 60)

फरलांग साहब :-

इस परिणाम पर पहुँचते है कि "जैनधर्म के प्रारंभ को जानना असमव है।"

मद्रास हाइकोर्ट के स्थानापन्न प्रधान न्यायाधीश **श्री कुमार स्वामी** ने लिखा है –"आधुनिक शोध ने यह प्रमाणित कर दिया है कि जैन धर्म हिन्दू धर्म से मतभिन्नता धारण करने वाला उपभेद नहीं है। जैनधर्म का उद्‌भव एवं इतिहास उन स्मृति शास्त्रों तथा उनकी टीकाओं से बहुत प्राचीन है जो हिन्दु कानून और रिवाज के लिए प्रामाणिक मानी जाती है।"

(मद्रास हाइकोर्ट ए.एल.आर. 1927 मद्रास 228)

मुंबई हाइकोर्ट के न्यायमूर्ति रांगलेकर :-

का यह निर्णय महत्वपूर्ण है –"आधुनिक ऐतिहासिक शोध से यह प्रकट हुआ है कि यथार्थ में ब्राम्हण धर्म के सद्‌भाव अथवा उसके हिन्दू र्म के रूप में परिवर्तित न होने के बहुत पूर्व जैनधर्म इस देश में विद्यमान था। यह सत्य है कि देश में बहुसंख्यक हिन्दुओं के संपर्कवश जैनियों में ब्राह्मण धर्म से संबंधित अनेक रीतिरिवाज प्रचलित हो गए हैं"

(ब्रिडे संप्रति पृ. 335)

डा हरिसत्य भट्टाचार्य एम.ए. के :-

'भगवान अरिष्ट नेमि नामक अंग्रेजी पुस्तक के पृष्ठ 88–89 में भगवान नेमिनाथ को ऐतिहासिक महापुरूष स्वीकार किया है। यदि महाभारत के प्रमुख पुरूष श्रीकृष्ण इतिहास की भाषा में अस्तित्व रखतें हैं, तो उनके चचेरे भाई परम दयालु भगवान नेमिनाथ को कौन सहृदय ऐतिहासिक विभूति न मानेगा। जिनके निर्वाण स्थल रूप में ऊजर्यन्त गिरि पूजा जाता है।

डा. टी. के. लड्डू का कथन है :-

"महावीर स्वामी के पूर्व जैनधर्म के इतिहास की विश्वसनीय खोज नहीं की जा सकती। परन्तु वह बौद्धधर्म से प्राचीन है। इसका व्यवस्थापक कोई अन्य व्यक्ति था। चाहे भगवान पार्श्वनाथ हों अथवा अन्य तीर्थंकर हों जो महावीर स्वामी के पूर्व विद्यमान रहें हो।"

भागवत में :-

ऋषभदेव विष्णु के नवम (9वें) अवतार माने गये है पर अवतार वामन,राम, कृष्ण, और बुद्ध के पहले हुआ है। जब 15वें वामन अवतार का उल्लेख ऋग्वेद में है तो यह अवतार उस वेदमंत्र से प्राचीन ठहरा और ऋषभदेव वामन अवतार से प्राचीन है अतः यह सिद्ध है कि ऋषभदेव द्वारा प्रतिपादित धर्म जैनधर्म भी प्राचीन है।

(मूललेखक अंग्रेजी सी.आर.दास बैरिस्टर की पुस्तक–जैन धर्म की प्राचीनता के ज्वलंत प्रमाण अनुवादक श्री कामताप्रसाद जी – सनातन जैनधर्म पृ. 19)

उक्त पुस्तक पृष्ठ 14 पर डा. विल्सन लिखते है :-

आर्य लोग उठाऊ चूल्हे नहीं थे, बल्कि उनके और शत्रुओं के भी घर ग्राम और शहर थे। उनके घरों में हर तरह की जीवन की सामग्री रहती थी।

वे कातकर और बुनकर कपड़े पहनते थे। वे लोहे का भी व्यवहार करते थे। उनमें लुहार, सुनार, बढ़ई आदि शिल्पकार थे। वे कुल्हाडियों से जंगल के वृक्ष काटते थे और अपनी गाड़ियों को चिकनी बनाने के लिए रंदा भी चलाते थें। युद्ध संबंधी वस्तुओं में उनके पास कवच, गदा, धनुष, बाण, बरछी, तलवार, और ढालें थी। वें शंख से रणभेरी का काम लेते थे। उन्होंने अपने घरेलू व्यवहार और देवो की पूजा के लिए कटोरे, कलशे, चमचें आदि बनाये थे। उस समय क्षौर किया हेतु नाई भी थे। वे जवाहरातों का मूल्य जानते थें। उनके पास सोने की थालियॉ, कटोरे ओर जवाहरात की मालायें थी। युद्धार्थ रथ, घोडे और बैलगाड़ियॉ थी।

उस समय युद्ध में सवारी के लिए घोडे और उनके सईस भी थें। उनमें हिजड़ें भी थे। उन्होने छोटी–छोटी नाव ओर जहाज भी बनाये थे। वे अपने घरों से दूर देशातरों मे जाकर व्यापार भी किया करते थे। कहीं–कहीं वेदमंत्रों में उन समुद्रों का उल्लेख है जहां वे सिंधुनदी द्वारा पहुॅचे होगे। धनके लोभी मनुष्यों को समुद्र यात्रा में एकत्रित होना लिखा है। एक जहाज के दूर जाने का भी उल्लेख है। आर्य लोग मन बहलाने के लिए नाचना गाना भी जानते थे। वेदों में मृदंग का भी वर्णन है और अथर्ववेद में तो खासकर एक मत्र मृदग के लिए निर्मित है। जिस समय वेदों की रचना हुई उस समय के आर्य उपयुर्क्त प्रकार के थे।

एक यूरोपीय विद्वान के अनुसार आर्यो की मुख्य जीविका संग्राम और कृषि थी। जिन्होने रणक्षेत्र मे वीरता दर्शायी, वे धीरे–धीरे मुख्य व्यक्ति क्षत्रिय बन गये और उनके सरदार राजा कहलाने लगे और जिन्होने रणक्षेत्र मे भाग नहीं लिया वे वैश्य कहलाने लगे। हॉ उन्हे तभी असभ्य कह सकते है, जब हम उनकी उपर्युक्त कृतियों से ऑखमीच लें। तो अब भला अग्नि, इन्द्र आदि की पूजाओं के मंत्र आदि ऋग्वेद में किस अभिप्राय से लिखे गयें है ? यह तो नितांत असंभव है कि वेदानुसार वर्णित उपर्युक्त प्रकार के हिन्दुओं में इतना भी ज्ञान न हो कि एक शक्ति जिसकों वे स्वतः उत्पन्न कर सकते थे, उससे भयभीत हो उसकी स्तुति रूप में इतने बड़े मंत्रों के संग्रह बना डाले। परन्तु यथार्थ में वैदिक देवता प्राकृतिक शक्तियॉ नहीं है। वे जीव की ही आत्मिक शक्तियॉ है। आत्मा की स्तुति रूप में मत्रों को गाना याने आत्मा को कर्मजनित मोहावस्था से जगाना ही है (पृ. 16) इस कारण ऋग्वेद के ऋषि, कवियों ने आत्मा की

मुख्य शक्तियों की भाव रूप में स्तुति की है। जिसका फल यह है कि वे मनुष्य उनके यथार्थ भाव को समझ कर आत्मिक शक्तियों के रूप में अभिज्ञ (जानकार) हो जावे। इन सब उपर्युक्त अनुमानो से उन ऋषियों के आत्मज्ञान का पता चल जाता है और वैदिक समय के उन आर्यो का भी। परन्तु जब उन ऋषियों के आत्मज्ञान पर ध्यान देते है तब उनका ज्ञान वैज्ञानिक ढंग पर होना आवश्यक है।

वह यथार्थ ज्ञान सिवा जैनधर्म के कहां पाया जा सकता है? क्योंकि जैनधर्म भारत वर्ष में प्राचीनता में द्वितीय माना जाता है। सारांशहै कि ऋग्वेद के मंत्रों का आधार जैन सिद्धांत ही है। परन्तु उक्त ऋषियों ने जीवन के छोटे–मोटे कार्यो और जीवन की आत्मिक शक्तियों को देवी–देवताओं के रूप में परिणत कर दिया है। आवागमन का सिद्धांत वेदकर्ताओं को अवश्य विदित था। कारण ऋग्वेद में उन्होने जीव का जल ओर वनस्पति आदि में जन्म लेना लिखा है।

(इडियन पेथोलॉजी एण्ड लेगेंड पेज116)

वेदों के प्राचीन वृत्तिकार यास्क के अनुसार वेदों के तीन मुख्य देवता (1) अग्नि, जिसका स्थान पृथ्वी पर है (2) वायु या इन्द्र, जिसका स्थान हवा में है। (3) सूर्य, जिसका स्थान आकाश मे है, मान लिया जावे तो प्रत्यक्ष रूप में विदित है कि इनके कितने ही रूपातर विरोध वश किये गये है। (दी हिन्दु पेथोलॉजी पेज 9) हमने इन्द्र का स्वरूप (की ऑफ नालेज) मे वर्णन किया है। परन्तु सूर्य केवल ज्ञानरूप है और अग्नितप रूप है। इस प्रकार वेदो के तीन मुख्य देवता आत्मा के भावों के रूप में है। सूर्य आत्मा की स्वाभाविक अवस्था दर्शाता है। इन्द्र उसे वैज्ञानिक सुख अनुभव करने मे प्रश्रय देता है और अग्नि तप द्वारा प्राप्त हुए कर्म क्षय कारक गुणो के रूप में उपस्थित है।

भारतीय इतिहास में जैनकाल

उक्त शीर्षक के कतिपय उल्लेखों द्वारा श्री कामता प्रसाद जी एम. आर.ए.एस.,डी.एल, पूर्व सचालक अखिल विश्व जैन मिशन, अलीगंज ने लिखा है कि अब भारतीय इतिहास का प्रारंभ शिशु नागवंश से भी पहले पहुँच जाता है क्योकि सिंधु उपत्यका और नर्मदा तट से उपलब्ध पुरातत्व, ईस्वी सन् से लगभग चार पांच हजार वर्षों पुरानी घटनाओं का परिचय कराता है।

मोहनजोदडों और हडप्पा का पुरातत्व इस बात की साक्षी उपस्थित करता है कि उस प्राचीन काल मे वैदिक संस्कृति से भिन्न प्रकार की संस्कृति सिंधु उपत्यका, सौराष्ट्र और नर्मदा प्रदेश में प्रचलित थी। वह संस्कृति योगाचार निरत संतो द्वारा अनुप्राणित हुई थी। वैदिक संस्कृति की परम्परा के समकक्ष में जो दूसरी सास्कृतिक परम्परा इस देश मे प्राचीन काल से प्रचलित मिलती है, वह श्रमण परम्परा है इस श्रमण परम्परा का प्रतिनिधित्व आज यद्यपि जैन और बौद्ध दोनो ही करते है, परन्तु इनमें बौद्ध से जैन प्राचीन है। मोहनजोदडों के पुरातत्व से यह स्पष्ट है कि वह वैदिक मान्यताओ से अछूता और निराला था। वैदिक ऋषियों ने योगियों की पूजा करने का न तो विधान ही किया और न ही कभी मूर्तियाँ बनाई।

इसके विपरीत श्रमण परम्पराओं में केवल जैन सस्कृतिमे ही हमको योगनिष्ठ साधुओं की पूजा का विधान मिलता है और जैनयोगियों –पंचपरमेष्ठियों की मूर्तियाँ बनाकर उनकी पूजा प्राचीन काल से करते आए है। श्री सोमदेव सूरि और जिनप्रभ सूरि ने मथुरा में भगवान सुपार्श्व की मूर्ति और स्तूप बनाने का उल्लेख किया है। उसकी पुष्टि ककाली टीले से उपलब्ध बौद्ध स्तूप के लेख से होती है। मूलत वह भगवान पार्श्वनाथ के समय में बनाया गया था। इसी प्रकार राजा करकंडु द्वारा निर्मापित गुफा मदिरो और मूर्तियों का अस्तित्व तेरापुर में आज भी मिल रहा है। इन मूर्तियों का निर्माणकाल ईस्वी सन से पहले आठवीं शताब्दी तक पहुँचता है, उपरान्त सम्राट् खारवेल के हाथी गुफा वाले शिलालेख से भी स्पष्ट है कि जिन मूर्तिया नन्द राजाओं के बहुत पहले से निर्माण की जाने लगी थी।

कोई विद्वान तीर्थंकरों की बड़ी–बड़ी आयु काल का वर्णन पुराणों में पढकर उन्हें काल्पनिक कहने लगते है। प्राणी शास्त्र विदों का यह मत है कि पूर्वकाल में प्राणियों की आयुकाय उत्तरोत्तर बढ़ी–चढ़ी थी। ऐसे–ऐसे अस्थिपंजर मिले है ,जिनकी तुलना आज के किसी भी जीवजन्तु से नहीं की जा सकती। जैन पुराणकारों ने प्राणी शास्त्र के इस वैज्ञानिक नियमानुकूल तीर्थंकरों की आयुकाय का विशेष वर्णन किया तो वह ठीक ही है। तीर्थंकरों की नियत संख्या 24 और वह इस कारण कि एक कल्पकाल मे ज्योति मंडल की चकगति मे सर्वोत्कृष्ट कालयोग 24 ही आकर पडते है जिनमें धर्म चकवर्तियो का जन्म होता हैं। प्रत्येक तीर्थंकर के काल की घटनाओं को जानकर उनके अस्तित्व का निर्णय किया जा सकता है। अधुना विद्वानो का यह मत है कि वैदिक आर्य मध्य एशिया से आकर भारत में बसे थे। उनके मुख्य देवता इन्द्र, वरुण, मरुत आदि थे। वेवीलोनिया की संस्कृति में भी इन्द्र, वरूण, मरूत की मान्यता का प्रावल्य था। संभवत मूल में वैदिक सांस्कृतिक उद्गम इस वेवीलोनिया संस्कृति से हुआ है। ऐसा भी अनुमान किया जाता हैं नि.संदेह भारतीय पुरातत्व से यह स्पष्ट है कि इन वैदिक आर्यो के आगमन के बहुत पहले से भारत मे एक सुसंस्कृत अध्यात्मवादी समाज का अस्तित्व था। विद्वज्जन उसको द्रविड अथवा सुमेर या सुजाति का अनुमान करते हैऔर मोहनजोदडों के निर्माता भी ये ही द्रविड और सुलोग माने गये है।

सौभाग्य वश इन दोनों जातियों के लोगों का संपर्क भी जैनधर्म से मिलता है। सुलोगो का आवास स्थान आज भी सौराष्ट्र कहलाता है जो जैनियों का प्रमुख क्षेत्र है। प्राचीनकाल में सुराष्ट्र के जैन लोग वेवीलोनिया गये और वहां उन्होने जैन संस्कृति का प्रचार किया था। काठियावाड़ (सौराष्ट्र) से जो एक ताम्रपत्र मिला है उससे भी इस बात की पुष्टि होती है। इस ताम्रपत्र को प्रो. प्राणनाथ ने पढ़कर प्रकट किया कि सुजाति का नृप नभचंद्र राज रेवानगर का भी स्वामी था। वह रैवत (गिरिनार) तीर्थंकर नेमिजिन की वंदना करने आया था। अतएव यदि सुलोग ही मोहनजोदड़ों की सभ्यता के निर्माता हो तो वह भी जैनधर्म से सिक्त थे।

द्रविडों के विषय में भी यही सिद्ध होता है कि वे वैदिक कियाकांड को नहीं मानते थे। वे अहिंसक संस्कृति के अनन्य भक्त थे। ऋषभ देव के समय उनके पौत्र मरीचि द्वारा सांख्य दर्शन का प्रादुर्भाव, बीसवें

तीर्थंकर मुनिसुव्रतनाथ के तीर्थकाल में पर्वत नारद का प्रसंग, तीर्थंकर नेमिनाथ के द्वारा बारात में पशु हिंसा और मांसाहार का विरोध, उसी समय श्रीकृष्ण द्वारा गौरक्षा और दुग्ध आदि के प्रचार द्वारा मांसाहार का निषेध आदि से तीर्थंकरों का अस्तित्व और अहिंसा द्वारा हिंसा का निषेध होता रहा। इसके पूर्व एवं पश्चात् भगवान ऋषभदेव के पुत्र भरत द्वारा धार्मिक पुरूषों के पृथक वर्ग की ब्राह्मण रूप में स्थापना, 18 वें तीर्थंकर अरनाथ के तीर्थकाल में मुनि विष्णु कुमार द्वारा अपनी तपस्या को भंग करते हुए बलि द्वारा किये गये उपसर्ग से 700मुनियों की रक्षा जिस स्मृति में रक्षा बंधन पर्व मनाया जाता है।

20वें मुनिसुव्रत तीर्थंकर के काल में श्री रामलक्ष्मण और महावीर हनुमान द्वारा रावण से अपहृत देवी सीता की रक्षा में लाखों सैनिकों को युद्ध में संहार करके भी अहिंसा धर्म के अंग वीरता एवं पराक्रम का आदर्श प्रस्तुत करना, 23 वें तीर्थंकर पार्श्वनाथ द्वारा पंचाग्नि तप की काष्ठाग्नि में मरणासन्न नागनागिनी को णमोकार मंत्र श्रवण कराकर उनकी उच्च देव पर्याय में प्राप्त करने में निमित्त बनना।

उक्त घटनाओं से इतिहासज्ञ विद्वानों की यह मान्यता निराधार नहीं है कि मोहनजोदड़ों की सिंधु सस्कृति को अनुप्राणित करने वाले योगी जैन श्रमण थे। प्राचीन काल में जैनवादी अपने धर्म चिन्हों से चिन्हित मुद्राओं का उपयोग बाद (शास्त्रार्थ) प्रसगों और अर्थ व्यवहार में करते थे। किसी को शास्त्रार्थ के लिए चेलेंज देते हुए सार्वजनिक स्थान पर अपना पीत वस्त्र या धर्ममुद्रा छोड देते थे। जैसे कुछ समय पूर्व लिखित सूचना देते थे।

तीर्थंकर मुर्तियों व ध्वजाओं के चिन्ह भी जैन जनता में प्रचलित हैं मूर्तियों के अतिरिक्त अन्य स्थानों (भवनों) मंदिरों पर भी स्वस्तिक, कलश, इत्यादि चिन्ह मिलते है। मंदिर के शिखरों पर भी सिंह आदि चिन्ह अंकित होते है।

जैनधर्म का सर्वप्रथम उपदेश भगवान ऋषभदेव ने दिया था यह भारतीय पुरातत्व से सिद्ध है। राजा खारवेल के हाथी गुफा वाले लेख में एक नंदवंशी राजा द्वारा ऋषभदेव की मूर्ति को कलिंग से पाटलिपुत्र ले जाने का उल्लेख है इससे सिद्ध है कि ऋषभदेव की मूर्तियों पहले से बनने लगी थी। खंडगिरी की गुफाओं में ऋषभदेव की मूर्तियाँ उकेरी हुई है।

मथुरा के कंकाली टीले से ईसा से पूर्व व प्रथम शताब्दी के प्रारंम्भिक काल में जैन मूर्तियाँ निकली है जिनमें ऋषभदेव की भी है। (जैनस्तूप एण्ड अदर एक्टीविटीज आफ मथुरा पृ. 21–30) इस पर ऋषभदेव के अस्तित्व को 8 ई.,वर्ष पूर्व के लोग भी स्वीकार करते थे और उन्हे अग्रजिन के रूप में (स्टडीज इन साउथ इंडियन जैनिज्म भाग 2, पृ. 4) मानते थे जैसा कि हाथी गुफा के शिलालेख में अंकित है बौद्ध साहित्य से भी यह प्रमाणित है कि जैनधर्म बुद्ध के जन्मकाल में एक सुसंगठित धर्म था और वह निग्गंथधम्म नाम से बहुत पहले से चला आ रहा था। अगुत्तर निकाय में एक सूची भगवान बुद्ध के समय के साधुओ की ही है और उसमें निग्गंथ (जैनों) को आजीवकों के बाद दूसरे नंबर पर गिना है।

यहा तो बुद्ध से पूर्व निग्गंथ धर्म था (डायोलाग्स आफ दी बुद्ध बाल 2,इण्टो,कालुपा) यह बताना है। वैदिक काल में व्रात्य नाम से जैन परिचित थे यह हिन्दु विद्वान मानते है।

जैनधर्म की वैदिक धर्म पर अहिंसा के कारण छाप पडी। **श्री लाजपत राय,** भारत वर्ष का इतिहास भाग 1पृ 129, और **लोकमान्य तिलक** के व्याख्यान से यह प्रमाणित हैं जैनों के अहिंसा आदि पाच व्रतो के कारण उन्हें व्रात्य कहना उचित था।

धर्मकीर्ति बौद्धाचार्य भी सर्वज्ञ आप्त के उदाहरण मे ऋषभ और महावीर वर्द्धमान का उल्लेख करते है।(न्याय बिंदु अ 3) बौद्धाचार्य आर्यदेव भी जैन धर्म के आदि प्रचारक श्री ऋषभदेव को बतलाते है। वेदो ओर उपनिषदों मे ऋषभदेव आदि के उल्लेखों के प्रमाण इसी रचना मे पहले दिये जा चुके है।रामायण मे भी जैन उल्लेख विद्यमान है। रामायण के बालकांड(सर्ग 14 श्लोक 22) में राजा दशरथ द्वारा श्रमणो को आहार देने का उल्लेख है। 'तापसा भुंजते चापि श्रमणाभुंजतै तथा'। यहा श्रमण शब्द 'भूषण' टीका अनुसार दिगम्बर साधु के लिए किया गया है। 'योगवासिष्ठ' प्रसिद्ध ग्रंथ में भी जिन नाम आया है। रामायण में बताया है कि रामचंद्र जी राजसूय यज्ञ करने को तैयार हुए थे परन्तु भरत जी ने अहिंसा धर्म का महत्व समझाकर उन्हे रोक दिया।

(प्रिसपिल्स आफ हिन्दू ईथक्स पृ. 446)

रामचंद्र जी के ससुर जनक जी बहु प्रसिद्ध है। जैन पुराणों से जाना जाता है कि वे पहले वेदानुयायी थे। परन्तु बाद में जैनधर्म का प्रभाव उनपर पड़ा था और वे जैनधर्म के ज्ञाता हुए थे। (उत्तरपुराण पृ. 335) कहा है कि एक बार महर्षि गार्ग्य उनके पास पहुँचे। उन्हे उपदेश देने लगे। वे उनको अधिक उपदेश न दे सके प्रत्युत उन्होनें स्वयं ब्राह्मण होते हुए उन क्षत्रियराज से ब्राहमधर्म–आत्मधर्म का उपदेश ग्रहण किया (विश्वकोष भाग 1 पृ. 202) जैनधर्म क्षत्रियों (तीर्थंकरों) द्वारा प्रतिपादित आत्मधर्म है। अतएव रामायण के बाद महाभारत काल में भी जैनधर्म के चिन्ह मिलते है।

महाभारत के अश्वमेध पर्व की अनु गीता अ. 48 श्लोक 2से 12 तक में जैन और बौद्ध के अलग–अलग होने की साक्षी है। इसके अतिरिक्त महाभारत के आदि पर्व अ.3 श्लोक 26–27 में भी जैन मुनियो का उल्लेख नग्नश्रमणक के रूप में है।

"अद्वैत ब्रह्म सिद्धि" नामक हिन्दू ग्रथ के कर्त्ता, नग्नक्षपणक का अर्थ जैन मुनि करते है। यथा 'क्षपणका.' जैनमार्ग सिद्धांत प्रवर्तका इति केचित्। (पृ. 169) इसके साथ ही महाभारत, शांतिपर्व मोक्षधर्म अ 239 श्लोक 6 में सप्तभंगीनय का उल्लेख है। फिर इसी पर्व के अ.263 पर नीलकठ टीका में ऋषभदेव के पवित्र चरण का प्रभाव आर्हतो व जैनों पर पड़ा कहा गया है।

(जैन इतिहास सीरिज भाग 1 पृ. 13) इन उल्लेखों से महाभारत काल में भी जैनधर्म का प्रचलित होना सिद्ध है। भगवान पार्श्वनाथ के पहले उपनिषदों के साथ कोई वेद विरोधी ऐसे तत्ववेत्ता अवश्य थे जिनकी ब्रह्म विद्या (आत्मविद्या) के आधार पर उपनिषदों की रचना हुई थीं।श्री उमेशचंद्र भट्टाचार्य ने यह व्याख्या अन्यत्र अच्छी तरह प्रमाणित कर दी है।(इंडियन हिस्टोरिकल क्वारटर्ली भाग 3 पृ 307–315) उनका कहना है कि इस समय उस ब्रह्म विद्या का प्राय·लोप है। उनके बचे खुचे चिन्ह उपनिषदों में यत्र–तत्र मिलते है। अब विचारने की बात है कि उपरोक्त ब्रहमवादी कौन थे? यदि हम ब्रह्म शब्द को जीव–अजीव का द्योतक माने जैसा कि प्रगट किया जाता है। (वीर वर्ष 5, पृ. 238) तो उनका सामजस्य जैन सिद्धांत से ठीक बैठता है। उपनिषद् काल में जैनधर्म का मस्तक अवश्य ऊचा रहा था, यह बात मुडकोपनिषद् एव अथर्ववेद के उल्लेखों से

ईसा से पूर्व छठी सातवीं शताब्दियों बल्कि इससे पूर्व के क्षत्रियों की प्रधानता के चिन्ह उस समय के भारत में मिलते है। उस समय का प्रधान धर्म क्षत्रिय धर्म (जैनधर्म) था। उस समय ब्राह्मण धर्म का भी स्थान था। उपनिषदों में जो वर्णन है उससे प्रगट होता हे कि काशी, कौशल, विदेह के ब्राहमण क्षत्रियों को प्रधान मानते थें। अथर्ववेद के 15वें स्कंध में जिस महाव्रात्य का वर्णन है, वह ऋषभदेव के लिए है जो व्रतो को सर्वप्रथम प्रगट करने वाले थे। वे सर्वप्रथम तपश्चरण का अभ्यास और सत्य का उपदेश देने वाले थें। जैन दृष्टि से तपश्चरण की मुख्यता कायोत्सर्ग आसन द्वारा सर्दी गर्मी व अन्य कठिनाईयों को सहते हुए ध्यान मगन रहना हैं। ऋषभदेव इसी अवस्था में तपस्यालीन रहते थे। उनकी मूर्ति कायोत्सर्ग रूप में मिलती है। अथर्ववेद में ऋषभदेव के कायोत्सर्ग तपस्या करने और समवसरण में बैठने का उल्लेख है और देवों ने उनसे कहा, व्रात्य अब आप क्यों खड़े है? वे आसन लाये और उस आसन पर व्रात्य आरूढ़ हो गए इन महापुरूष का गौरव विशिष्ट और देवताओं से भी उच्चतम प्रगट किया है। ये महापुरूष सर्वदिशाओं में विचरते और उनके पीछे देवों को जाते और दिग्पालों को उनका सेवक भी बताया है। यह सब कथन एक जैन तीर्थंकर के जीवन कथन के समान है।

व्रात्य को आहार दान देने के फलस्वरूप पुण्य और संपत्ति को पाना भी बतलाया है, जो जैन दृष्टि के अनुकूल है। अथर्ववेद में जिस महाव्रात्य का वर्णन है वे कोई जैन तीर्थंकर है, जो स्वयं भगवान ऋषभदेव हैं।उक्त अनेक उल्लेखों से यह प्रमाणित है कि जैनधर्म प्रागैतिहासिक प्राग्वैदिक धर्म है इसके आद्य प्रर्वतक भगवान ऋषभदेव ही हैं। जब नागरिक सभ्यता का विकास नहीं हो पाया था, उस समय व्यक्ति प्रायः वनों में रहते थे। मनुष्यों के निवास के लिए नगरों का निर्माण नहीं हो पाया था। लोग न खेती करना जानते थे, न पशुपालन,नही कोई उद्योग धधे थे। उस समय के लोग अपनी खानपान की व अन्य सभी आवश्यकताओं की पूर्ति कल्प वृक्षों (पृथ्वीरूप) से करते थे। वह पाषाण युग माना जाता था। उस समय न कोई समाज व्यवस्था थी, न ही पारिवारिक संबंध। माता–पिता युगल पुत्र–पुत्री को जन्म देकर दिवंगत हो जाते थे। इसे पुराणकारों ने भोगभूमि कहा है। यह व्यवस्था धीरे–धीरे समाप्त होने लगी और कर्मभूमि के प्रारम्भ का समय आया। अभी कर्मभूमि प्रारम्भ नहीं हो पाई थी। कल्पवृक्षों की मन्दता से तत्कालीन जनता का कष्ट बढ़ने लगा। ग्रीष्म–शीत आदि की बाधायें लोगों को सताने लगी।

भोगभूमि के अंत में और कर्मभूमि के पूर्व 14 कुलकर हुए। उन्होनें तत्कालीन मानवों को प्रकृति का रहस्य और जीने की कला सिखलाई। कल्पवृक्षों की मन्दता और उनसे आवश्यकताओं की पूर्ति न होने तथा समय–समय आने वाली बाधाओं को दूर कर आत्म रक्षा का शिक्षण दिया। वैदिक परम्परा मे भी 14 मनु बतलाये हैं उनका भी कुलकरों के समान ही स्थान है। 14 कुलकरों में अंतिम 14वें कुलकर नाभिराय के पुत्र 24 तीर्थंकरों में प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव हुए उन्होनें कृषि आदि का मार्ग दर्शन कर प्रजा का नेतृत्व किया। उन्हे भी इसीलिए 15वां मनु या कुलकर माना जाता है। उनके संबंध में वेद एवं भागवत आदि में जो प्रमाण आये है, उनका उल्लेख पूर्व में कर दिया गया है।

अहो मुंच वृषभं यति यानां विराजंत प्रथम मध्वराणां।
अपां न पातमश्विना हुवे धिय इन्द्रियेण इन्द्रियं दत्तमोजः

अर्थात– संपूर्ण पापों से मुक्त तथा अहिंसक व्रतियों के प्रथम राजा आदित्य स्वरूप श्री वृषभदेव का मैं आवाहन करता हूँ। वे मुझे बुद्धि एवं इन्द्रियों के साथबल प्रदान है।

(अथर्ववेद. कां. 19/42/4)

डॉ. सागरमल जी जैन के :-

'ऋग्वेद में अर्हत और ऋषभवाची ऋचायें' लेख में बतलाया है कि–"ऋग्वेद में न केवल सामान्यरूप से श्रमण परम्परा और विशेष रूप मे जैन परम्परा से संवद्ध अर्हत्,अर्हन्, व्रात्य, वातरशना, मुनि, श्रमण आदि शब्दों का उल्लेख मिलता है, अपितु उसमें अर्हत् परम्परा के उपास्य वृषभ का भी उल्लेख शताधिक बार मिलता है। मुझे वृषभवाची 112 ऋचायें प्राप्त हुई हैं। संभवतः कुछ और ऋचायें भी मिल सकती है। यद्यपि यह कहना कठिन है कि इन सब ऋचाओं में प्रयुक्त वृषभ शब्द ऋषभ का ही वाची है, फिर भी कुछ ऋचायें तो अवश्य ऋषभदेव से संवद्धही मानी जा सकती है। डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन्,प्रो जिम्मर, प्रो.विरूपाक्ष वार्डिया आदि कुछ जैनेतर विद्वान भी इस मत के प्रतिपादक है कि ऋग्वेद में जैनों के आदि तीर्थंकर ऋषभ देव से संवद्ध निर्देश उपलब्ध होते है।"

ऋग्वेद के अतिरिक्त यजुर्वेद, अथर्ववेद और सामवेद में भी ऋषभदेव का अनेकशः उल्लेख मिलता है। ऋषभदेव की स्तुति भागवत्, मार्कंडेयपुराण कूर्मपुराण, विष्णुपुराण, अग्नि पुराण, ब्रहमांडपुराण, वराटपुराण, विष्णुपुराण

और स्कंध पुराण आदि में की गई है, साथ ही उनके माता,पिता और पुत्र आदि के नाम तथा जीवन की घटनाओं का भी विस्तार से वर्णन है।

श्री भागवत के प्रथम स्कंध, अध्याय तीन में राजा नाभि की पत्नी मरूदेवी के गर्भ में ऋषभदेव भगवान का आठवां अवतार माना है। महाभारत शांतिपर्व में भी ऋषभदेव का कथन है। एक श्लोक है–

अष्टषष्ठिषु तीर्थेषु यात्रायाः यत्फलं भवेत्।
श्री आदिनाथदेवस्य स्मरणेनापि तद्भवेत्।।

अर्थ– 68 तीर्थो की यात्रा का जो फल होता है, वह आदिनाथ देव के स्मरण से प्राप्त हो जाता है।

बौद्ध साहित्य में भी ऋषभदेव का कथन मिलता है। धम्मपद में उन्हे प्रवरवीर कहा है। (उसमं प्रवरं वीरं 422) मंजुश्री मूल कल्प में उनको निर्ग्रंथ तीर्थंकर और आप्तदेव के रूप में उल्लिखित किया गया है। 'न्यायबिन्दु'–अध्याय तीन मे ऋषभ और वर्द्धमान को सर्वज्ञ अर्थात् केवलज्ञानी आप्त तीर्थंकर बताते हुए दिगम्बरों का अनुशास्ता कहा गया है। 'धर्मोत्तर प्रदीप' पृ.286 मे भी विश्वम्भर सहाय प्रेमी लिखते है– "शुद्ध ऐतिहासिक दृष्टि से यदि इस प्रश्न पर विचार करें तो भी यह मानना ही पडता है कि मोहनजोदड़ों की मुद्राओं मे जैनत्व बोधक चिन्हों का मिलना तथा वहां की योगमुद्रा ठीक जिनमूर्तियो के सदृश होना इस बात का प्रमाण है कि तब ज्ञान और ललित कला में जैन किसी से पीछे नहीं थे।"अनेक विद्वानों ने स्वीकार किया है कि सिंधु घाटी की सभ्यता जैन संस्कृति से संवद्ध थी।रामायण काल में जैनधर्म की विद्यमानता प्रमाणित होती है। योगवशिष्ठ (प्रसिद्धवैदिक ग्रंथ) के वैराग्य प्रकरण में श्रीराम कहते है–

नाहं रामो न मे वांछा, भावेषु न च मे मनः।
शांतिमासितुमिच्छामि, स्वात्मन्येव जिनोयथा।।

(अध्याय 15 श्लोक)

अर्थ– मैं वर्तमान स्थिति वाला राम नहीं हूँ। सांसारिक पदार्थो मे मेरी कोई अभिलाषा नहीं है।मैं जैसे निज आत्मा में जिनेन्द्र लीन रहे है वैसे ही मैं भी आत्मलीन होकर शांति का इच्छुक हूँ।

प्राचीन आर्यो की मूल जन्मभूमि कहां थी, वे लोग कब वहां से चले और किस–किस देश में कब–कब जाकर बसे इस विषय में अन्वेषकों का विभिन्न मत है। परन्तु विशेष प्रमाणों के होते हुए यह युक्ति सगत प्रतीत

होता है कि आर्यो का मूल स्थान भारत वर्ष ही था।(जैन इतिहास प्रथम भाग – कामता प्रसाद जी पृ. 14) जैसा कि 'हिंदी विश्व कोष के भाग 2 पृ. 689 पर प्रमाणित किया गया है। वहां लिखा है कि "ऋक्संहिता के अनु प्रत्न स्यो कसो हुवे" (1/30/19) प्रमाण पर यूरोपीय पुरातत्वविद् सारस्वत आर्यो के आदि पुरूषों का पूर्ववास एशिया खंड के मध्यभाग स्थित बेलुर्ताग और सुशताग की पश्चिम पार्श्व गत उपत्यका भूमि बताते हैं।

किन्तु वस्तुतः पहले आर्यावास सप्तसिंधु प्रदेश रहा। गगा,यमुना, सरस्वती, शतद्रु, परूष्णी(इरावती), चन्द्रभागा, वितस्ता इनमे इरावती ,चन्द्रभाग ,वितस्ता इनके सम्मिलन से संभृत मरुद्वृधा, शतद्रु के पश्चिम पार्श्व के संगत प्राचीनतम वर्तमान नाम विपाशा और तक्षशिला प्रदेश से निम्नगामी सिधु सगत सुषोमा सात नदी जिस भूभाग में (सप्तसिधु या सप्तनद) बहती वह प्रदेश सिधु के पूर्व पार पडता है। सिधु पश्चिम पार भी सप्तनद प्रदेश दूसरा विद्यमान है। आजकल यह आर्यावर्त (भारत) से अलग होते हुए भी उसके अतर्गत रहा। इसी विषय मे **मि नारायण भवन राव पाथगी** ने अपनी "आयर्न केडल इन दी सप्त सिधूज" पुस्तक मे लिखा है कि "आर्य जातियॉ विदेशो से न आकर वही सरस्वती नदी आदि के पास उत्पन्न हुई और इसे लाख पचास हजार वर्ष से कम नहीं हुए।"

अतः यह प्रगट है कि आर्यो का मूल निवास भारत वर्ष था और वे यहीं से जाकर अन्य विदेशों में बसे थे। इसलिए जैन दृष्टि से वर्तमान के यूरोपादि छहोंद्वीपों को आर्यावर्त (आर्यखंड) के अतंर्गत मानना सिद्ध होता है। इसकी पुष्टि अन्यदेशों के ग्रथों में आर्य शब्द का उल्लेख होने से भी होती है। यूनानी लोगों ने भी आर्य देश का उल्लेख किया है। रधातु कृषि वाचक है जिससे अर्य या आर्य बना है।

उक्त विवेचन से जब आर्य इस देश के मूल निवासी सिद्ध है तो जैन जिस दर्शन के उपासक है वह आर्य दर्शन है अतः जैन भी यहीं के मूल निवासी है।पूर्वी आर्य आर्य थे, जो भारत के मूल निवासी थे, जिन्हें जैन कहा जाता है, क्योकि निम्नलिखित 'स्मृति' का श्लोक उन पर नहीं घटता।

चातुर्वर्ण्य व्यवस्थानं यस्मिन् देशे न विद्यते।
म्लेच्छदेशः स विज्ञेयः, आर्यावर्तस्ततः परम्।।

अर्थ– जिस देश में चारों वर्णों की आश्रम व्यवस्था नही, वह मलेच्छ देश होता है। आर्यावर्त उसमे भिन्न है। जैनों में वर्ण व्यवस्था उनके प्रथम

तीर्थंकर ऋषभदेव द्वारा स्थापित की गई है। उन्ही के पुत्र भरत के नाम पर भारत वर्ष, जिसे आर्यावर्त कहते है, प्रसिद्ध हुआ। भरत द्वारा ही पूर्व क्षत्रिय,वैश्य,शूद्र,वर्ण के सिवाय चौथा वर्ण ब्राह्मण भी स्थापित किया गया था। इस प्रकार पूर्वी आर्य म्लेच्छ कदापि नहीं थे। इसके अतिरिक्त एक विशेष बात ओर है कि वेदो में यज्ञ विषयक हिंसा का विधान पहले नहीं था, पीछे बढा दिया गया। इस पर हम पहले प्रकाश डाल चुके है।

वेदो को ईश्वर कृत बतलाना भी अतिशयोक्ति है। यो वेद ज्ञान का पर्यायवाची है। जब आत्मा व परमात्मा अनादि है तो उसका स्वरूप चेतनता याने ज्ञान भी अनादि है इस दृष्टि से सामान्य ज्ञान या वेद अनादि हो सकता है उसे इसीलिए अनादि परमात्मा या ईश्वर रूप माना जा सकता है । परन्तु शब्द या वाणीरूप, जो पौद्गलिक है वह शब्द रूप शास्त्र अनादि कभी नहीं हो सकता क्योकि शब्द या वाणी पौद्गलिक परमाणुओं से वेष्टित आकाश मे होकर श्रोताओ के कर्ण गोचर होता है। मनोवृत्ति, जिससे उसकी उत्पत्ति है, अणुओ से परिपूर्ण हैं। उसके बिना उत्पत्ति सभव नहीं। अतः परमात्मा जब किसी से बातचीत नहीं कर सकता तब बिना शब्दोंच्चारण के वेद शास्त्र की उत्पत्ति कैसे हो सकती है? इसलिए ईश्वर कृत वेद नहीं है।

(प्रेक्टिकल पाथ–वैरिस्टर चंपत राय कृत)

वेदशास्त्रों मे नाना ऋषि कवियो की रचनायें है। ऋषियों ने मंत्रों को कविता मे प्रकट किया है। वेद मत्रो मे सूर्य,अग्नि आदि की उपासना के रूप मे आत्मा के गुणो का वर्णन है। वेदिक काल की उच्च सम्यता का विचार करते हुए यह नहीं माना जा सकता कि वेद रचयिता ऋषि प्राकृतिक शक्तियो से भयभीत होकर उनकी उपासना करते। शाकाहारी ऋषियों ने वेदमत्रो मे आत्मा के गुणो का अलकार रूप मे वर्णन किया है। **श्री वेरिस्टर चंपतराय जी** ने अपनी उक्त पुस्तक एवं "की आफ नालेज" जिसका हिन्दी अनुवाद 'असहमत संगम' है। उसमे इसका सुन्दर विवेचन किया है। पीछे कुछ अंग्रेजो या माँस लोलुपी लोगों द्वारा वेदों की ऋचाओं का अनुवाद मासाहार से सबधिंत कर याज्ञिकी हिसा को प्रोत्साहन दिया है। इसी पुस्तक से संक्षेप मे हमने इसका स्पष्टीकरण किया है।

वेदों को दैवी वाणी मान कर भक्तों ने न्यूनाधिक परिवर्तन कर दिया जो यथार्थ पवित्रता के विरूद्ध था। महाभारत के अनुसार पर्वत द्वारा अपने पक्ष 'अज' का अर्थ बकरा करके उसके मास का प्रचार करते रहने से राज्य से

निकाले जाने पर उसे एक देव ब्राह्मण के रूप में मिला जिसने अपने को शांडिल्य ऋषि बतलाया, अपने एक पूर्वभव मे वह मधु पिगल राजा था, जिसकी भावी स्त्री किसी शत्रु द्वारा न मिलने पाई थी। उस कन्या की माता ने मधुपिंगल के गले मे कन्या (सुलसा नामक) द्वारा वरमाला डालने मे कोई सदेह नहीं किया। कितु शत्रु राजा सागर को भेद मालूम हो गया और उस कन्या के रूप पर आसक्त होकर उसने मत्री से सलाह ली किन्तु दुष्ट मत्री ने मिथ्या सामूद्रिक शास्त्र बनाकर स्वय वर स्थान मे गाड़ दिया। जब राजा लोग स्वयवर में एकत्रित हुए तब उस ग्रंथ को मत्री ने दैवी कृत्य के रूप में निकाला। पत्र के पढने पर मधुपिंगल ने साधु रूपधारण कर लिया क्योकि पत्र मे उसके दुर्भाग्य का उल्लेख था। उस कन्या ने राजा सागर के गले मे वरमाला डाली। कुछ समय बाद मधुपिंगल को किसी ज्योतिषी से सच्चा हाल ज्ञात हुआ वह कोध मे मरकर उक्त देव हुआ। उस देव ने सागर से अपनी पूर्व शत्रुता का बदला लेने हेतु पर्वत द्वारा सागर के नगर मे भारी रोग फैला दिया जिससे बचने को पशु यज्ञ का प्रचार प्रसार हुआ। पर्वत से पशु यज्ञ, पशु बलिदान एवं मासाहार को प्रोत्साहन मिला।

इन कार्यो से स्वर्ग प्राप्ति का प्रलोभन भी दिया गया। भाषा की दृष्टि से विचार करें तो सबसे प्राचीन लिपि ब्राह्मी है, जो ऋषभदेव तीर्थंकर की पुत्री ब्राह्मी के नाम से प्रचलित है। ऋषभदेव से महावीर तीर्थंकर तक का धर्मोपदेश प्राकृत भाषा मे हुआ है जिसके भेद अर्ध– मागधी एव शौर सेनी तीर्थंकर की वाणी सर्व भाषामय मानी गई है।

मि. विसेंटस्मिथ लिखते है :-

कि उत्तर पश्चिमीय भारत भी समग्र आर्य भाषाये प्राचीन प्राकृत भाषाओं से उत्पन्न्न हुई है।

(आक्सफोर्ड हिस्ट्री आफ इडिया पेज 13)

जैनो के प्राचीन शास्त्र प्राकृत भाषा मे है उत्तरी पश्चिमी भारत की सभी भाषायें प्राकृत से निकली है।भारत मे प्राचीन समय मे यहां के आर्य ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य और शूद्र इन चार वर्णो के अनुसार चार जातियो मे विभक्त रहे है। पीछे विदेशी जातियों के आकमण से उनमे मिश्रण हो गया। इस प्रकार भारतीय जनता अनेक जातियों में विभाजित हो गई। प्रांतो और भाषाओं के कारण भी जातियो का नामकरण हो गया।

प्राचीनतम जैनधर्म जैन आगम से

यह ससार अनादि है। इसका कर्त्ता हर्त्ता कोई नहीं है। जैन भूगोल की दृष्टि से तीन लोक में मध्यलोक के बीचोबीच जंबूद्वीप के सात क्षेत्रों में से प्रथम भरतक्षेत्र के मध्य आर्यखंड में उत्तर्पिणी (उन्नति) काल और अवसर्पिणी (अवनति) काल के छह–छह हिस्सो में वर्तमान अवसर्पिणीके तृतीय भोगभूमि (कल्पवृक्ष–प्रस्तर युग) के अंत में चौदहवें कुलकर (मार्गदर्शक नेता) नाभिराय के पुत्र प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव हुए। ऋषभदेव के भरत,बाहुबलि तथा 99 पुत्र (द्रविड,अनतकीर्ति आदि)एवं ब्राहमी, सुन्दरी दो बाल ब्रहमचारिणी पुत्रियाँ उत्पन्न हुई। इनमे भरत के नाम से भारत वर्ष और ब्राहमी के नाम से ब्राहमी लिपि प्रसिद्ध है। द्रविड के नाम से द्राविड़ संस्कृति (जैन परम्परा) और अनतकीर्ति इस काल मे सर्वप्रथम मोक्षगामी हुए। उन्नति युग में धीरे–धीरे उन्नति होती हैऔर अवनति युग में धीरे–धीरे अवनति होती है। प्रत्येक के सुषमा–सुषमा, सुषमा–सुषमा, सुषमा–दुषमा, दुषमा–सुषमा, दुषमा–सुषमा, दुषमा–दुषमा थे ये अवनति युग के इनसे विपरीत दुषमा–दुषमा, दुषमा–दुषमा, सुषमा–सुषमा, सुषमा–सुषमा, सुषमा–सुषमा ये उन्नति युग के भेद है। वर्तमान मे अवनति युग का पचमकाल दुषमा चल रहा है। सुषमा–सुषमा (बहुत अच्छा का समय) दुषमा–दुषमा (बहुत बुरा का समय) ये सब उत्तरोत्तर नामानुसार घटते बढते रहते है। जहा बिना परिश्रम प्राकृतिक रूप से उपभोग सामग्री मिलती है वह भोगभूमि और जहा परिश्रम द्वारा सामग्री प्राप्त की जाती है वह कर्मभूमि कहलाती है। उन्नति में शरीर आयु आदि बढ़ती है और अवनति मे घटती है। नाभिराय चौदहवे कुलकर थे, उनकी महारानी मरूदेवी थी जिनके गर्भ से ऋषभदेव (आदिनाथ) प्रथम तीर्थंकर (धर्म प्रर्वतक) हुए। इस काल में तीर्थंकर 24 होते है इनमें 22 इक्ष्वाकु वंश के दि. जैन क्षत्रिय, 1 हरिवश और 1 कश्यप (नाथ) वंश के क्षत्रिय थे। भगवान ऋषभदेव का विवाह नन्दा एवं सुनंदा कन्याओं से हुआ था। यह विधि पूर्वक विवाह परम्परा यहीं से चली है। अपने पुत्र–पुत्रियों को भगवान ने ही विविध ा कलाओं की शिक्षा प्रदान की। अपनी दोनों कन्याओं को स्वायंभुव व्याकरण का निर्माण कर अध्ययन कराया। भोगभूमि के अंत होने से कल्पवृक्ष भी नष्ट हो गये थे। समस्त प्रजा को खाद्यसामग्री न मिलने से भूख से पीड़ित देखकर कृषि का मार्ग बताया। प्रजा के हितार्थ असि, मषि, विद्या, वाणिज्य और शिल्प का उपदेश दिया। नगर–ग्राम का निर्माण कराया। क्षत्रिय, शूद्र,

और वैश्य इन तीन वर्णों की स्थापना की। भगवान के समय से राज्य व्यवस्था प्रारभ हुई, उनका राज्याभिषेक हुआ। श्रीमदभागवत् में ऋषभदेव को वैदिक 24 अवतारों मे आठवां अवतार माना है।

ऋषभदेव ने अप्सरा नीलांजना का राज्य सभा में नृत्य देखकर उसकी आयु समाप्त होने पर इन्द्र द्वारा वैसी ही दूसरी अप्सरा नृत्य करती हुई जानकर वैराग्य ग्रहण कर लिया। भरत को राजा और बाहुबलि को युवराज का पद प्रदान कर भगवान ने दिगंबर दीक्षा धारण की तो उनके साथ अनेक राजाओ ने भी दीक्षा ग्रहण कर ली।परन्तु वे दुखो को सहन नहीं कर सके और भूख सहन न होने से फल–फूल खाने लगे। गावो मे डर के कारण न जाकर वन मे ही लगोटी पहन ली। कोई दड धारण कर दडी बन गये। भगवान के पौत्र मरीचि ने नया मत चला दिया। भगवान छह माह तक उपवास रखकर पश्चात् आहार को नगर में आए परन्तु आहार विधि न मिलने से छह माह तक फिर निराहार रहे। कुरू जागल देश के राजा सोमप्रभ के छोटे भाई श्रेयास को जातिस्मरण (पूर्वभव का ज्ञान) हो जाने से उनके द्वारा भगवान को वैशाख सुदी 3 को इक्षुरस का आहार दिया गया। तबसे उक्त दिन अक्षय तृतीया के नाम से प्रसिद्ध हुआ। भरत चकवर्ती ने पुत्रोत्पत्ति, चकरत्न और भगवान को समवसरण मे केवलज्ञान की उत्पत्ति तीनों एक साथा होने पर प्रथम केवलज्ञान की पूजा की। चकवर्ती को जन्म का सूतक नहीं लगता। भगवान की ब्राहमी और सुन्दरी दोनों पुत्रियो ने भी आर्यिका दीक्षा ग्रहण की। समवसरण सभा मे देव 4 प्रकार के, देवियाँ 4 प्रकार की , मुनियो, आर्यिका एव महिलाओ, मनुष्यों और पशुओ के कमश 12 कोठे उपदेश श्रवण हेतु विद्यमान थे। भरत ने शुद्धाचरण वालो का ब्राह्मण वर्ग स्थापित किया।

भरत ने चक और सेनापति आदि को लेकर षट्खंड की विजय की। वापस अयोध्या में आने पर चक का प्रवेश न देखकर मालूम किया कि बाहुबलि उनकी आधीनता स्वीकर नहीं कर रहे हैं। बाकी पुत्रो ने दीक्षा ले ली। भरत और बाहुबलि को तद्‌भव मोक्षगामी चरम शरीरी जानकर मंत्रियों ने व्यर्थ में सेनाओं का संहार न हो इसलिए दोनों का जल,नेत्र और मल्ल युद्ध निश्चित किया। तीनो युद्धो में बाहुबलि की विजय होने पर भरत ने सुदर्शन चक चलाया, किन्तु परिवार के नाते चक बाहुबलि के चारों ओर घूमकर समक्ष रूक गया। बाहुबलि को संसार की दशा देखकर वैराग्य हो

गया और वे एक वर्ष तक खड्गासन से तपस्या करते हुए, उनके शरीरपर लतायें लिपट गई। एक वर्ष हो रहा था कि भरत आदि उनके दर्शनार्थ आए और बाहुबलि को केवलज्ञान हो गया। इनके जीवन चरित्र के वर्णन में किन्ही का मत है कि बाहुबलि को यह अभिलाषा थी कि मैं भरत की भूमि पर खड़ा हूँ। इस शल्य से केवलज्ञान नहीं हो रहा था। यह जानकर भरत और बाहुबलि की ब्राहमी और सुन्दरी बहनों से कहलाया गया कि हे भाई! मान रूपी हाथी से उतरो। किन्तु यह सब सत्य नहीं हो सकता क्योकि व्रती को मे चाहे वे श्रावक भी हो, माया, मिथ्यात्व और निदान ये तीन शल्य नहीं होती। तत्वार्थसूत्र के 7वे अध्याय में आचार्य गृद्धपिच्छ (लौकिक नाम उमास्वामी) ने 'निःशल्योव्रती' सूत्र मे व्रती के शल्य का निषेध बतलाया है, क्योंकि मिथ्यादृष्टि के ही ये तीनो शल्य होती है। क्या बाहुबलि के ऐसी बडी शल्य थी जो सम्यगदृष्टि और छठे सातवें गुण स्थानवर्ती दि. जैन मुनि के नहीं हो सकती। आदिपुराण मे आचार्य जिनसेन ने बाहुबलि को महान भावलिंगी मुनि और अनेक बडी–बड़ी ऋद्धियो के स्वामी माना है। बाहुबलि स्वामी के एक वर्ष तक की अवधि का योग कायोत्सर्ग रूप मे साधना पूर्ण होते ही केवलज्ञान होना था, उसी समय भरत चकवर्ती का आगमन हो गया। आचार्य जिनसेन ने ऐसी शल्य होना नहीं लिखा जिनसे बाहुबलि का अपमान सिद्ध हो।

बाहुबलि ने पृथ्वी पर बिहार कर धर्मोपदेश दिया पश्चात् कैलाश पर्वत से मोक्ष प्राप्त किया। इस प्रकार अवसर्पिणी काल मे सर्वप्रथम अनतकीर्ति (भ ऋषभ देव के पुत्र) मुक्त हुए। उनके पश्चात् बाहुबलि मुक्त हुए।

भरत चक्रवर्ती ने कैलाश पर तीन चौबीसी के 72 जिन मदिर बनवाये थे। दंड विधान मे भ.ऋषभदेव के बाद प्राणदंड, देश निकाला, कैद आदि की सजाये रखी थीं। भगवान अजितनाथ द्वितीय तीर्थंकर के समय मे सगर चक्र तर्ती हुए जो द्वितीय चकवर्ती थे। वे सम्मेदशिखर से मुक्त हुए। तीर्थंकर शीतलनाथ (दशम तीर्थंकर) के मोक्ष जाने के पश्चात् धर्म मार्ग बंद हो गया था। ग्यारहवें तीर्थंकर श्रेयांसनाथ ने पुन· चालू किया। इन्ही के समय में प्रथम नारायण त्रिपृष्ठ (जो आगे जाकर तीर्थंकर महावीर होंगे। यही मरीचि भगवान ऋषभदेव के पौत्र है) प्रथम प्रतिनारायण अश्वग्रीव और प्रथम वलभद्र हुए। दोनो नरक गामी होते है। ये वलभद्र मोक्ष गए। वारहवे तीर्थंकर वासुपूज्य चंपापुर से मुक्त हुए। ये बारहवें तीर्थंकर बालब्रहमचारी थे। इनके

समय मे द्वितीय प्रतिनारायण तारक, नारायण द्विपृष्ठ और द्वितीय वलभद्र अचल हुए। तेरहवें तीर्थंकर विमलनाथ के समय तीसरे नारायण स्वायंभू और सुधर्म नामक वलभद्र हुए। तीर्थंकर धर्मनाथ के समय पुरूषसिंह पंचम नारायण और वलभद्र सुदर्शन हुए। धर्मनाथ तीर्थंकर के तीर्थकाल मे मधवा और सनत कुमार चकवर्ती हुए।

16–17–18 शातिनाथ, कुथुनाथ और अरनाथ ये तीन तीर्थंकर चकवर्ती और कामदेव भी थे। 19वें तीर्थंकर मल्लिनाथ के कुछ पहले सुभौम चकवर्ती हुए, इसी समय नारायण पुंडरीक और नारायण द्वितीय बलभद्र नंदी हुए। भगवान मल्लिनाथ 19वें तीर्थंकर बालब्रह्मचारी थे। 19वें मल्लिनाथ तीर्थंकर के तीर्थ मे महापद्म चक्रवर्ती हुए एव नारायण दत्त, वलभद्र नंदि मित्र हुए। तीर्थंकर नमिनाथ के पहले, याने मुनिसुव्रत तीर्थंकर के तीर्थकाल मे हरिषेण चकवर्ती, जयसेन चकवर्ती एवं लक्ष्मण नारायण हुए। बावीसवें तीर्थंकर नेमिनाथ के समकालीन नारायण श्रीकृष्ण, बलभद्र बलदेव थे। नेमिनाथ बाल ब्रहमचारी थे। वाड़े मे पशुओं को बधा देखकर आप बारात को वापस कर विरक्त हुए थे। यजुर्वेद में आप का नाम आया है।

वाजस्यनु प्रसव आवभूर्वमा च विश्वभुवनानि सर्वतः।
नेमिराजा परियाति विद्वान् प्रजां
पुष्टिं वर्धयनमानो अस्मै स्वाहा।।

(अध्याय 9 मत्र 25)

रैवताद्री जिनो नेमिर्युगादिर्विमलाचले।
ऋषीणां वा श्रमादेव मुक्ति मार्गस्य कारणम्।।

(प्रभास पुराण)

भगवान पार्श्वनाथ का जन्म ईस्वी पूर्व 949 अथवा 877 में हुआ था। भगवान नेमिनाथ के मुक्त होने के (जैन पुराण दृष्टि से 83750 वर्ष) बाद हुए थे। आपकी आयु 100 वर्ष और बालब्रह्मचारी थे। आपने भी मनुष्यों को हिंसा वृत्ति से बचाया था। आपकी ऐतिहासिकता इतिहासकार मानते है। देखिये–

1. इन्साइक्लोपीडिया आफ रिलीजन एण्ड ईथिक्स भाग 7 पेज 465
2 शार्ट स्टडीज इन दी साइंस आफ कम्पेरेटिव रिलीजन पत्र 243–4

भगवान पार्श्वनाथ के समय आजीवक,वानप्रस्थ आदि संप्रदाय विद्यमान

थे। एक सन्यासी को वन में आपने पंचाग्नितप करते देखा उसकी लकडी में एक सर्प युगल अग्नि पीड़ित दिखलाई दिया। मृत्यु के निकट उस जोड़े को पार्श्वकुमार ने णमोकार मंत्र सुनाया। वह युगल मरकर धरणेन्द्र पद्मावती देव योनि में उत्पन्न हुए। वह तापसी भगवान के नवभव पूर्व का कमठ (ज्येष्ठ भ्राता) शत्रु था। वह भी मरकर देवयोनि में उत्पन्न हुआ। उसका नाम संवर था। जब पार्श्वनाथ दिगंबर दीक्षा लेकर अहिक्षेत्र (वर्तमान रामनगर—बरेली उत्तरप्रदेश) में तपश्चरण कर रहे थे। उस समय अपने पूर्व बैर के कारण उसने भयकर उपसर्ग किये। अग्नि,पत्थर,वायु के पश्चात् जल वर्षा द्वारा कष्ट दे रहा था कि धरणेन्द्र ने मुनिराज पार्श्वनाथ पर छत्राकार सर्पफण से रक्षा की। उपसर्ग आने से तत्काल उन्हे आठकर्मो मे से चार घातिया कर्मो का नाश होकर केवलज्ञान प्रगट हो गया।वे सर्वज्ञ और अर्हतकेवली स्थिती को प्राप्त हो गये।

अर्हत भगवान पार्श्वनाथ ने समस्त आर्यखड के विभिन्न देशो मे बिहार कर समवसरण (धर्मसभा) द्वारा अहिसा, अनेकात,कर्मसिद्धात एव अपरिग्रह का प्रचार प्रसार किया। सहस्रों भव्य जीवों को धर्म मार्ग पर लगाया। सम्मेदशिखर से उन्होने मुक्ति प्राप्त की। तब से वह स्थान पार्श्वनाथ हिल नाम से प्रसिद्ध है। आपके समय मे ही अतिमबारहवे चक्रवर्ती ब्रह्मदत्त हुए। जिनका उल्लेख बौद्ध ग्रथो मे भी मिलता है।

भगवान महावीर का काल

भगवान पार्श्वनाथ के निर्वाण के 250 वर्ष बाद भगवान महावीर हुए। पार्श्वनाथ के समय उत्तर,पश्चिम, पूर्व,दक्षिण एमस्त भारत मे राजसत्ताये गणतत्र के रूप मे उदित हो चुकी थी। आठ कुलो मे विभक्त वैशाली और विदेह मे वज्जिगण का प्रभाव था। ये सब पार्श्वनाथ के भक्त थे। कलिंग देश के नरेश करकडु भी पार्श्वनाथ के भक्त थे। ये अंतिम समय मे दि साधु हो गये थे। श्रीरामप्रसाद चान्दा, प्रो हर्म्सवथक आदि के मतानुसार निर्ग्रंथ जैनसघ भगवान महावीर के पहिले से ही था। महाभारत काल के पश्चात् श्रमणोत्कर्ष आन्दोलन छठी शताब्दी ईस्वी पूर्व मे पहुॅच गया था। यह ज्ञातृ पुत्र भगवान महावीर का समय था। यह धार्मिक व दार्शनिक काति का युग था। चीन मे कनफुयशस और लाओसे, ईरान में जरथुस्त, यूनान मे पैथेगोरस, फिलिस्तीन मे मूसा आदि प्रसिद्ध विचारक एव धर्म प्रर्वतक हुए थे।

भारत मे श्वेतकेतु, उददालक, याज्ञवल्क्य आदि वैदिक व क्षत्रिय उपनिषद के ज्ञाता अध्यात्म का प्रचार कर रहे थे। कपिल, पातजलि, कणाद, गौतम, जैमिनी आदि ऋषि साख्य, योग, वैशेषिक, न्याय, मीमासा आदि दर्शनो का विकास कर रहे थे। व्याकरण, ज्योतिष आयुर्वेद आदि का विकास हो रहा था। गौशाल,पूरण कश्यप, कात्यायन, आदि भी अपने–अपने सिद्धातो के प्रचारक बने हुए थे। धार्मिक चेतना की प्रतिकिया रूप मे चार्वाक (नास्तिक) का भी जन्म हुआ था।

इसी काल में गौतम बुद्ध भी श्रमणानुयायी श्रमणातर्गत थे। ये शाक्य वशी कपिल वस्तु के राजा शुद्धोदन के पुत्र थे जिनका नाम सिद्धार्थ गौतम था। मगध के शाक्य प्रजातत्र के अध्यक्ष राजा शुद्धोधन ने अपने पुत्र बुद्धदेव को ससार मे आसक्ति हेतु यशोधरा से विवाह कराया किन्तु प्रारम्भ से ही विरक्त बुद्ध एक दिन रात्रि मे समस्त परिवार को छोडकर गृह से निकल गये। उन्होने एक दिगम्बर मुनि से दिगम्बर दीक्षा ग्रहण करली। किन्तु एक दिन निरंजना नदी के तट पर किसी वृक्ष के पास खडे हुए विचार करने लगे कि मैं इतने व्रत–उपवास और तपस्या कर रहा हूॅ शरीर मेरा उत्तरोत्तर निर्बल होकर मनोबल को भी कमजोर बना रहा है। अब मुझे इन कठिन मार्ग को छोड़कर मध्यमार्ग को अपनाना ही होगा। यह विचार कर उन्होने उस दिगम्बर मार्ग को त्याग दिया। बौद्धमत क्षणिक वाद को मानता है। आत्मा और परलोक के विषय मे उनका कोई स्पष्ट मत नहीं है। भगवान महावीर और बुद्ध समकालीन होने पर भी कभी साक्षात्कार नहीं हुआ। बुद्धदेव

बौद्धधर्म के संस्थापक थे, किन्तु भगवान महावीर जैनधर्म के चौबीसवे तीर्थंकर थे। वे निर्ग्रंथ परम्परा के अतिम तीर्थंकर थे।

भगवान महावीर के समय भारत वर्ष तीन भागों मे विभक्त था। हिमालय और विध्याचल के बीच तथा सरस्वती नदी के पूर्व और प्रयाग के पश्चिम की ओर का प्रात मध्यदेश कहलाता था। इस मध्यदेश के उत्तर मे उत्तराखड था। दक्षिण वाला प्रात दक्षिण पथ था। उस समय के प्रसिद्ध राज्य चार थे।

1 मगध–इसकी राजधानी राजगृह थी। पीछे पाटलीपुत्र राजधानी बन गई। पहले विबसार राजा थे। पीछे उनके पुत्र अजातशत्रु थे।

2 कौशल–दूसरा राज्य था। इसकी राजधानी श्रीबस्ती थी जो रावती नदी के तट पर्वत के अचल मे विद्यमान थी।

3 कौशल–दक्षिण की और वत्सो का तीसरा राज्य था। यमुना तीर पर इसकी राजधानी कौशाबी थी। यहा उदयनराजा राज्य करता था। इसके पिता का नाम शतानिक था।

4 चौथा राज्य दक्षिण मे अवति था। इसकी राजधानी उज्जयिनी थी। इसका राजा चद्रप्रद्योत था। इन चार के सिवाय 12 राजनैतिक छोटी–बडी शक्तियाँ ओर थी।

1 अग राज्य – राजधानी चपापुरी।

2 काशी – राजधानी वाराणसी

3 बज्जि राज्य–लिच्छवि, विदेह आदि आठ वश इसमे थे।राजधानी मिथिला, राजा जनक इसी विदेह वश के थे

4 कुशीनारी और पावा के मल्ल ये पर्वत के अचल मे स्वाधीन जातियां थी।

5 चेदिराज्य – इसके दो उपनिवेश पुराना नेपाल मे ओर नूतन पूर्व मे कौशांबी के पास था।

6 कुरूराज्य – इस की राजधानी इन्द्रप्रस्थ थी। इसके पूर्व मे पाचाल और दक्षिण मे मत्स्त्य जाति पाव सत्ती थी।

7 दो राज्य पाचालो के थे। इनकी राजधानी कन्नौज और कपिल थीं।

8 मत्स्य राज्य जो कुरू राज्य के दक्षिण में और यमुना के पश्चिम मे था। इसमे अलवर, जयपुर, और भरतपुर के भाग शामिल थे।

9. शूरसेनों का राज्य– इसकी राजधानी मथुरा थी।

10 अश्मक–इसकी राजधानी गोदावरी नदी के तट पोतली में थी।

11. गाधार – इसकी राजधानी तक्षशिला थी।

12. काम्बोज राज्य– इसकी राजधानी द्वारिका।

11 प्रजातंत्र राज्य :-

1 शाक्यो का राज्य	–	कपिल वस्तु राजधानी
2. भग्गों का राज्य	–	ससुमार पहाडी राजधानी
3 बुल्लियो का राज्य	–	अलकप्प राजधानी
4 कालामो का राज्य	–	रामग्राम राजधानी
5 कोलियो का राज्य	–	कैशपुज राजधानी
6 मलयो का राज्य	–	कुक्षी नगरी राजधानी
7 मलयो का राज्य	–	पावा राजधानी
8 मोर्यो का राज्य	–	पिप्पली वन राजधानी
9 मलयो का राज्य	–	काशी राजधानी
10 विदेहो का राज्य	–	मिथिला राजधानी
11 लिच्छवियो का राज्य	–	वैशाली राजधानी

भगवान महावीर इसी वश के पुत्र थे। ये राज्य गोरखपुर, बस्ती, मुजफ्फरपुर जिले के उत्तर मे बिहार प्रात मे फैले हुए थे। यहा राज्यो ओर शासको के नाम लिखने का प्रयोजन यह है कि इन राज्यो मे भगवान महावीर का स्थान कहा है, यह विदित हो सके, साथ मे उस काल मे प्रजातत्र मे शासन का कार्य एक सभा द्वारा होता था। सभा मे एक सुयोग्य व्यक्ति सभापति चुने जाते थे। वे ही राजा के पद से सम्मानित माने जाते थे। वज्जियो का प्रजातत्र प्राचीन भारत का एक सयुक्त राज्य था। इसकी राजधानी वैशाली थी। इसकी विदेह और लिच्छिवि दो प्रधान जातियाँ थी।

भगवान महावीर के पिता सिद्धार्थ एव नाना चेटक थे गणराज्य वज्जि राज सघ मे सम्मिलित थे। लिच्छिवि बडे परिश्रमी, प्रभावशाली थे, धार्मिक एव समृद्ध थे। जो तीर्थंकर थे। लिच्छिवि जैनधर्म के उपासक थे। वज्जि राजसघ की राजधानी वैशाली, वणियग्राम, कुंडग्राम एव वैशाली इन तीन भागों में विभक्त थी। कुडग्राम वसुकुंड 20 मील की लबाई चौडाई में बसा था। चीनी यात्री हयुएन्साग ने देखा था कि यह बडा सरसब्ज विविध सुंदर वृक्षों और महलों से समृद्ध था। सारा वज्जिदेश करीब 1600 मील की परिधि में बसा हुआ था। राजा चेटक बडे वीर पराकमी जैनधर्मानुयायी एव विनयी थे। चेटक के 10पुत्र एवं 7 पुत्रिया थी। सबसे बडी त्रिशला भगवान महावीर की माता थी। चेलना महाराज श्रेणिक की पत्नी थी, चंदना बाल ब्रहमचारिणी आर्यिका होकर

भगवान के समवसरण में आर्यिका प्रमुख हो गई थी। मुनि अवस्था मे भगवान को इसी ने आहार दिया था। उस समय जैन निर्ग्रंथ नाम से प्रसिद्ध थे। भगवान महावीर को मज्झिम निकाय बौद्ध ग्रंथानुसार निगंथ नाथ पुत्र कहते थे। भ महावीर ज्ञातृवशी या नाथवंशी कहलाते थे।

उस समय की आर्थिक स्थिति कृषि होने से संतोषप्रद थी। अन्नोत्पादन खूब होने और विदेशो मे नहीं भेजा जाने से प्रजा का सानंद जीवन यापन होता था। सब लोग अपनी स्वतत्र अजीविका से कमाते और खाते थे। मजदूरी करने का रिवाज नहीं था। प्रजा में अमीर और गरीब का कोई खास भेद नहीं था। वर्णाश्रम धर्म के अनुसार सभी अपना–अपना कार्य व्यवस्थित रूप से करते थे। धार्मिक क्षेत्र में हिंसा अहिसा का वातावरण सघर्षमय था, जिसे भगवान महावीर और उनके भक्त लोग सुलझाने की कोशिश करते थे। सामाजिक व्यवस्था सतोष प्रद थी।भगवान महावीर ने सबसे बडा कार्य यह किया कि जनता के मन मे जो अशाति और दु:ख था यह उनकी अज्ञानता के कारण था इस अज्ञानता को दूर करने हेतु उस समय जो अनेक दार्शनिक अपने को तीर्थंकर मानकर शांतिका सदेश देने का दावा कर रहे थे वे सब अपने इस कार्य मे सफल न होकर लोक के वातावरण को सघर्षमय बना रहे थे। जनता को सत्य मार्ग नही सूझ रहा था। इसी अशांत वातावरण मे काति लाकर भगवान महावीर ने अहिसा, अनेकात और कर्मवार की विस्तृत व्याख्या करके लोक मे मोह और अज्ञान के निराकरणार्थ सहानुभूति,प्रेम और वात्सल्य का स्थान–स्थान पर प्रचार प्रसार किया। व्यक्ति जब अपने को भली–भॉति समझ लेता है तो फिर उसे कोई भौतिक और आध्यात्मिक दुख का अनुभव नहीं होता। यही भगवान महावीर की काति का रूप था। जिसे भिन्न–भिन्न प्रकार से विद्वानों ने बाह्यरूप में उसका विस्तार कर प्रगट किया है। विश्व के प्राणियों को दु:खी जानकर उनका दु:ख (कष्ट नहीं) किस प्रकार दूर हो इस उदारता की भावना से वे तीर्थंकर प्रकृति का बंध करते है और तपस्या द्वारा कर्म शिखर को नष्टकर अर्हत, सर्वज्ञ एवं वीतराग अवस्था प्राप्त कर तीर्थंकर प्रकृति के उदय होते ही समवसरण (धर्मसभा) द्वारा धर्मोपदेश देकर प्राणियो का उद्धार करते है। महात्मा बुद्ध भगवान महावीर के विरोधी थे और बुद्ध धर्म और जैनधर्म के अनुयायियों में संघर्ष के अवसर आए, इसका समाधान निम्न प्रकार है–

''मज्झिम निकाय''

नायक प्रसिद्ध बौद्ध ग्रंथ में लिखा है -

'बुद्धदेव कहते है, हे महात्मन् मैं एक समय राजगृह नगर के गृद्धकूट

पर्वत पर बिहार कर रहा था।वहां ऋषिगिरि के समीप कालशिला पर बहुत से निर्ग्रंथ मुनि तीव्र तप मे प्रवृत थे। मैंने उनके पास जाकर कहा, अहो निर्ग्रंथों, तुम ऐसी घोर वेदना को क्यों सहन करते हो। वे बोले, जो (भगवान महावीर) निर्ग्रंथ, ज्ञानपुत्र, सर्वज्ञ, सर्वदर्शी है, हमे हमेशा उनका ध्यान रहता है। उनका उपदेश है कि हे निर्ग्रंथो ! तुमने जो पूर्व जन्म में पाप किये है, इस जन्म में तपस्या द्वारा उनकी निर्जराकर डालो। मन,वचन,काय के संवर से नूतन पाप कर्म का आश्रव नहीं होता है और बिना आश्रव कर्म नहीं बध ते। तप करने से आगामी कर्म रूककर पूर्व कर्मों की निर्जरा होती है अत तप आत्मा का कल्याणकारी है। यह जानकर बुद्धदेव बडे प्रभावित हुए और उन्होने महावीर की प्रशंसा की।

'सामगाम सुत्तत' बौद्ध ग्रथ मे लिखा है कि पावा में भगवान महावीर के मोक्षगमन की बात जब बुद्धदेव के शिष्य आनंद ने सुनी तो वे खूब हर्षित हुए। यह समाचार बुद्धदेव के पास भी सुनाया गया। भगवान के निर्वाण के बाद बुद्धदेव पाच वर्ष तक तक जीवित रहे।

ईश्वर को जगत्कर्ता न मानने और अपने पूर्व जीवन में दिगम्बर साधु रूप मे जीवन व्यतीत करने आदि कारणों से भ महावीर और गौतमबुद्ध श्रमण सस्कृति के अतर्गत माने जाते हैं। इन्हे वैदिक लोग "नास्तिको वेद निंदक", वेद निंदक नास्तिक कहलाता है। ऐसा कहते हैं। क्योंकि 'वैदिकी हिसा हिंसा न भवति' वेद के अनुसार यज्ञ में की गई पशु हिंसा हिंसा नही मानी जाती। इसका विरोध जैन ओर बोद्ध करते है। यो साख्य आदि भी जगत को ईश्वर कर्ता नहीं मानते।

भगवद् गीता मे यह भी बतलाया गया है कि –

उद्धरेदात्मनात्मानं नात्मानमवसादयेत्।
आत्मैव ह्यात्मनो बंधुरात्मैव रिपुरात्मनः।। (भ.गी. ६,५)

अर्थ– आत्मा के द्वारा आत्मा का उद्धार करे, आत्मा की उपेक्षा न करे । आत्मा ही आत्मा का बधु है और आत्मा ही आत्मा का शत्रु है।

यों बौद्धमत और जैनधर्म मे बहुत अंतर है। बौद्धमत का क्षणिकबाद प्रसिद्ध है जबकि वह नयवाद नहीं मानता। आत्मा और परलोक के संबध में भी उसका स्पष्ट मत नहीं है। दीपक के बुझने के समान आत्मा का वह मोक्ष मानता है। अहिंसा की व्याख्या में भी अधिक शैथिल्य और विरोध है। फिर भी जापान, चीन, आदि में उसका अधिक प्रचार प्रसार है। इसी कारण जैनधर्म का ज्ञान न होने से लेखको ने बौद्धधर्म की जैनधर्म को शाखा लिख दिया था।

भगवान महावीर ने जै धर्म को अहिंसा का जैसा प्रतिपादन किया वैसा अन्यत्र नहीं मिलेगा।

अन्य मतों में अहिंसा

अहिंसा सिद्धांत को जि धर्म ने जितना अपनाया, वह उतना ही महान है इसके कतिपय आधुनिक उदाहरण निम्न प्रकार है –

लार्ड काइस्ट (महात्मा ईसा) :-

फिलिस्तीन मे श्रमण जैन साधु बडी संख्या मे मठो मे रहते थे। हजरत ईसा ने जैन साधुओ से अध्यात्म विद्या का रहस्य पाया था।

(अनेकांत बाल 7 पेज 173)

हजरत ईसा जब 13 वर्ष के हुए, घरवालो ने उन्हे विवाह के लिए मजबूर किया वे घर छोडकर सौदागरो के साथ सिध के रास्ते भारत चले आये थे।

(हजरत ईसा और ईसाई धर्म, प सुन्दरलाल पृ 22)

भारत मे आकर वे बहुत दिनो तक जैन साधुओ के साथ रहे (हजरत ईसा और ईसाई धर्म पृ 162) ईसा ने अपने आचार विचार की मूल शिक्षा जैन साधुओ के पास ली थी।

(इतिहास में भ महावीर का स्थान पृ 16)

हजरत मोहम्मद साहब :-

हजरत मोहम्मद अहिसा के प्रभाव से अछूते नहीं थे। उनकाअतिम जीवन महाअहिसक था। खुरमा रोटी और दूध उनका भोजन था। अपने कलामे हदीस में हजरत मोहम्मद साहव ने फरमाया कि यदि तुम जग के प्राणियो पर दया करोगे तो खुदा तुम पर दया करेगा। कुर्बानी का मास ओर खून खुदा को नही पहुँचाता बल्कि तुम्हारी परेजगारी (पवित्रता) पहुँचती है।

(पैगबर मोहम्मद साहब 'कलाम हदीस' (कुरान शरीफ, पार 17, मुराहज, रूक 5, आयत 38)मौलवी कादर वक्स–इस्लाम की 2री किताब)

एक शिकारी हिरणी को पकड कर ले जा रहा था।मार्ग में हजरत मोहम्मद साहब मिले। हिरणी ने उन से कहा–मेरे बच्चे भूखे हैं, थोडी देर के लिए मुझे छुड़वा दो। बच्चों को दूध पिला कर मैं जल्दी वापस आ जाऊँगी। हिरणी के दर्द भरे शब्दों से मोहम्मद साहब का हृदय पसीज गया। उनके ऑखों मे ऑसू आ गए उन्होने शिकारी से कहा–

हैवान पर अंदेशाये बहशत जरा न कर।
आती है यह बच्चों को अभी दूध पिलाकर ।।

शिकारी हँसा और कहने लगा कि पशुओ का क्या विश्वास? मोहम्मद साहब बोले—अच्छा हम जामिन है। शिकारी बोला अगर यह वापस नहीं आई तो इसकी जगह तुम्हें शिकारे अजल बनना पडेगा। शिकारी ने हजरत की जमानत पर हिरणी को छोड दिया। हिरणी अपने बच्चों के पास गई। बोली—एक महापुरूष ने मुझ जमानत पर छुडाया है। शिकारी ने मुझे पकड़ लिया था। बच्चों ने कहा—माता हम पर जैसे बीतेगी, हम देख लेगे। तु वचनहारी न हो। हिरणी ने वापस आकर हजरत साहब को धन्यवाद दिया। शिकारी ने कहा—अब मैं जिवे होने को तैयार हूँ।उसने हिरणी को छोड दिया। मोहम्मद साहब बड़े दयालु थे। उन्होने अहिंसा का प्रचार किया।

(जैन धर्म और इस्लाम खड 3)

गुरूनानक देव :-

गुरूनानक देव मास भक्षण विरोधी थे। वे एक दिन घुमते हुए जगल में जा निकले वहा के लोगों ने उनसे भोजन के लिए कहा तो गुरूजी ने फरमाया—

यों नहीं तुम्हारी खाये कदापि,
हो सब जीवन के संतापी।
प्रथम तजो आमिष का खाना,
करो जास हित जीवन हाना।।

हम तुम्हारे यहाँ भोजन नहीं कर सकते क्योकि तुम जीव हिंसा करते हो। जब तक तुम मास भक्षण का त्याग न करोगे, तुम्हारे जीवन का कल्याण न हो सकेगा।

(नानक प्रकाश पूर्वार्ध अ. 55)

स्वामी दयाचंद सरस्वती :-

स्वामी जी ने मद्य, मास, मधु के त्याग की शिक्षादी, और पात्र मे छान कर पानी पीने का उपदेश दिया।

(सत्यार्थ प्रकाश समुल्लास 3—10, बिना छने जल का त्याग खंड 2)

श्री जरदोस्त की शिक्षा :-

पारसी धर्म मे बेजुवान पशुओ की हिसा बहुत बड़ा गुनाह है। पूज्य गुरू जरदोस्त मांस त्यागी थे।

(प ईश्वरलाल—मांसाहार विशारद भाग 2 पृ 85—90/शापस्तलाशापस्त)

उन्होने दूसरो को भी मास त्याग की शिक्षा दी। सेठ रूस्तम ने तो अंडा तक खाना पाप बताया है। उनका विश्वास है कि मांसाभक्षण से मनुष्य के स्वाभाविक गुण तथा प्रेमभावना नष्ट हो जाती है। जो अपने स्वार्थ या दिल्लगी के कारण किसी को मारते है वे दोजख आग मे झुलसते हैं।

भगवान महावीर का बिहार

भगवान का जन्म चैत्रसुदी 13 को हुआ था। दिगंबर मुनि दीक्षा मंगसिर सुदी 10 को वन खंड उद्यान में हुई थी। दो दिन उपवास के बाद कूलनगर के कूलनृप के यहां आहार हुआ था। बिहार करते हुए भगवान उज्जयिनी के अति मुक्तक श्मशान भूमि में रात्रि को प्रतिमायोग धारण कर ध्यान मे लीन थे। उस समय 'भव' नामक रूद्र ने भयकर उपसर्ग किये। अंत में विवश होकर उपसर्ग विजयी भगवान से क्षमा मांगकर उनका 'अतिवीर' नाम रखा।

मक्खलि गोशाल भगवान पार्श्वनाथ परम्परा का मुनि था। भ. महावीर के समवसरण में गणधर पद न मिलने से श्रावस्ती में आजीवक संघ का नेता बन गया। मक्खलि गोशाल या मस्करी गोम्मटसार के अनुसार अज्ञान मिथ्यात्व मे प्रसिद्ध है। बारह वर्ष तप करने के पश्चात् भगवान केवलज्ञानी–सर्वज्ञ हुए। वह स्थान जृंमक ग्राम–ऋजुकूला नदी तट व दिन वैशख सुदी दशमी था।

राजगृही के विपुलाचलपर 557 ई. पू. श्रावण कृष्ण प्रतिपदा को भगवान महावीर की समवसरण में प्रथम देशना हुई। उसकी स्मृति में पावन दिवस वीरशासन जंयती प्रसिद्ध हुई। जब भगवान का समवसरण निर्मित हुआ और इन्द्रभूति गौतम प्रथम गणधर हुए। मगध सम्राट् श्रेणिक विंवसार ने भी भक्ति पूर्वक भगवान की वन्दना और उपदेश का श्रवण करने आये। उन्होने प्रश्न किया कि मैं किस पुण्य से सम्राट् हुआ हूँ। भगवान की वाणी में इसका उत्तर मिला कि तीसरे पूर्वभव में तुम मासाहारी थे। मुनिराज के उपदेश से तुमने काक मास कात्याग किया और भयंकर रोग ग्रस्त होने पर चिकित्सक ने केवल काक मास ही इसकी औषध बतलाई। तुमने इसे स्वीकार नहीं किया और मर जाना ठीक समझा। इसके फलस्वरूप तुम देवलोक में जाकर वहां से इस पर्याय में उत्पन्न हुए हो। मांसादि त्याग का बडा महत्व है। जिस समय महाराजा श्रेणिक वीरप्रभु की वन्दना को पुरवासियों के साथ जा रहे थे उसी समय एक मेंढक भी पुष्प लेकर जा रहा था, किन्तु वह श्रेणिक के हाथी के पैर से दबकर मर गया और भक्ति की भावना से मरकर देव उत्पन्न हुआ और वहां से समवसरण मे मुकुट में मेंढक का चिन्ह सहित दर्शन करने आया।

भगवान की वाणी में यह भी बताया गया कि भगवान महावीर अपने पूर्वभवों में पुरुहरवा भील थे। उस भव में मुनिराज के उपदेश से मास त्याग किया उसके पुण्य से वे देवलोक में जाकर भगवान ऋषभदेव के पुत्र भरत

चक्रवर्ती के मरीचि पुत्र हुए। वही मरीचि प्रथम नारायण त्रिपृष्ट और अंत में भगवान महावीर हुए।

भगवान के समवसरण मे श्रेणिक पुत्र अभय कुमार, वारिषेण और मेघ कुमार ने मुनिदीक्षा ग्रहण की। मेघकुमार के संबंध में पूर्वजन्म की घटना है कि जब हाथी की पर्याय में थे। भयंकर दावानल से बचने हेतु एक सुरक्षित स्थान में पहुँचे। वहां बहुत पशु मौजूद थे। वहां वह हाथी जिस किसी प्रकार सिकुड कर खड़ा हो गया। शरीर खुजालेने को जब पैर उठाया तो नीचे खरगोश का शिशु आ गया। हस्ती को तीन दिन तक अपनी टांग को नीचे न रखते हुए उठाये ही रखना पडा। इस कष्ट में उसके प्राण छूट गये ओर वही मेघकुमार की पर्याय में उत्पन्न हुआ है। इस पूर्वभव की जानकारी से उसको वर्तमान में कष्ट सहन की शक्ति प्राप्त हुई। उसने दृढता पूर्वक तप करना प्रारम्भ कर दिया।

राजगिरि के श्रेष्ठ व्यापारी शालिभद्र ने प्रश्न किया कि मैं किस पुण्य से इस अधिक धनसंपत्ति का स्वामी हुआ हूँ । उसे उत्तर मिला कि वह पूर्व जन्म में एक निर्धन ग्वाल पुत्र था। नाम उसका सगम था। कई दिन तक उसे भोजन नहीं मिला। बालक अवस्था मे पडोसी के यहा खीर बनती देखकर उसने माता से माग की। परन्तु घर में दूध व चावल लाने को पैसे नहीं थे। पडोसी ने यह स्थिति देखकर सामग्री एकत्रित कर दी। खीर तैयार होते ही वह खाने को तत्पर हो रहा था कि वहां मुनिराज आहार हेतु आ गये। उसने भक्ति पूर्वक आहार दिया। आहार दान के पुण्य से वह धन्ना सेठ हुआ। यह शालिभद्र को दान का फल ज्ञात हुआ। अर्जुन माली अत्यत दुष्ट था। वह छह पुरूष और एक स्त्री को प्रति दिन मार डालता था। वह समवसरण में पहुँच गया। वहां महाराज श्रेणिक एवं नगर सेठ सुदर्शन को भी देखा महाराज श्रेणिक ने उसे गिरफ्तार करने को हजारों रूपयों का इनाम घोषित कर रखा था। समवसरण में पहुँचते ही उसका जीवन बदल गया और वह जैन साधु बन गया।

भगवान महावीर का समवसरण वैशाली आया। वहां महाराज चेटक के सातपुत्र उपदेश से प्रभावित होकर राजपाट त्याग मुनि हो गये। प्रधान सेनापति सिंह भद्र ने सैनिक अवस्था का त्यागकर अहिंसा धर्म के अंतर्गत श्रावक व्रत ग्रहण कर लिये। वैशाली के निकट वाणिज्य में सेठ आनंद एवं सेठानी शिवानदा ने अनेक व्यापारियों के साथ श्रावक व्रत ग्रहण किये।

इसी प्रकार भागलपुर में महाराज अजातशत्रु जैनमुनि हो गए। चंपानगरी

के प्रसिद्ध सेठ सुदर्शन को अभया रानी ने मिथ्यादोष लगाया था किन्तु सेठ निर्दोष सिद्ध हुए और उन्होने भगवान के समक्ष दि. मुनि पद ग्रहण किया। भगवान का बिहार वाराणसी, कलिंग, पुंड्र, वंग, ताम्रलित्प, कौशांबी, पांचाल, कांपिल्य, उत्तर मथुरा, दक्षिण मथुरा, कांचीपुर, हेमोंग, पोदनपुर, मालवा, राजपूताना जयपुर, महावीर (पहोदा) दशार्ण, गुजरात, सिंधु, कच्छ, लाड़, पंजाब, काश्मीर आदि देशों में अर्थात् समग्र भारत में बिहार हुआ था। इनमें अनेक राजा, सेठ आदि ने मुनि एवं श्रावक के व्रत ग्रहण कर आत्मकल्याण किया था। भगवान का बिहार भारत में ही नहीं अपितु बाहर देशों में भी हुआ। युवनश्रुती(यूनान) में 58 ई.पू. में उत्पन्न दार्शनिक विद्वान पैथागौरस के ऊपर वीर सिद्धांत का इतना प्रभाव पडा कि उन्होनें अपने देशवासियों को जीवात्मा, पुर्नजन्म कर्म सिद्धांत मे विश्वास करने की शिक्षा दी। हिंसा और मांसाहार से दूर रहने की प्रेरणा दी। वनस्पति में जीव रहते है यह बताया। यूनान की राजधानी एथेंस में धर्म शास्त्री सोलन कीसस नामक राजा के दरवार मे गया। कीसस ने अपने को संसार में सर्वाधिक धनवान बताया। सोलन ने उसे सतोष का महत्व बताकर उसका समाधान किया। कालांतर में फ्रांस के राजा साइरस ने कीसस पर विजय पाकर उसे जीवित जला देने का आदेश दिया। उस समय उसे सोलन की याद आई और तीन वार उसका नाम लिया और उसके प्रभाव से जीवन दान मिला।

सुकरात और उसके प्रमुख शिष्य प्लेटो जिनका अफलातून नाम प्रसिद्ध था, जिनको यूरोप के लोग ज्ञानगुरू मानते थे, महावीर के सिद्धांतों का आचरण करते थे। सुकरात के समकालीन डायोजिनीज भी वीर प्रभाव से विशिष्ट ज्ञानी हो गये थे। वे नग्न होकर आत्मज्ञान में मग्न रहते थे। यूनान का राजा मनेन्द्र 500 यूनानी विद्वानों के साथ भारत में जैनधर्म की चर्चा करने आया। यहां के जैन साधुओं से प्रभावित होकर वे सब जैन साधु हो गए। भ. महावीर के भक्त यूनान के राजाओं ने ध्यान हेतु भगवान की मूर्ति स्थापित की थी। जैन मुनि संघ ने इटली,नारवे आदि देशों में जाकर धर्म प्रचार किया था। डा. राधा कृष्णन के अनुसार चीन के लोन्से वे कन्फ्यूशियस यूनान में पेरमेनोडेस व एम्पोडोक्लज और ईरान में जरथुस्त्र आध्यात्मिक संत हुए हैं। ईरान का राजकुमार अर्दक भगवान की प्रशंसा सुनकर भारत आया और 500 ईरानियों के साथ भगवान के उपदेश से प्रभावित होकर दि. जैन मुनि बन गया। फिलिस्तीन के महात्मा मूसा वीर के समकालीन थे। उनके जीवन में धार्मिक सिद्धांत एवं शिक्षायें भगवान के प्रभाव का परिणाम था।

क्वाथरहाय जिसका जल क्वाथ अर्थात लाल कहा जाता है, रेडसी के पास का क्षेत्र एवेसिनिया, अरब आदि देश हैं, जैनधर्म से प्रभावित थे। सुरमिरू (मध्यएशिया) के स्पीनरुस के पास ओक्सस के ऊपर जो आजकल का खिवानगर है, में जैनधर्म का प्रभाव था।

सिंध सौवीर का जो आजकल पाकिस्तान का भाग सिंध है, राजा वीर के समय उदायन था। इसकी रानी प्रभावती महाराज चेटक की पुत्री थी। वीर के इतने भक्त थे कि वीर प्रभु के जीवनकाल में ही उन्होंने मंदिर व चंदनमूर्ति स्थापित की थी। उसके चमत्कारों को सुनकर उज्जैन के महाराज चंद्रप्रद्योत ने 'उसे चोरी से मंगवाली। उद्दायन ने वापस करने को कहा किन्तु हन्कार करने पर विशाल सेना लेकर युद्ध करने को तत्पर हुआ। युद्ध में चन्द्रप्रद्योत को बन्दी बनाकर मूर्ति वापस ले आया। रानी सहित उद्दायन सम्यग्–दृष्टि श्रावक–श्राविका थे। दशलक्षण व क्षमावणी पर्व पर चन्द्र प्रद्योत को छोड़ दिया राज्य भी लौटा दिया। अत में दोनों साधु साध्वी हो गये। केकी प्रांत (गाधार) की राजधानी कधार थी। वहां के राजा सात्मक की सगाई महाराज चेटक की पुत्री ज्येष्ठा के साथ हुई थी। ज्येष्ठा भगवान का समवसरण आने पर वहां प्रभावित होकर साध्वी हो गई।

कामवीज (विलोचीस्थान) तथा तक्षशिला में भगवान का बिहार हुआ वहां खुदाई में जैन पुरातत्व सामग्री प्राप्त हुई। अशुवात (वर्तमान काबुल) और आरट्ट (पंजाब) हडप्पा जिला मनुटगुमटी भद्र पंजाब की और रावी चिनाब नदियों के मध्य का क्षेत्र। यह पुरातत्व सामग्री का क्षेत्र है। हगरी यूरोप में एक नगर है, जहां एक अग्रेज को बगीचे की भूमि खोदते हुए महावीर की पद्मासन मूर्ति मिली। इससे सिद्ध है कि यूरोप में भी महावीर पूजा होती थी। हंसद्वीप (लंका) का राजा रत्नचूल था। जिस पर श्रेणिक का प्रभाव था ओर उसके निमंत्रण पर भारत आया था। इस प्रकार अफगानिस्तान, एथोविया, अरब, वर्मा, जर्मनी, मध्य ऐतिहासिक विद्वानो के अनुसार एशिया, लंका, चीन, मिश्र, फ्रांस, जर्मनी, यूनान, आस्ट्रीलिया, इण्डोनेशिया, जावा, ईरान, जापान, तिब्बत, अदि देशों याने आर्यावर्त (समस्त संसार) मे ऐतिहासिक विद्वानों के अनुसार भगवान महावीर के अस्तित्व के प्रमाण मिलते हैं। पुराणों में भी ऐसा ही लिखा हुआ मिलता है।

(महावीर जयंती स्मारिका जयपुर राजस्थान जैन सभा
दिगम्बर दास एडवोकेट)

जैन शासक

भगवान ऋषभदेव के समय उनके पुत्र भरत प्रथम चक्रवर्ती और बाहुबलि पोदनपुर नरेश हुए। उनके समय विविध देशो के अनेक राजा पुराण मे प्रसिद्ध है। सगर आदि का वर्णन भी तीर्थंकरो के समय में दे दिया गया हैं। भगवान महावीर के समय ऐतिहासिक दृष्टि से विशेष यह है :– ई.पू. छठी शताब्दी मे काशी नरेश शिशुनाग ने मगध पर अधिकार कर लिया। इस वश के प्रथम प्रतापी नरेश श्रेणिक (बिदुसार) भगवान महावीर के भक्त थे। श्रेणिक ने अगदेश व छोटे–छोटे राज्यों को जीत कर उन्हें अपने राज्य में मिला लिया था और सम्राट् पद पा लिया था। उनका पुत्र कुणिक (अजातशत्रु) भी वैशाली के वज्जिसघ कौशल आदि के राजाओं को जीतकर उत्तरी व मध्य भारत का सम्राट् बन गया। उनके पुत्र उदयन ने पाटलीपुत्र राजधानी बनाई।

सन् 467 ई. पूर्व मे राज्यकाति हुई । उसमें नन्दवंश ने मगध पर अधिकार जमा लिया। इस वश मे नदिवर्धन प्रतापशाली सम्राट् हुआ। उसने कलिग पर विजय प्राप्त की। इस वश के महापद्म सम्राट् के राज्यकाल मे 327 ई.पूर्व सिकदर ने भारत पर आक्रमण किया। परन्तु इसकी सीमा मे प्रवेश नहीं कर सका।

सन् 327 ई.पूर्व मगध में पुनः राज्य क्रांति हुई। चन्द्रगुप्त ने चाणक्य की सहायता से युद्ध करके मगध पर अधिकार जमा लिया । ध्यान रहे ये जैन धर्मानुयायी थे। साम्राज्य की व्यवस्था भलीभांति करने के पश्चात् अवति पर विजय प्राप्त की और उज्जयिनी को अपनी राजधानी बनाई। फिर दिग्विजय हेतु दक्षिण गये। महाराष्ट्र, कोकण, कर्नाटक,तमिल आदि देशों पर विजय प्राप्त कर ली। युनान के सेल्युकस ने इसके राज्य पर आक्रमण किया उसे पराजित कर उससे पंजाब, सिंध, काबुल, कंधार व हिरान देश लेकर अपने साम्राज्य की वृद्धि की। इस प्रकार चन्द्रगुप्त मौर्य समस्त भारत का सम्राट् बन गया। सन् 298 ई.पू. चन्द्रगुप्त के गुरू भद्रबाहु जैनाचार्य ने यह जानकर कि उत्तर व मध्य भारत में 12 वर्ष का दुर्भिक्ष पड़ेगा, 12 हजार मुनियों को

लेकर दक्षिण प्रदेश की ओर विहार किया। चन्द्रगुप्त भी अपने पुत्र विदुसार को राज्य देकर दक्षिण में श्रवणबेलगोला चले गये ओर वहीं जैनेन्द्री दीक्षा ले ली। इनके राज्य में युनानी राजदूत मेगास्थनीज रहता था। उसने उस समय भारत की जो दशा थी, उसका वर्णन किया है। उस समय भारत समृद्ध और सुखी था जनता ताले नहीं लगाती थी। वहां चोर नहीं थे। विदुसार का पुत्र अशोक, जिसने कलिंग पर आक्रमण कर विजय प्राप्त की। युद्ध मे लाखों व्यक्तियों का संहार हुआ जिससे उसका हृदय हिंसा से विरत हो गया जब विजय करके मा से आशीर्वाद मांगा तो मां ने कहा, बेटा, लाखो स्त्रियो की मॉग का सिन्दुर पौंछ कर उन्हें विधवाकर और लाखों को पुत्रहीन बनाकर तु आर्शीवाद मांग रहा है। इस करूणा पूर्ण वाणी को सुनकर अशोक का हृदय दयार्द्र हो गया और वह विरक्त होकर पूर्ण अहिंसक बन गया।

अशोक के अहिंसा के समर्थक अनेक शिलालेख प्रसिद्ध है। शांति और सदाचार से रहने के आदेश शिलाओं पर अकित है। उसका उत्तराधिकारी पौत्र संप्रति नरेश हुआ। उसने भी अपने पितामह के समान शिलालेख लिखवाये। जैनधर्म के प्रचार प्रसार हेतु विद्वानो को भारत के बाहर भेजा। मौर्य वंश का राज्य मगध में 184 ई पू व उज्जयिनी मे 164 ई तक रहा। इन तीनों राज्यवशो का धर्म जैन था।

(जैनधर्म – श्री रतनलालजी जैन अ दि जैन परिषद पब्लिशिग हाउस दिल्ली)

कुछ इतिहासकार अशोक को बौद्ध मानते है, परन्तु कुछ जैन मानते है क्योकि अशोक के शिलालेख जैनधर्म के अधिक निकट है। पशुवध व जीवहिंसा रोकने के लिए जो नियम बनाये वे जैनधर्मानुकूल है।
जीवहिंसा निषेध की आज्ञा जारी की थी। चाणक्य के अर्थशास्त्र में कथित 56 पवित्र दिन जैन परम्परा से मेल खाते है। शिलालेखों मे नियमो (जैन दिगंबर मुनियों) का विशेष आदर करने का उल्लेख है। विद्वानों का यह विशेष रूप में मत है कि अशोक एक महान प्रजा पालक सम्राट् था जिसने प्रजा के नैतिक उत्थान हेतु नवीन असांप्रदायिक धर्म लोक के सन्मुख उपस्थित किया था।

कलिंग के सम्राट् खारवेल जो जैन धर्मानुयायी था, जिसने मुनियों का एक विशाल सम्मेलन बुलाकर सरस्वती आंदोलन द्वारा मौखिक रूप से चली आ रही द्वादशांग श्रुत वाणी को लिपिबद्ध कराने की योजना बनाई थी, जो मेघबाहन खारवेल नाम से प्रसिद्ध था, इसका राज्याभिषेक 166ई.पूर्व हुआ था। इसी ने युनानी त्रिमित्र को पाटलीपुत्र से मथुरा तक खदेड़ कर मथुरा, पंजाब, पाचाल, आदि देश पर अधिकार किया था। मगध राजा को इसने पराजित किया ही था इसने अनेक लोक कल्याणकारी कार्य किये खंडगिरि पर्वत की हाथी गुफा के लेखों से उसके कार्यो का परिचय मिलना है।

कलिग नरेश खारवेल ने मालवा पर अधिकार करके अपना एक राजकुमार शासक नियुक्त कर दिया। सन् 74 ई.पू. इस वंश का महेन्द्र विजय भिल्ल राज्य करना था। वह दुराचारी था। शकवाहियों की सहायता से गर्दमिल्ल् उज्जयिनी से निकाल दिया गया। शकों का राज्य पर अधिकार हो गया। उज्जयिनी की प्रजा ने विक्रमादित्य के नेतृत्व में ई.पू. 57में उज्जयिनी को स्वाधीन कर लिया। इस विजय के उपलक्ष्य में **विक्रमसंवत का पारम्भ** हुआ। यह राज्य वश जैनधर्मावलंबी थ। उज्जयिनी जैनधर्म का केन्द्र थी।

शकवाहियो ने 66ई.पू. सौराष्ट्र को जीतकर उसकी राजधानी वसुंधरा बनाई। इसी वश के राजा नहपान या नरवाहन ने 26ई.पू. तक राज्य किया। और दि. जैन मुनि दीक्षा लेकर षट्खंडागम (आचार्य धरसेन के शिष्य भूतबलि, एवं आचार्य पुष्पदंत के सहपाठी) की रचना की जिसकी धवला टीकायें प्रसिद्ध हैं। ये टीकायें 9वीं शताब्दी के आचार्य वीरसेन स्वामी कृत है। नहपान के सेनापति का पुत्र भद्रचष्टन वीर और यौद्धा था। सन् 78 ई. में इसने उज्जयिनी पर आक्रमण कर इस विजय के उपलक्ष्य में **शक संवत् पारम्भ** किया। इसी वंश का भद्रदमन प्रतापी राजा था जो जैनधर्मानुयायी था और इसका लगभग 100 वर्ष तक राज्य चला।

छठी शताब्दी में हुएनसांग चीनी यात्री ने बंगाल में अनेक जैन बस्तियों में जैन मंदिर और जैन मुनि बिहार करते हुए देखे थे। वीरभूमि, वर्धमान, सिंहभूमि, मानभूमि आदि नगरों के नाम, जैन प्रतिमायें, प्राचीन जैन **स्मारक**

जाति की जनता में जैनधर्म फैला हुआ देखा था। जैन प्रतिमायें भैरव आदि के रूप में परिवर्तित देखी गई थी।

सन् 319 ई में गुप्त साम्राज्य की नींव चन्द्रगुप्त द्वारा डाली गई थी। इस वंश का राजा समुद्रगुप्त महान विजेता था। इस वंश के अनेक राजा वैष्णव व बौद्ध हुए। पीछे सम्राट देवगुप्त जैन धर्मानुयायी हुआ छठी शताब्दी में यह वंश शक्तिहीन होने लगा।

756 ई में नागभट्ट ने अरबों और सिंध पर विजय प्राप्त कर पश्चिमी भारत, मालवा, गुजरात पर भी अधिकार कर लिया। इसने कन्नौज को राजध ानी बनाई। इसके वंश के समस्त राजा जैनधर्मानुयायी थे। 11वीं शताब्दी तक इस वश का राज्य चलता रहा।

अजमेर के चुहान राजाओ मे विग्रह राज 10वीं शताब्दी मे जैनधर्म का भक्त था। ई सन् 974 में धारा के परमार वशीय सीयक राजा हर्ष अपने विस्तृत राज्य का मुज को अधिकार देकर दिगबर मुनि दीक्षा ग्रहण कर ली। मुज और भोज (1010–1030) जैनधर्म के पोषक थे। धारानगरी जैनधर्म की केन्द्र थी। 10वीं शताब्दी मे अवध और रूहेल खड का राज्य ध्वज वंश के रूहेल के आधीन था। इसने मोहम्मद गजनी के सेनापति सैयद सालार मसऊद को पराजित किया था। बिजनौर जिले का पार्श्वनाथ किला व मोरध वज किला इसी पथ के शासको द्वारा निर्मित हुए थे।

लगभग 900 ईसवी में हर्षचन्देले ने चदेल वश को उन्नत किया था इसी वश के राजा घ्यंग (945–1000) के आश्रय मे **खजुराहों** के प्रसिद्ध जैन व वैष्णव मदिर बने है। 12वीं शताब्दी मे कच्छप षट वशीय महेशनंद व विकम राजाओं ने ग्वालियर सोहनिया आदि स्थानों पर जैन मदिर, **ग्वालियर किले** में पार्श्वनाथ प्रतिमा एव दीवारो पर तीर्थंकरों की मूर्तियाँ अकित करवाई।

लगभग 535ई. में गुप्त साम्राज्य में सौराष्ट्र सेनापति मंत्रक वंशीय भटार्क के पुत्र धरसेन ध्रुवसेन ने वल्लभी को राजधानी बनाई जो जैन धर्म को मानते थे। इसी वल्लभी में श्वेताम्बर साधु सम्मेलन में वाचना (श्रुत रचना) हुई थी।

आठवीं शती के अंत में राष्ट्रकूट वंशी शाखा गुजरात पर अधिकार कर स्वतंत्र हुई। कर्क राजा और उसके वंशज जैनधर्मानुयायी थे। नवसारी में जैन विद्यापीठ की स्थापना हुई।

900ई. में मूलराज सोलंकी (दक्षिण के चालुक्य वंश की शाखा) गुजरात का अधिपति बना। इस वंश के नरेश जयसिंह सिद्धराज व कुमार पाल (12वीं शताब्दी) जैनधर्म भक्त थे तथा पसिद्ध आचार्य श्री हेमचन्द्र उसके गुरू थे।

दसवीं शताब्दी में चूड़ावश के राजा वनराज ने अणहिल्ल पाटन को राजधानी बनाई। इस वंश के राजा दांत वर्मा वीर एवं प्रतापी थे। महाराज जयसिंह जैनधर्मानुयायी एवं विद्यानुरागी थे। दसवीं शताब्दी में राजस्थान के हयोडी नगर के राठौर राजा जैन थे और जैन मंदिरों का निर्माण किया था।

बंगाल में पचम शती से पूर्व ताम्रलिप्त बदरगाह पर जैन विहार थे। सातवीं शती में चीनी यात्री ह्येन साग ने वहा बहुत से जैन साधुओं को देखा था।

छठी शताब्दी तक दक्षिण के पल्लव व पाडय राजवश जैनधर्मानुयायी रहे। तीसरी शताब्दी तक चौल राज्य के राजा जैनधर्मावंलबी रहे कोलुतुग वीर एवं पराकमी राजा था जो जैन धर्म का उपासक था।

प्रथम शताब्दी के चेर राज्य के राजा मयूर वर्मन् जो द्वितीय शताब्दी में हुए है, उनके द्वारा पल्लव राज्य पराजित हुआ। पश्चात् शिवकोटि राजा आचार्य समतभद्र द्वारा जैनधर्म मे दीक्षित हुए।

पीछे इनका वश जैनधर्मावलबी रहा। इस प्रकार छठी शताब्दी मे उन्नत दशा में रहकर धीरे-धीरे 13वीं शताब्दी तक चलता रहा।

कर्नाटन (मैसूर) का गग वश दूसरी शताब्दी मे स्थापित होकर दसवीं शताब्दी तक उन्नत बना रहा और जैनधर्म का उपासक रहा। इसी वंश के श्री पुरूष राजा (आठवीं शताब्दी)ने जैन श्रावक के व्रतग्रहण किये। दसवी शताब्दी के सम्राट् मारसिंह ने भी मालवा पर विजय प्राप्त कर पल्लव,चेर,चोल,पाड्य राजाओं को पराजित कर जैनमदिर बनवाये। अंत मे श्रावक के व्रत ग्रहण कर लिए।

मारसिंह सम्राट् के मंत्री वीरचामुड राय ने श्रवणवेलगोला मे बाहुबलि स्वामी की 57 फुट ऊंची खड्गासन प्रतिमा विंध्यगिरि पर निर्माण कराई।

गंगवश की एक शाखा पाचवी शती में कलिंग देश को चली गई । वहां ग्यारहवीं शती तक राज्य किया। पश्चिमी चालुक्य वंश के स्थापक पुलकेशी नरेश महानवीर थे। बादामी को राजधानी बनाकर 535ईस्वी से 565ईस्वी तक राज्य किया। यह जैनधर्म के उपासक थे। इसी वश मे पुलकेशी तृतीय 7वीं शताब्दी में हुआ जो पल्लव, आंध्रदेशों को जीतकर दक्षिण पथ का सम्राट् बन गया। यह जैनधर्म का उपासक था।

इसी पुलकेशी तृतीय ने बादामी और अंजना के गुफा मंदिरों में कलाकारो द्वारा भित्तियो पर अद्वितीय चित्र निर्माण कराये। अंत में यह पल्लवों द्वारा पराजित होकर युद्ध में मारा गया। इसका पुत्र विक्रमादित्य वीर और साहसी था। उसने पल्लवों को युद्ध में जीतकर अपना राज्य दृढ़ किया।

द्वितीय शताब्दी मे पूर्वी चालुक्य शाखा के अम्म द्वितीय नरेश (995—97) प्रतापी और जैन धर्मानुयायी था। यह राज्य भी 11वीं शताब्दी तक रहा। दुर्गराज अम्म का सेनापति जैनधर्म का उपासक था। जो 10वी शताब्दी तक आध्र प्रदेश मे जैनधर्म का प्रभाव था। इस वश के राजा अधिकतर जैनध र्मानुयायी थे।

ई.सन् 752 में राष्ट्रकूट राजवश के दत्तिवर्ग सम्राट् ने एलोरा को राजध ानी बनाई और जैनाचार्य विमल का विशेष आदर किया। यह शैव था किन्तु अन्य धर्म का विरोधी नहीं था। इसी वश मे गोविन्द तृतीय सम्राट् की राजधानी मान्यखेट थी। आठवीं शताब्दी में इसके राज्य का शासक इसका पुत्र अमोघवर्ष हुआ जिसने नवमीं शताब्दी में राज्य किया और जैन धर्म का उपासक रहा। इसके गुरू महापुराणकर्ता आचार्य जिनसेन थे। जिन्होने आ. वीरसेन के बाद जयधवला की टीका भी लिखी। सम्राट् अशोक सस्कृत व कन्नड भाषा के विद्वान एव धार्मिक थे। राष्ट्रकूट साम्राज्य का अतिम राजा इन्द्र 974 ई. में राज्य त्यागकर मुनि हो गया था।

कल्याणी का चालुक्य वीर तैलप राष्ट्रकूटों को पराजित कर साम्राज्य अधिपति बना यह जैन धर्म का उपासक था। इस वंश का विक्रमादित्य नरेश (1076—1128) अंतिम था। पश्चात् 12वीं शताब्दी तक चलता रहा। कल्याणी के कलचूरि विज्जल चालुक्यों के सेनापति थे 1156 में चालुक्य नरेश तैलप (तृतीय) को बन्दी बनाकर साम्राज्य अधिकार कर लिया। विज्जल सम्राट् जैन धर्म का उपासक था।

कोकण का विजयादित्य शलाहार (1140—1165) पराक्रमी था। यह जैनधर्म का उपासक था। द्वारसमुद्र का होयसल वंश जैनधर्म का उपासक

था। 12वीं शताब्दी मे शक्तिशाली रहा। इस वश का नरेश विष्णुवर्धन महान योद्धा था। इसका राज्य 12वीं शताब्दी मे द्रविड़ के अनेक राजाओं को जीतकर सुदृढ बना रहा। इसका सेनापति गंगराज पराक्रमी एवं जैनध र्मानुयायी था। इसी वंश का राजा वल्लाल द्वितीय (1171–1220) बड़ा वीर था। 1326ई में मोहम्मद तुगलक ने आक्रमण करके इस राज्य का अंत कर दिया।संगम सरदार के पाच पुत्रों ने 1336ई में तुंगभद्रा के तट पर हम्बी स्थान पर विजयनगर बसाया।

1346 में हरिराय का राज्यभिषेक हुआ। इस वश का देवराय द्वितीय (1419–1446) जैनधर्मानुयायी था। उसके राज्य में नेमिचन्द्र जैनाचार्य ने शास्त्रार्थो मे अन्य विद्वानो पर विजय प्राप्त की। सन् 1564 मे विजयनगर पर मुसलमानो का अधिकार हो गया।

दक्षिण भारत में विजयनगर साम्राज्य के 1564 ई मे पतन के पश्चात् राजा, सामतवीरो, की सख्या कम होने लगी। दिगम्बर गुरू एव प्रभावशाली विद्वान भी कम होने लगे। इसका कारण जैनधर्मानुयायियो पर आक्रमण और उनके मदिर मूर्तियो का विध्वस, जैन बस्तियों का नाश आदि हैं। दक्षिण कर्नाटक एव वहा के तीर्थो की स्थिति बनी रही अत वहा जैनधर्म व जैनधर्मावंलबी आज तक हैं।

जैनधर्म और तीर्थंकर

हमारे शरीर मे ज्ञान दर्शन रूप चेतना शक्ति वाला आत्म द्रव्य है। उसकी निर्मलता के बाधक अनादि काल के शत्रु कोध,मान, माया, मोह, लोभ, राग, द्वेष, काम विकार आदि है, जो अनादिकाल से इसी जीव ने अपने विपरीत पुरूषार्थ से उत्पन्न कर अपने साथ एक क्षेत्रा व गाही कर्मरूप में बॉध ा रखे हैं। उन्हीं के कारण यह दु:खी और ससारी बना हुआ है। उन विकारों को अपने सयम और त्याग द्वारा जिन्होने नष्ट किया है वे जिन कहलाते है। उनके द्वारा प्रतिपादित धर्म को जैनधर्म कहते हैं। ऐसे वस्तु स्वरूप जैनधर्म के प्रथम उपदेशक प्रथम तीर्थंकर (धर्म प्रर्वतक) ऋषभदेव हुए। मूलरूप में द्रव्य दो है जीव और अजीव। जीव दो प्रकार है ससारी (कर्मसबंद्ध) और मुक्त (कर्मरहित) प्रथम ऋषभदेव, बीसवें मुनिसुव्रत, इक्कीसवें नमिनाथ, बावीसवें नेमिनाथ, तेइसवें पार्श्वनाथ और चौबीसवे महावीर तीर्थंकर इस प्रकार चौबीस तीर्थंकर हुए हैं।

जैनधर्म और विज्ञान

वैशेषिक नैयायिक मतानुसार "शब्द गुणकमाकाशम्" शब्द आकाश का गुण है। जैनधर्म शब्द को मूर्तिक पुद्गल की पर्याय मानता है और वैशेषिक दर्शन शब्द को अमूर्तिक आकाश का गुण मानते हैं।

शब्द टेलीफोन और टीवी द्वारा सर्वत्र आवाज रूप मे फैलता है। वायरलेस द्वारा भेजा जाता है। शब्द रूकता है, फोनोग्राम द्वारा भरा जाता है। शब्द, बध, स्थूल, सूक्ष्म, सस्थान, भेद, अधकार, छाया, चन्द्रप्रकाश, सूर्य प्रकाश ये 10 पुद्गल द्रव्य की पर्याये हैं।

(तत्वार्थसूत्र एव द्रव्यसंग्रह)

पुद्गल परमाणु एक समय मे चौदह राजू-लोकात तक गमन कर सकता है तथा शब्द रूप पुद्गल स्कध रूप होकर दो समय में लोकात तक गमन कर सकता है।

जीव को वैज्ञानिको ने शीशे मे बंद करने का प्रयत्न किया, परन्तु सफलता नहीं मिली। जैनधर्म जीव को मृत्यु के पश्चात् एक गति से दूसरी गति मे पहुँचने मे एक, दो, तीन, चार समय और सीधा, एक मोड, दो मोड और तीन मोड तक मानता है। जीव के साथ कार्मण और तेजस ये दो शरीर ससार दशा मे हमेशा बने रहते हैं। यह गति से गत्यतर मे पहुँचना कार्मण योग से होता है। प्रत्येक आत्मा शरीर प्रमाण रहता है। जगत्कर्तृत्व युक्त्यागम से सिद्ध नहीं होता, न ही वैज्ञानिक मानते हैं।

जन्म के लिए आज माता के गर्भ की आवश्यकता नहीं रह गई परखनली से शिशु का जन्म हो जाता है। यह हम पुराणो मे भी पढते हैं। वैज्ञानिकों ने रोबोट अपने समान तैयार कर लिया है जो मनुष्य, मनुष्य संबध ी कार्यो को कर लेता है। वैज्ञानिक चमत्कारो को देखकर हमारी आस्था डगमगाने न लगे इस हेतु प्रस्तुत प्रयत्न है। पूर्व जन्म अब सिद्ध हो चुका है। वर्तमान विज्ञान ने अणुबम, उद्जनबम एव अन्य अस्त्रों-शस्त्रों का निर्माण कर मृत्यु की सहस्त्र सामग्री उत्पन्न कर दी है, जिसके लिए वैज्ञानिक आइन्स्टीन को पश्चाताप हुआ है। अब बडे राष्ट्रों को सद्बुद्धि भी आई है कि वे इनके प्रयोग में प्रतिबंध रूप समझौता करने मे सचेष्ट हैं।

वर्तमान विज्ञान ने आकाश मे इस पृथ्वी से सूर्य को ऊपर और चन्द्र को नीचे माना है और चन्द्रयात्रा के उदाहरण भी प्रस्तुत कर दिये है। प्रचलन

में जैन शास्त्रानुसार चन्द्र ऊपर और सूर्य नीचे है। इस विषय में जो प्राचीन गाथा है वह निम्नलिखित है–

णवदुत्तर सत्तसया दस सीदी चउदुगंचतिय चउक्कं।
तारा रवि ससि रिक्खा बुह भग्गव गुरु अंगिरारसणी।।

(सर्वार्थसिद्धि 4–12)

इस भूमि से 790 योजन ऊँचे तारे, उससे 10 योजन ऊपर सूर्य है। उससे 80 योजन ऊपर चन्द्र है, फिर कमश 4, 4, 3, 3, 3, 3, योजन ऊँचे नक्षत्र, बुध, शुक्र, गुरु, मगल और शनि है।

इस विषय मे प्रसिद्ध विद्वान पं महेन्द्र कुमार जी न्यायाचार्य ने पहले और अभी श्री प जगन्मोहनलाल जी शास्त्री ने अपने "जैनशास्त्रो मे वैज्ञानिक सकेत "लेख मे लिखा है कि लिपि लेखको की लिखने मे भूल हो सकती है कि "ताराविससि" के स्थान में "ताराससिरवि" हो सकता है। इस तरह सूर्य ऊपर और चन्द्र नीचे संभावित है। उक्त गाथा भी प्राचीन है जिसका उल्लेख पूज्यपाद आदि आचार्यो ने किया है। सामान्यत. चन्द्रलोक यात्रा आगम विरूद्ध नहीं है, क्योकि ऋद्धिधारी साधु सुमेरू के चैत्यालयों की वन्दना करते हैं। तीर्थकरो का देवों द्वारा सुमेरू–पांडुक वन पर अभिषेक होता है, जो ज्योतिर्लोक (900 योजन ऊँचा) से ऊपर है।

जैनधर्म मे जीव, पुद्‌गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल ये छः द्रव्य माने गये है। इनमे आकाश, धर्म और अधर्म तत्व हैं, ऐसा आधुनिक वैज्ञानिक मानने लगे हैं। आकाश स्पेस का पर्यायवाची है। आकाश असीम है किन्तु अनत है। इसे अग्रेजी मे "फाइनाइट बट अनवाउन्डेड" शब्दों द्वारा प्रगट किया गया है। आइन्स्टाइन ने आकाश (स्पेस) को ससीम प्रकृतिके निमित्त से कहा है। प्रकृति (पुद्‌गल) के अभाव में आकाश अनंत है।

धर्म द्रव्य का पर्यायवाची ईथर है। यह पौद्‌गलिक नहीं है। यह सम्पूर्ण जगत में व्याप्त है और गति का माध्यम है। यह माइकेल्सन मार्ले–प्रयोग और सापेक्षवाद के सिद्धांत के अनुसार है। अधर्म क्षेत्र फिल्ड का पार्ययवाची है। यह स्थिति का माध्यम है। गुरूत्वाकर्षण प्रकाश और अन्य विद्युत चंबुकीय घटनाओं से संबंद्ध है। अतः इसका माध्यम क्षेत्र है। इस ओर वैज्ञानिक ध्यान दे रहे है।

वैशेषिक पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और मन ये पृथक् द्रव्य मानते है। उनके नव द्रव्यों में ये शामिल हैं। वर्तमान विज्ञान ने इन पांचों को एक जाति

प्रकृति या पुद्गल में शामिल किया है जैसा कि जैनशास्त्र सर्वार्थसिद्धि पंचमाध्याय में पहले ही सिद्ध कर दिया गया था। ये चारों जिन परमाणुओं से निर्मित हैं, उनकीजाति एक ही है। वैज्ञानिक वायु में स्पर्श ही नहीं, रूप भी मानते हैं। ये तरल अवस्था में वायु का रंग हल्का नीला होता हैं। उसी प्रकार अग्नि ऊर्जा के अन्तर्गत है। वैज्ञानिक ऊर्जा और प्रकृति (पुद्गल) को एक मानते हैं। वैज्ञानिक प्रकृति को ठोस, तरल और वाति रूप मानते है। जल भी इसी के अन्तर्गत है।हाइड्रोजन और आक्सीजन वात मिलकर जल बन जाती है। यह हम जानते ही है। चकमक पाषाण से अग्नि निकलती है। यह भी सर्वविदित है। द्रव्य मन तो हृदय के भीतर अत्यन्त सूक्ष्म कमलाकार पुद्गल स्कंध रूप है ही किन्तु भाव मन (क्रोधादि भाव) के चित्र खींचे जाने लगे है। अतः यह भी पुद्गल के अर्न्तगत है।

उक्त पाँचों एकेन्द्रिय (स्पर्शन व स्थावर) जीव हैं। इनमें डॉ. जगदीशचन्द्र वसु ने पेडों में अनेक प्रयोगो से जीव सिद्ध किया था। पेडो को काटने से दुःख का अनुभव होता है। वे सांस लेते है।यह सब जैन धर्म मानता है। शेष एकेन्द्रिय तो स्पष्ट रूप से सजीव एवं निर्जीव है। पहाड़ों की चट्टानों और खानों को बढ़ते अनुभव किया जा चुका है।

क्या पृथ्वी घूमती है?

जैन आगम बाइबिल, कुरान, वेद आदि में पृथ्वी को स्थिर और सूर्य आदि को भ्रमण करते हुए माना है। ज्योतिष और गणित के विकास का युग आने पर इस विषय में विभिन्न तर्क उपस्थित किये गये। इसी के फलस्वरूप पृथ्वी को चल और सूर्यादि को स्थिर मानने वाले आर्यभट्ट (सन् 476) आदि तथा पृथ्वी को स्थिर एव सूर्यादि को चर माने वाले वराहमिहिर (सन् 505) आदि गणितज्ञ हुए। इस विषय में जैन आचार्य विद्यानंद जी ने श्लोक वार्तिक अ.4 में भू-भ्रमण का निषेध किया है। दोनों ओर से अनेक युक्तियाँ दी गई है। हेनरी फाल्टर एवं एडगल ने पृथ्वी को चपटी सिद्धकिया है। मेकडोनल्ड ने पृथ्वी को थाली के आकार का माना (जैन धर्म ऐसा ही मानता है।) है, किन्तु लिखा है कि पृथ्वी घूमती है। पृथ्वी को गतिशील मानने से ध्रुव तारा एक जगह स्थिर नहीं रह सकता। सूर्य प्रतिदिन पूर्व से उदित होकर पश्चिम में अस्त होता रहे यह भू-भ्रमण से संभव नहीं। "वायुयान आदि वायुमंडल के साथ स्वाभाविक गति करते रहते हैं।" यह विचार भू-भ्रमणवादियों का समाधान योग्य नहीं है। वायुयान या पक्षी एक हजार प्रति घण्टा व 66000 मील प्रति मील की दैनिक व वार्षिक गति से पृथ्वी का साथ नहीं द सकते।

इस प्रकार भू-भ्रमण की सिद्धि नहीं हो पाती। जो हवाई जहाज तीव्र वेग से चल रहा है, उस पर हम लोग बैठकर हवा का प्रतिकूल दबाब अनुभव करते है। उसी तरह जो पृथ्वी अंनत आकाश में वायुयान की तरह स्वयं उड़ रही हो तो वैसा अनुभव क्यों नहीं होता? यदि हमें स्थिर रखने वाला न्यूटन का गुरूत्वाकर्षण होता तो भी वायु के वेग और खिंचाव अनुभव में अवश्य आना चाहिए। विज्ञान का मत है कि किसी भी एकात निर्णय को स्वीकार नहीं करता। सतत् अन्वेषण तो चलता ही रहता है। इस पृथ्वी की गति एवं स्थिरता के दो मत के समाधान हेतु वैज्ञानिक आइन्स्टीन ने अपना सापेक्ष दृष्टिकोण उपस्थित किया है। उनकी मान्यता है कि प्रकृति ऐसी है कि किसी भी ग्रह की वास्तविक गति किसी भी प्रयोग से निश्चित नहीं बताई जा सकती। सूर्य की अपेक्षा पृथ्वी भ्रमण करती है या पृथ्वी की अपेक्षा सूर्य चलता है, तीसरी बात गणित संबंधी कठिनाइयों को दूर कर सुविधाएँ प्राप्ति हेतु सूर्य के स्थिर एव पृथ्वी के चल की मान्यता है। प्राचीन व्यवस्था में पृथ्वी केन्द्र है ओर चन्द्र आदि अपनी-अपनी कक्ष पर घूमते हैं। पृथ्वी 1000 मील प्रति घण्टा से घुमती हुई 12 घण्टे के बाद पृथ्वी का एक भाग दूसरी ओर हो जावेगा अर्थात् 8000 मील पर बदल जायेगा। इस तरह 8000 मील की दूरी से हमे ध्रुवतारा जैसा का तैसा दिखलाई पडे यह संभव नहीं।

परमाणु

पुद्गल के सबसे छोटे अविभागी अंश को परमाणु कहते है। इसमें रूप (वर्ण) एक,गंध एक, रस एक और स्पर्श दो इस प्रकार 5 गुण पाये जाते है। स्पर्श दो मे स्निग्ध या रूक्ष में से एक एवं शीत या उष्म में कोई एक। जैन धर्मानुसार कोई भी परमाणु कालांतर में किसी भी परमाणु के सदृश विसदृश हो सकता है। यही विज्ञान भी मानने लगा है। एक समय में परमाणु की उत्कृष्ट गति लोकात (14 राजू) तक व अल्पतम आकाश के एक प्रदेश से पास के दूसरे प्रदेश पर पहुँचनें तक है। आकाश के प्रदेश पर स्थित परमाणु प्रदेश के समान है। आकाश प्रदेश में एक परमाणु भी रहता है और अनंत प्रदेशी स्कंध भी रह सकता है। यह परमाणुओं की व प्रदेश की शक्ति का प्रभाव है। वैज्ञानिक दृष्टि से ही स्थूल-स्थूल (पृथ्वी) स्थूल (जल-तेल) स्थूल सूक्ष्म (छाया-आतप) सूक्ष्म स्थूल (स्पर्श, रस, गध, शब्द) सूक्ष्म (मनो-कर्म) सूक्ष्म-सूक्ष्म (परमाणु) व स्कंधा पेक्षया द्विप्रदेशी स्कंधा यूनान के सर्वप्रथम वैज्ञानिक डेयोकेटस (ई.पू. 490) ने परमाणु पर प्रकाश डाला जबकि उससे पहले ही परमाणु पर जैनधर्म में परमाणु की मान्यता बनी हुई है। विज्ञान का

परमाणु कितना सूक्ष्म है, पचास शंख परमाणुओं का भार केवल ढाई तोला लगभग है, जिसका व्यास एक इंच का दस करोड़वॉं हिस्सा है। धूलि में एक छोटे कण में दस पद्म से अधिक परमाणु होते हैं। यह सब जैन धर्मानुसार स्कंध पर विवेचन है। आज इलेक्ट्रान सूक्ष्मतम कण माना जाता है। वह भी स्कंध है। दो से लेकर अनंत परमाणुओं के मिलने पर स्कंध होता है।

टेलीविजन

पुद्गल पर्याय के 10 भेदों में छाया भी है। विश्व के प्रत्येक मूर्त पदार्थ से प्रतिक्षण तदाकर प्रतिछाया निकलती है। वह आगे चारों और बढकर सारे विश्व में फैलती है जहां उससे प्रभावित पदार्थो का संयोग होता है, वहां यह प्रभावित होती है। यथादर्पण, तेल, जल आदि। इसी सिद्धात के आधार पर टेलीविजन का आविष्कार हुआ है। यह एक स्थान से बोलने वाले व्यक्ति का चित्र समुद्रों पार दूसरे स्थान में प्रगट होता है। जैसे रेडियों यंत्र गृहीत शब्दों को विद्युत प्रवाह से सहस्त्रों मील दूर प्रगट करता है, वैसे ही टीवी भी प्रसरणशील प्रतिछाया को ग्रहण कर उसे विशेष प्रयत्नों से प्रवाहित कर हजारों मील से प्रगट करता है।

अणुबम एवं उद्जनबम

पुद्गल का अर्थ है पूरणगलन। वैज्ञानिक खोज से जब पौद्गलिक शक्ति का चमत्कार दृष्टिगोचर होने लगा तो पूर्ण अर्थात् संयोग और गलन अर्थात् वियोग/हाइड्रोजन पूरण धर्म का उदाहरण है।इसमें चार परमाणुओ का संयोग होता है जिससे टेलियम परमाणु बनता है। इसकी जो शक्ति है वह हाइड्रोजन बम है। यूरेनियम के परमाणु समूह के वियोग (टूटना या गलन) से एटमबम बनता है। फ्यूजन एवं फीजन इन बमों के नाम से भी क्रमशः यही अर्थ निकलता है। अणु शक्ति का क्या प्रभाव है, इसे हम तेजोलेश्या के उदाहरण से भी जान सकते है। तेजोलेश्या (पौद्गलिक) प्राप्त करने वाले साधु की शारीरिक उष्मा प्रगट होकर बाहर के पुद्गलों को प्रकाशित कर देती है। यह एक रासायनिक प्रकिया है क्योंकि बेला (दो उपवास) हाथों को ऊपर कर सूर्य का ताप सहना, एक चुल्लू उष्ण जलपान, एक मुटठी उड़द छिलकों का भोजन, इसकी विधि है।

वर्तमान विज्ञान ने अलेक्ट्रॉन एवं प्रोटान ये दो अणु माने है। परमाणु को एक प्रदेशी और अणु को सूक्ष्म स्कंध माना है। प्रोटान स्निग्ध तथा अलेक्ट्रान सूक्ष्म है। समगुण वाले अणु हटते हैं और असमान वाले आकर्षित

होते है। समान याने 2–4–6–8–10 आदि और असमान वाले 3–5–7–9–11 आदि। यह नियम तत्वार्थसूत्र पंचम अध्याय के सूत्र "द्वयधिकादिगुणानाम्" से जान सकते है। स्निग्ध सूक्ष्म का, स्निग्ध स्निग्ध का, रूक्ष–रूक्ष का परस्पर बंध होता है। किन्तु दो अधिक का।

बंधमोक्ष

जैनधर्म के बंध और मोक्ष तत्व को हम रसायन शास्त्र द्वारा समझ सकते है। संसारी जीव और कर्म और नोकर्म पुद्गल, सोना, चाँदी, तांबा, पीतल धातुओं के मिश्रण से निर्मित अंगूठी, चूडी व हार के समान मिश्रित या सश्लेष रूप बने हुए हैं, जिन्हें पृथक् रासायनिक प्रकिया से किया जाता है।

उक्त प्रकिया दशलक्षण धर्म के संयम, तप, त्याग, आकिंचन्य और ब्रह्मचर्य अगों से जान सकते है। जिस प्रकार सराफा बाजार में धातु मिश्रित चूडी और अंगूठी (सुवर्ण की) जो सर्राफ जांचकर उसमें से शुद्ध सुवर्ण अलग कर देता है अर्थात् आग की भट्‌टी मे, भूसी में रखकर चर्म की धोंकनी से हवा देते है। वह हवा उस वस्तु पर केन्द्रित होती है और नीचे अग्नि प्रज्वलित होकर उसे द्रवित कर समस्त मिश्रित धातुओं से सुवर्ण को भिन्न कर देती हैं। उस सुवर्ण की ढाली बनाकर ग्राहक को दे दी जाती है। इस प्रकिया को कमशः सयम (वायु का एकत्रित होना) तप (उष्णता पैदा करना) त्याग (अन्य धातुओं का पृथक होना) आकिंचन्य (केवल सुवर्ण का रह जाना) ब्रह्मचर्य (शुद्ध पीत सुवर्ण का अपने स्वरूप में लीन होना) यही प्रकिया परध ातु–कर्मनोकर्मपुद्गल (शरीरादि) से आत्मा को पृथक कर ब्रह्मचर्य याने परमात्मत्व रूप शुद्धावस्था प्राप्त करने की विधि है।

जैनधर्म

जिसने अपने रागद्वेष काममोह आदि विकारों को जीत लिया है वह जिन कहलाता है। जिनको अपना देव मानने वाले जैन कहलाते है। उनके धर्म को जैनधर्म कहते हैं।

जो जिन बनते है वे हम प्राणियों में से ही बनते है। प्रत्येक जीवात्मा अपने पुरूषार्थ से परमात्मा बन सकता है। जिन ही जिनेन्द्र या जिनराज हैं, जिन्हें परमात्मा, परमेश्वर, या भगवान कहते है। यदि वे विश्व के समस्त प्रणियों के कल्याण की कामना करते है और तीर्थंकर नाम कर्म का बंधकर तीर्थंकर बनते है तो वे तीर्थंकर पर्याय में जन्म लेकर मुनि दीक्षा लेकर तपस्या द्वारा आत्मा में विद्यमान चार अनंत घाति कर्म को नाश कर अनंतज्ञान, दर्शन, सुख ओर वीर्य इन चार गुणों को प्राप्तकर अर्हंत केवलज्ञानी सर्वज्ञ वीतराग परमात्मा कहलाते है और समवसरण (धर्मसभा) द्वारा जीवो को धर्म का उपदेश देकर सन्मार्ग दिखलाते हैं अपनी आयु के अंत मे शेष अघाति कर्म आयु,नाम,गोत्र,वेदनीय इनका नाश कर सिद्ध (मुक्त) परमात्मा बन जाते है। ये सब जिनेन्द्र कहलाते है। जिन किसी व्यक्ति विशेष का नाम नहीं हैं। णमोकार मंत्र में भी किसी व्यक्ति का नाम नहीं है जैसा विष्णु से वैष्णव या शिव से शैव आदि धर्म प्रसिद्ध हैं।

जिन,सिद्ध,अर्हंत, आचार्य, उपाध्याय और सर्वसाधु में सबगुण वाचक है।इन नामों के अर्थ अनुसार जिनमें जो गुण है, उन्हें उसी से संबोधित किया जाता है और उनकी मान्यता होती है। जैनधर्म की विशेषता यह है कि वह आत्मा से परमात्मा बनने का धर्म है। इस धर्म के अनुसार संसार के समस्त चेतन अचेतन पदार्थ अनादि से उत्पाद,व्यय और ध्रौव्य स्वरूप है, कोई उनकों उत्पन्न करने या सुख–दुःख देने वाला ईश्वर नहीं है। इसका अभिप्राय यह नहीं है कि जैनधर्म नास्तिक है। नास्तिक है वह जो परमात्मा, जीव, पुण्य,पाप, स्वर्ग, नरक, जन्म, मरण नहीं मानता। किन्तु जैनधर्म इन सबको मानता है।

धर्म का स्वरूप रत्नत्रय (रयणत्तयंच धम्मो) अर्थात् सदृष्टि ज्ञान वृत्तानि धर्मं (रत्नकरण्ड श्रा.) सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र धर्म है। यही मोक्षमार्ग है।

जैनधर्म वैज्ञानिक धर्म है। यहां अंध श्रद्धा को स्थान नहीं है। इसके दर्शन का लक्ष्य यही है कि सर्वप्रथम यह जाने कि मैं कौन हूँ ? मेरा क्या स्वरूप हैं? यह संसार क्या है? मैं क्यों दुःखी हूँ? सुख क्या है? वह मुझे कैसे प्राप्त हो सकता है? इन सब प्रश्नों का उत्तर भलीभाँति जान कर अपने समीचीन लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए पुरूषार्थ करना यह जैनदर्शन का प्रयोजन है। वह प्रयोजन सम्यक् श्रद्धा, ज्ञान और चारित्र से सिद्ध हो सकता है। यह रत्नत्रय ही समस्त प्रश्नों का उत्तर है। इसके स्वरूप को जान लेने से सभी प्रश्न हल हो जाते हैं। इस समाधान से ही जैन धर्म के स्वरूप को भलीभाँति समझा जा सकता है। इसका विस्तार जीव–अजीव आश्रव बंध संवर निर्जरा और मोक्ष ये सात तत्व हैं। इन्हें जानना चाहिए? 'तत्वार्थसूत्र' जैनधर्म को जानने हेतु सर्वोत्तम ग्रंथ हैं।

जैन समाज

हमारा समाज भारतीय संस्कृति के प्रति पूर्ण आस्थावान है। हमारी मान्यता है कि इस संस्कृति के उदात्त तत्व संसार को वर्तमान संकट से रक्षा कर सकते हैं। वीतराग तीर्थंकरों और आचार्यो ने मनुष्य मात्र के कल्याण का मार्गदर्शन किया है। जिनके चरणों में बैठने वालों ने 'क्षेमं सर्व प्रजानां' लिखा, न कि किसी जाति या सम्प्रदाय विशेष को लेकर उपदेश दिया। जो क्षेत्रीय,जातीय, प्रांतीय विचारों से ऊपर होकर मनुष्य के लिए सोचते थे। जैन शब्द जाति परक नहीं है, किन्तु धर्म परक है। वीतराग जिनका अनुयायी जैन है। अहिंसा से वह सदा प्रेम करता आया है। युद्ध और हिंसा को उसने कभी नहीं चाहा। राष्ट्र की संस्कृति, मंदिर, कृषि, सतीत्व और सम्पत्ति और संपत्ति को नष्ट करने वाले आकान्ताओं को रोकने हेतु बलिदान देने को वे सदा तत्पर रहे है। अहिंसा विश्व धर्म है और संसार की श्रेष्ठतम संस्कृति है जहॉं विश्व के प्रत्येक त्रस स्थावर तक पर करूणाभाव है। ऐसा है यह समाज। भारत के सभी स्थानों में जैन बसे हुए हैं। उनकी कोई अलग वेशभूषा व अलग भाषा नहीं है। वे अपने चरित्र और आस्था के कारण व्यसन मुक्त है और ईमानदार हैं। शिक्षा, औद्योगिक, सामाजिक आदि क्षेत्रों में जनसंख्या के अनुपात की दृष्टि से जैनों का योगदान उल्लेखनीय है। इस बात को 'जैनसमाज का 'वृहद इतिहास जयपुर' प्रमाणित कर रहा है। इसी के प्राक्कथन रूप शुभाशीर्वाद में राष्ट्र संत परम पूज्य आचार्य श्री विद्यानन्द जी ने लिखा है कि–

'हडप्पा और मोहनजोदड़ो के उत्खनन से कायोत्सर्ग मुद्रा में जैन योगियों की सीलें उपलब्ध होने के कारण इतिहास यह स्वीकार करने लगे है कि सिन्धु सभ्यता के उत्कर्ष काल मे जैनधर्म विद्यमान था, जबकि वैदिकधर्म का भारत में प्रवेश भी नहीं हुआ था। सिंधुघाटी से दो देवताओं की मूर्तियॉं प्राप्त हुई थी, ऋषभदेव और शिव की। लिंगपुराण ऋषभदेव जी को शिव का अवतार कहता है, तो श्रीमद्भागवत–ऋषभ को जैनधर्म का प्रवर्तक बताता है। इन तथ्यों से ऋषभदेव भारत के आदि देवता हैं और जैनधर्म भारत का आदिधर्म है। अतः जैन ही भारत के मूल निवासी हैं। जैनधर्म का प्रचार–प्रसार गृहत्यागी जैनाचार्यों ने किया। वह अपने

गौरव के साथ आज भी विद्यमान है, जबकि बौद्धधर्म भारत में लुप्त प्रायः हो गया। जैन धर्म अहिंसात्मक आचार के कारण जैनों की प्रमुख पहचान है। जैन मूलतः भारतीय हैं। जो राष्ट्रीय आकाक्षायें हैं वे ही उनकी आकांक्षाएं है। जैनों की अपनी कोई पृथक् आकांक्षाएँ नहीं है। जैनों का दृष्टिकोण 'बहुजन हिताय' है। जैन समाज दानी समाज के रूप में प्रसिद्ध है। उसके दान से देश में अनेक सेवाभावी संस्थाएँ चल रही हैं। जैनों ने कभी अन्य धर्मो के धर्म स्थानों पर अधिकार नहीं किया। जैन समाज शाकाहारी समाज है। समाज में आर्थिक दृष्टि से सभी परिस्थिति के लोग हैं।

भारत में अन्य अल्प संख्यक धर्मोनुयायियों के समान जैन भी अल्प संख्यक श्रेणियों मे हैं अत· उनके पृथक धार्मिक आचरण और सिद्धांत आदि की दृष्टि से उन्हे अल्पसंख्यक दर्जा प्राप्त करने का न्यायोचित अधि ाकार हैं। इसे अवशिष्ट प्रांतीय सरकारों के साथ केन्द्र से भी प्राप्त करने हेतु प्रयत्न किया जा रहा है।

राजस्थान में मंत्री आदि अनेक ऊचे पदों पर सैकड़ों वर्षों तक अधिक जैनी ही रहे हैं। उन्होनें अहिसा धर्म को निभाते हुए वीरता के ऐसे अनेक कार्य किये हैं जिनसे इस देश की प्राचीनता की उत्तमता की रक्षा हुई। उन्होने देश की आपत्ति के समय महान सेवायें की।

(महामहोपाध्याय रा.व. गौरीशंकर हीराचंद ओझा)

जैनधर्म के सिद्धांत अहिंसावाद

प्राणीमात्र को जीवन प्रिय है। सब सुख चाहते हैं, दुःख से डरते हैं। किसी को मारना शारीरिक या मानसिक कष्ट पहुँचाना अनुचित है। मैत्री करुणा,सहयोग, आदि अहिंसा के अग हैं। विश्व का सर्वसम्मत लोक कल्याणक धर्म अहिंसा है। किसी ने प्रश्न किया–

जले जन्तुः स्थले जन्तुः आकाशे जन्तुरेव च।
जन्तु मालाकुले लोके कथं भिक्षुरहिंसकः।।

जल में जीव है, स्थल में जीव है और आकाश मे जीव है।संसार ही जीवो से व्याप्त है। ऐसी स्थिति में कोई भी साधु अहिंसक कैसे रह सकता है? प्रश्न महत्व का है। इसमें जीवों के प्राणनाश की दृष्टि है। इसका समाधान करते हुए वीतरागी साधु ने कहा–

अघ्नन्नपि भवेत्पापी निघ्नन्नपि न पापभाक्।
परिणाम विशेषेण यथा धीवर कर्षकौ।।

मछली मारने वाला धीवर प्रातः काल से सायंकाल तक नदी में जाल डालकर इसी प्रतीक्षा मे बैठा मछली फँसने का विचार करता रहता है। परन्तु उसके जाल मे एक भी मछली नहीं आती। उधर किसान, जो प्राण रक्षा निमित्त हल चलाता है, उसमें जीवो की हिंसा भी होती है। फिर भी वह हिसा का भागी नहीं होता, क्योकि उसके भाव जीवो को मारने के नहीं हैं। उसका उद्देश्य तो खेत मे बीज बोकर अपने और दूसरो की भूख शात करने के लिए अन्न पैदा करना है। उधर मछुवारा मछली मारकर उसका मांस खाने और खिलाने के लिए उसके भावो में हिसा व्याप्त है। अतः किसान हिंसा का भागी नहीं, किन्तु धीवर हिंसा रूप पाप का भागी है। हिंसा अहिसा मे भावो की ही प्रधानता है। कहा है–

परिणाममेव कारणमाहुः खलु पुण्य पापयोः प्राज्ञाः।
तस्मात् पापापचयः पुण्योपचयश्च सुविधेयः।।

बुद्धिमान पुरुषो ने भाव मात्र को पुण्य और पाप का कारण माना है। इसलिए पाप की हानि एवं पुण्य का संचय करना चाहिए। अपने विचार को शुभ रखने से पुण्य और अशुभ रखने से पाप कर्म का बंध होता है।

हिसां–अहिंसा का स्वरूप–

अप्रादुर्भावः खलु रागादीनां भवत्यहिंसेति।
तेषामेवोत्पत्तिर्हिंसेति जिन प्रवचनज्ञा।।

(पुरुषार्थ सिद्धयुपाय)

मन में रागद्वेष आदि भावों का न होना अहिंसा है और रागद्वेषादि भावों का होना हिंसा है। यही संक्षेप में जैनधर्म का सार है।

तत्त्वार्थसूत्र में भी यही बताया है:–

प्रमत्त योगात्प्राण व्यपरोपणं हिंसा

रागद्वेष रूप कषाय के वशीभूत होकर अपने या दूसरों के भाव या द्रव्य प्राणों का नाश करना हिंसा हैं। मन में रागद्वेष भाव पैदा होते है तो पहले अपने समताभावों का नाश होता है जो हिंसा का ही रूप है, फिर दूसरे का अहित चाहने पर उस की हिंसा हो या न हो, यह उसके पुण्य पाप पर निर्भर है अतः रागद्वेष भावों से हिंसा का भागी तो वह हो गया। यह हिंसा की भावना स्वयं करने कराने और अनुमोदना करने से बराबर पाप का भागी होता है।

हिंसा के 4 भेद है:–

1 संकल्पी 2 आरंभी 3. उद्योगी 4. विरोधी

1. संकल्पी–जानबूझ कर दो इन्द्रिय से पंचेन्द्रिय तक के प्राणियों की हिंसा–वध करना, शिकार करना, धनसंम्पत्ति हरण करने को मनुष्यों की हत्या करना।

2 आरम्भी–गृह संबंधी कार्यो,चलने फिरने, भोजन बनाने आदि कियाओं मे होने वाली हिंसा।

3 उधोगी–कुषि, व्यापार, धंधे, आदि में होने वाली हिंसा

4. विरोधी–अपने परिवार, धर्मायतन व राष्ट्र की रक्षार्थ युद्ध में होने वाली हिसा।

इनमे से गृहस्थ केवल संकल्पी हिंसा का त्यागी होता है।शेष तीन हिसा उसे मजबूरन करनी पड़ती हैं। इन्हे सावधानी से करना उसका कर्त्तव्य है।साधू तो उक्त सभी हिंसाओं का मन,वचन,काय, कृत,कारित, अनुमोदना से त्याग करते है। गृहस्थ संकल्पी को छोडकर अपने जीवन के निर्वाह एव रक्षा हेतु शेष तीन हिंसाओं का त्याग नहीं कर सकता।

श्री राम–लक्ष्मण को सीता की रक्षा हेतु युद्ध में शस्त्र ग्रहण कर लाखों प्राणियों की हिंसा करके अपने कर्त्तव्य का पालन करना पड़ा जो उचित था। यह भी ध्यान रखा जावे कि कायरता ओर कूरता दोनों हिंसा में गर्भित है। क्षमा करना वीरों का भूषण है, कायरों का नहीं।

अहिंसा का अभिप्राय यह है कि किसी को कष्ट न दिया जावे, किसी का हृदय नहीं दुखाया जावे, दुखी जनो का कष्ट दूर करें, भूखों को अन्न, प्यासों को पानी, रोगी को रोग मुक्त करें, अज्ञानी को ज्ञान प्रदान करें, परोपकार,दान, सेवा ये सब अहिंसा के अंग है। असहयोग (अहिंसक) आंदोलन या सत्याग्रह द्वारा ही सन् 1921 से 1947 तक केवल 26 वर्ष में महात्मा गॉधी ने भारत वर्ष की परतंत्रता को दूर करने मे सफलता प्राप्त की, यह अहिंसा की विजय का प्रत्यक्ष उदाहरण है।

वर्तमान में विश्व शांति का बहुत बडा प्रश्न है। क्या युद्ध से विश्व शांति संभव है? पूर्व इतिहास हमें बतलाता है कि पहले न्याय पूर्वक युद्ध होते थे दोनों पक्ष अपनी जय पराजय स्वीकार कर लेते थे। आजकल के वैज्ञानिक युद्धों में उचित अनुचित का कोई विचार नहीं किया जाता वर्तमान संहारक बमो से क्षणभर मे नगर के नगर वीरान हो सकते है। झूठ, जालसाजी, मिथ्या प्रचार की कोई सीमा नहीं। इसलिए ऐसे विनाशकारी युद्धों का रोकना अनिवार्य है।सर्वप्रथम सद्भाव और उदारता के साथ अपनी सीमा को न्यायपूर्वक समझना चाहिए। परस्पर विश्वास के साथ भय की आशंका को दूर कर देना आवश्यक है जो शक्ति सपन्न राष्ट्र है उन्हे मध्यस्थ बन कर दोनो ओर से होने वाली प्रच्छन्न युद्ध की तैयारियो को रोक देना चाहिए। उन्हें व्यापारिक लाभ हेतु शस्त्रास्त्र एव आर्थिक सहयोग नहीं दिया जावे।

भारत की जो निष्पक्ष नीति रही है उसका अनुकरण किया जावे। अविश्वास, अभिमान, शोषण, बेईमानी ये सब हिंसा के कार्य है। इन के रहते हुए युद्ध से शाति स्थापित होना असभव है। युद्ध के द्वारा शाति स्थापित नहीं हो सकती। शांति के लिए अहिसा को ही प्रमुख साधन मानने पर विश्व शांति हो सकेगी।

अनेकांत और स्याद्वाद

व्यावहारिक रूप :-

मानव जीवन की सफलता में अहिंसा का प्रमुख स्थान है। अहिंसा के आचार और विचार दो पक्ष है। एक शारीरिक धरातल पर जीव हिंसा से विरति और दूसरा बौद्धिक धरातल पर अनेकांत। बिना विचार के आचार अन्ध और आचार बिना विचार पंगु है।

अहिंसा का एकदेश साधक गृहस्थ है और सर्व देश साधक साधु है। गृहस्थ जीवन प्रवृत्ति प्रधान एवं साधु जीवन निवृति प्रधान है। निवृत्ति मार्ग निश्चय और प्रवृत्ति मार्ग व्यवहार है। नदी के दोनों तटो के समान गृहस्थ और साधु आत्म धर्म रूपी जल में अवगाहन करते हुए एक दूसरे पर निर्भर हैं। गृहस्थी रूपी गाड़ी के स्त्री और पुरूष दो चक्के हैं। दोनो में से एक न हो तो गृहस्थ जीवन नहीं चल सकता। सन्तानोत्पत्ति मे दोनो ही कारण हैं। अनेकांत के संबंध मे आचार्य प्रभाचंद्र ने 'अर्द्ध नारी–ईश्वर' का उदाहरण दिया है। एक ही शरीर के दो भागो मे एक ओर नारी (पार्वती) और दूसरी और ईश्वर (शिव) है। यह एक शरीर रूप मे अभेद और नारी एवं पुरूष दृष्टि से भेद है। दाम्पत्य जीवन भी इसी प्रकार है।

जैसे चौराहे पर खडा सिपाही अपने सकेतो से विभिन्न दिशा से गुजरने वाले यात्रियों को व वाहनो को परस्पर की टकराहट से बचाता है और सब को अपनी इच्छित दिशा मे सुरक्षित पहुँचने मे सहयोग प्रदान करता है। इसी तरह अनेकात विभिन्न विचारो के विरोध को दूर करता है। विभिन्न दृष्टि रूप अनेक वर्ण मणियो को अनेकात सूत्र मे पिरोकर एक रत्न हार बना सकते है।

जेण विणा लोग स्सवि ववहारो सव्वथा ण णिव्वडइए।
तस्स भुवणेक्कगूरुणो णमोऽणेगंत वायस्स।।

(सिद्धसेन – सन्मति तर्क 3/68)

जिसके बिना लोक का व्यवहार सर्वथा नहीं चल सकता उस भुवनैकगुरू अनेकातवाद को नमस्कार है।

समन्वय :-

सापेक्षनय समीचीन और नयवाद कहलाते है। अतः नैगमनय से नैयायिक य वैशेषिक, संग्रहनय से वेदांत व सांख्य, व्यवहारनय से

चार्वाक, ऋजुसूत्र से सौत्रांतिक, शब्दनय से शब्द ब्रहम व वैभाषिक, समभिरूड से योगाचार एवं भूत से माध्यमिक दर्शनों के साथ समन्वय होता है, जिसे हम अनेकांत नाम से कह सकते हैं।

मिथ्या समूहों मिथ्याचेन्न मिथ्यैकांतता ऽस्ति नः
निरपेक्षा नया मिथ्या, सापेक्षा वस्तु तेऽर्थकृत्।

अर्थ – कहा जाता है कि जब समस्त मत एकात होने से मिथ्या है, तो उनका समूह भी मिथ्या ही होगा। इसका समाधान आचार्य करते है कि हमारे यहां कोई भी मत मिथ्या एकात के रूप में नहीं है। जब वस्तु का एक धर्म दूसरे धर्म की अपेक्षा नहीं रखता तो वह मिथ्या कहा जाता है, किन्तु जब वह अपेक्षा रखता है तो वह सम्यक माना जाता है। वास्तव में वस्तु निरपेक्ष एकात नही है, जिसे सर्वथा एकातवादी मानते हैं। किन्तु सापेक्ष एकात है और सापेक्ष एकातो के समूह का नाम ही अनेकांत हैं।

परमागमस्य जीवं निषिद्ध जात्यंध सिंधुरविधानम्।
सकल नय विलसितानां विरोध मथनं नमाम्यनेकान्तम्।।

(आ.अमृतचद्र – पुरूषार्थ सिद्धयुपाय)

अर्थ – परमागम का प्राण,जन्माधो के हस्तिज्ञान का निषेध करने वाला, सपूर्णनयो के परस्पर विरोध की मथकर सत्य का नवनीत निकालने का मार्ग अनेकात है। उसे मैं (आचार्य) नमस्कार करता हूँ।

यहा एकात नयो को मथकर उनमे से सत्याश निकालने का मार्ग बतलाया है।

नोट– नयो का अर्थ मत,सप्रदाय, धर्म या दर्शन भी मान सकते है।

आक्सीजन प्राणपोषक है और हाइड्रोजन गैस प्राण नाशक है। ये दोनो विरोधी होकर भी जब सम्मिश्रण होता है तो जल जैसा जीवन उपयोगी तत्व बन जाता है।

जैसे एक ही हेतु, स्वपक्ष का साधक और परपक्ष का बाधक है, यह अनेकात का सूचक है।

विचार का क्षेत्र साफ होने पर ही आचार का क्षेत्र साफ होता है। यह पहले बताया जा चुका है कि विचार अनेकांत और आचार अहिंसा का अग है। दुनिया मे जितने भी संघर्ष और विवाद हुए है, उनमें प्रथम असहिष्णुता, असद्भाव और आग्रह रूप विचार होते है। इन मानसिक भावो का शारीरिक धरातल पर हिंसा, निर्दयता, अत्याचार आदि के रूप

में उपयोग होता है। मजहब संबंधी विवादों का कारण भी यही रहा है। यदि इसके विपरित विचारों में सहिष्णुता, सहअस्तित्व, समन्वय, सद्भाव आदि व विश्व मैत्री का भाव आ जावे तो शांति का मार्ग प्रशस्त होता है।

व्याख्या :-

अनेकांत में अनेक और अंत ये दो शब्द हैं। यहां अनेक से अनंत और अंत से गुण अर्थ लेकर अनंतगुणरूप वस्तु का अर्थ न लेते हुए दर्शन शास्त्र की दृष्टि से परस्पर विरोधी प्रतीत होने वाले दो या अधिक धर्मो का एक वस्तु में होना अनेकांत है। यह अर्थ लेना चाहिए। अंत शब्द का अर्थ धर्म (स्वभाव) है, गुण नहीं।

एक ही वस्तु में एक–अनेक, सत्–असत्, नित्य–अनित्य, और तत्–अतत् ये विरोधी धर्म पाये जाते हैं। ये विरोधी दिखते है। किन्तु इन्हें सापेक्षता से देखने पर ठीक सिद्ध होते हैं।

द्रव्य दृष्टि की अपेक्षा से वस्तु सत्, नित्य, एक और तत् है। वही वस्तु पर्याय दृष्टि की अपेक्षा से असत्, अनित्य,अनेक और अतत् है।

स्याद्वाद

वस्तु अनेकांतात्मक है उसके कथन करने की पद्धति स्याद्वाद है। अनेकात और स्याद्वाद में वाच्य वाचक या द्योत्य द्योतक सबध है।

वस्तु मे पाये जाने वाले धर्मो को एक शब्द द्वारा एक साथ नही कहा जा सकता।इसलिए प्रयोजनवश विवक्षित एक धर्म को मुख्य करके कहने पर दूसरे धर्म अविवक्षित और गौण हो जाते हैं। वे अविवक्षित धर्म भी वस्तु मे विद्यमान हैं। परन्तु वक्ता उन्हे अभी कहना नहीं चाहता। यह बताने के लिये जैनाचार्यो ने स्यात् शब्द जोडने को कहा है। वह शब्द स्यात् हैं। स्यात् यह निपात है यह कथचित् या अनेकात अर्थ का वाचक या द्योतक है। यह बताता है कि वस्तु अमुक निश्चित अपेक्षा से अमुक धर्म वाली है। वह न शायद, न सभावना और न कदाचित् का प्रतिपादक है। किन्तु सुनिश्चित दृष्टिकोण का वाचक है।

स्यात् अस् धातु का विधिलिग का रूप नही है। इसे अनेकात दर्शन मे निपात अव्यय माना गया है।

वाक्येस्वनेकांतद्योती, गम्यं प्रतिविशेषणम्।
स्यान्निपातोऽर्थ योगित्वात् तव केवलिनामपि।।

(आचार्य समंतभद्र आप्तमीमांसा श्लोक 103)

हे अर्हन्। आपके तथा श्रुतकेवलियों के वाक्यों में प्रयुक्त होने वाला

स्यात् निपात(अव्यय)शब्द अर्थ के साथ संबद्ध होने से अनेकांत का द्योतक और गम्य बोध्य (विवक्षित) का बोधक—सूचक (वाचक) माना गया है। अन्यथा अनेकांत अर्थ की प्रतिपत्ति नहीं बनती।

स्याद्वादः सर्वथैकांतत्यागात् किंवृत्त चिद्विधिः।
सप्तभंगनयापेक्षो हेयादेय विशेषकः ॥104॥

स्यात् शब्द सर्वथा एकांत का त्यागी होने से किं शब्द निष्पन्न चित्प्रकार के रूप में कथचित् कथंचन आदि का वाचक है। इसलिए

कथंचित् आदि शब्द स्याद्वाद के पर्याय नाम है। यह स्याद्वाद सप्तभंगो और नयों की अपेक्षा को लिए रहता तथा हेय आदेय का विशेषक (भेदक) होता है।

अन्य प्राचीन विद्वानों ने स्यात् शब्द के तात्पर्य को नहीं जानने के कारण स्याद् को शायद आदि विपरीत अर्थो मे लेकर स्याद्वाद को अनिश्चित और संशय रूप बताया, जो अनेकात व स्याद्वाद के प्रति उन्होने न्याय नहीं किया है। "स्याद् रूपवान घट" कहने पर अनेक धर्मो मे से रूप एक धर्म है। रूप की विवक्षा होने से यहां घट मे रूप मुख्य है। शेष रस आदि धर्म अविवक्षित हैं। अत. वे है अवश्य पर घट मे अभी रूप को वक्ता बताना चाहता है। रसादि भी है, इसलिए स्यात् शब्द जोडने से उनका अस्तित्व सिद्ध होता है।

'स्यादस्ति' कहने पर उस वस्तु को स्वरूप की अपेक्षा से सत् कहा जाता है। परन्तु स्यात् शब्द, पररूपापेक्षया नास्ति भी उसमे अविवक्षित या गौण रूप से विद्यमान है, यह बताता है।एव (ही)शब्द से एकांत और अपि (भी) शब्द से अनेकांत का बोध होता है। स्याद्वाद दोनो को ही अपने लिये ठीक बताता है। इसे प्रयोग द्वारा जाना जा सकता है। प्रत्येक वस्तु कथंचित् नित्य भी है ओर कथचित् अनित्य भी है। उसी प्रकार अपेक्षा लगाकर कहने पर प्रत्येक वस्तु द्रव्य की अपेक्षा नित्य ही है, और पर्याय की अपेक्षा अनित्य ही है। यह दोनों ही ठीक है।

जैनदर्शन मे एकात रूप में अनेकांत की मान्यता नहीं है। अनेकांत भी कथचित् एकांत और कथंचित् अनेकांत रूप है। एकांत ग्राही सापेक्ष नय की अपेक्षा स्यादेकांत और सर्वार्थग्राही प्रमाण की अपेक्षा स्यादनेकांत की सिद्धि होती है।

सप्तभंग

प्रत्येक वस्तु स्वरूप चतुष्टय (अपने द्रव्य क्षेत्र काल भाव)की अपेक्षा सत् और परचतुष्टय की अपेक्षा असत् है। यहां प्रथम विधिरूप और द्वितीय निषेध रूप वचन है। इसके सिवाय एक शब्द द्वारा दोनों विधि निषेध को एक साथ न कह सकने से अवक्तव्य यह तीसरा प्रकार है।

विधि निषेध और अवक्तव्य इन तीन के अपुनरूक्त विकल्प भंग सात हो सकते हैं। जैसे सौंठ, मिरच और पीपल इनमें प्रत्येक के तीन विकल्प, द्विसंयोगी तीन विकल्प और एक त्रिसंयोगी इस प्रकार 7 विकल्प होते है। सौंठ, मिरच, पीपल, सौंठमिरच, सौंठपीपल, मिरचपीपल, सौंठ मिरच पीपल। एक वस्तु में प्रश्न के वश में विरोध रहित विधि निषेध की कल्पना सप्तभंगी है। यह सात भंग इस प्रकार है। 1 विधि 2 प्रतिषेध 3 युगपत् विधिप्रतिषेध 4. कम से विधि प्रतिषेध 5. विधि और युगपत् विधि प्रतिषेध 6 प्रतिषेध और युगपत् विधिप्रतिषेध 7 विधिप्रतिषेध और युगपत विधिप्रतिषेध,

ये सप्तभग इसलिए हो सकते है कि एक धर्म को लेकर प्रश्न सात ही तरह के हैं। जिज्ञासा भी सात ही प्रकार की हो सकती है। संदेह भी सात ही हो सकते हैं।

अंत के तीन भंगो को परमतापेक्षया 'लघीयस्त्रय' (अकलंकदेव) श्लोक 33 मे बताया गया है। अद्वैतवाद का सन्मात्र तत्व अस्ति होकर अवक्तव्य है क्योकि सामान्य मे वचन प्रवृत्ति नहीं होती। बौद्धदर्शन का अन्यापोह नास्ति होकर अवक्तव्य रूप है, क्योंकि शब्द द्वारा अन्य का अपोह करने व वस्तु का ज्ञान नहीं होता। वैशेषिक दर्शनानुसार स्वतत्र सामान्य व विशेष शब्द का वाच्य नहीं बनता। सर्वथा भिन्न सामान्य व विशेष में शब्द प्रवृत्ति (अर्थकिया) नहीं होती।

प्रमाण और नय की अपेक्षा भंग :-

'स्यादस्त्येव जीवः' यह दोनो का उदाहरण है। यहां अस्ति शब्द से सारी वस्तु संपूर्ण रूप से पकड ली जावे, वह सकला देश प्रमाण है। जहां अस्ति के द्वारा अस्तित्व धर्म का मुख्य रूप से तथा शेष धर्मो का गौण रूप से प्रतिभास से हो वह विकला देश है।

यहां प्रश्न हो सकता है कि जब सकलादेश का प्रत्येक भंग संपूर्ण वस्तु का ग्रहण करता है तब सातों भंगो में परस्पर क्या भेद है? इसका

उत्तर यह है कि यद्यपि सभी धर्मो में पूर्ण वस्तु ग्रहण करने में आती है किन्तु स्यादस्ति भंग में पूर्ण वस्तु अस्तित्व के द्वारा ग्रहण करने में आती है और स्यान्नास्तित्व आदि से नास्तित्व आदि भंगों द्वारा ग्रहण करने में आती है। उनमें मुख्य गौण भाव इतना ही है कि जहां अस्ति शब्द का प्रयोग है, वहां केवल अस्ति की ही मुख्यता है, अन्यधर्म की नहीं। शेष धर्मो की गौणता भी इतनी ही है कि उनका उस समय शाब्दिक प्रयोग द्वारा कथन नहीं हुआ है।

भावार्थ–ये सातों ही भंग प्रमाण रूप ओर नय रूप दोनों होते है। एक धर्म के द्वारा समस्त वस्तु को अखड रूप से ग्रहण करना प्रमाण या सकलादेश है और उसी धर्म को मुख्य तथा शेष को गौण करने वाला नय या विकलादेश है।

प्रश्न – अनेकांत भी तो एकांत है, तो जो अनेकात मानते है, वे भी एकांती क्यों न माने जाये?

उत्तर– अनेकांत में भी सप्त भंगी घटित होती है।

यथा–स्यादेकांतः, स्यादनेकांतः, स्यादवक्तव्यः, स्यादुभय., स्यादेकांत अवक्तव्यः, स्यादनेकांत अवक्तव्य., स्यादेकांत अनेकांत अवक्तव्यः। प्रमाण और नय से यह व्यवस्था बनती है। यह इसी आलेख मे अत्यन्त स्पष्ट किया है।

एकांत दो प्रकार है–सम्यक् एकात और मिथ्या एकांत।

अनेकांत भी दो प्रकार के है–सम्यक् अनेकांत और मिथ्या अनेकांत।

प्रमाण द्वारा कथित वस्तु के एक देश को युक्ति पूर्वक बतलाने वाला सम्यक् एकात है। एक धर्म को सर्वथा लेकर अन्य धर्म का खंडन करने वाला मिथ्या एकांत है। एक वस्तु में युक्ति और आगम से अविरुद्ध अनेक विरोधी धर्मो को ग्रहण करने वाला सम्यक् अनेकांत है। वस्तु को सत् असत् आदि स्वभाव से शून्य मानकर उसमें अनेक धर्मो की मिथ्या कल्पना करने वाला मिथ्या अनेकात है।

इनमें से सम्यक् एकांत नय कहलाता है और सम्यक् अनेकांत प्रमाण है।

स्वयंभू स्तोत्र में आचार्य समंतभद्र कहते हैं-

अनेकांतो ऽप्यनेकांतः प्रमाण नय साधनः।
अनेकांतः प्रमाणात्ते तदेकांतोऽर्पिता न्नयात्।।103।।

अर्थ – भगवान आपके शासन मे प्रमाण और नय के द्वारा कथित अनेकांत भी अनेकांत है। अर्थात् वस्तु प्रमाण से अनेकांत रूप है और नय से एकांत रूप है।

अनेकांत व स्याद्वाद में भेद :-

एक वस्तु में विरोधी अविरोधी नाना धर्म की मान्यता अनेकात है। अनेकांत वस्तु मे समस्त धर्मो को समान रूप से बताता है। किन्तु स्याद्वाद वस्तु के एक धर्म का ही प्रधान रूप से बोध कराता है। स्याद्वाद वस्तु में नाना धर्मो के दृष्टि–भेदों को हमारे व्यवहार में आने योग्य बताता है। वह वस्तु हमारे उपयोग मे किस प्रकार आ सकती है, यह स्याद्वाद बताता है। यथा लघन उपयोगी भी है व अनुपयोगी भी है। यह अनेकांत वाद है किन्तु किसके लिये वह उपयोगी है, और वह किसके लिये अनुपयोगी है यह दृष्टि भेद स्याद्वाद बताता है। यह एक दृष्टि है जो स्याद्वाद को वाचक की अपेक्षा द्योतक बताती है। द्योतकाश्च निपाताः (आचार्य विद्यानन्दअष्टसहस्त्री) अर्थात् जो निपात (स्यात्) होते है, वे द्योतक होते हैं।

श्रोतव्यो सौगतो धर्मः, कर्तव्यः पुनरार्हतः
वैदिको व्यवहर्त्तव्यः, ध्यातव्यः, परमः शिवः

बौद्धधर्म श्रवण योग्य है, जैनधर्म करने योग्य है, वैदिक व्यवहार योग्य है और शैवधर्म ध्यान योग्य है यह धर्म समन्वय का महत्व है।

(आचार्य हरिभद्र)

उदधाविवसर्वसिंधवः, समुदीर्णास्त्वयि नाथ दृष्टयः
न च तासु भवान् प्रदृश्यते,
प्रविभक्तासु सरित्स्विवोदधिः

(द्वात्रिंशतिका)

संपूर्ण नदियॉ समुद्र में मिलती है। उसी प्रकार सर्व दृष्टियॉ (मत) अनेकांत रूपी परमेश्वर में मिलती है। पृथक्–पृथक् में अनेकांत (परमेश्वर) के दर्शन नहीं होते।

यस्य सर्वत्र समता नयेषुतनयेष्विव
तस्यानेकांत वादस्य क्व न्यूनाधिक शेमुखी

(अध्यात्मसार)

पिता का पुत्रो के समान अनेकांत–वाद का सभी नये रूप मतों में समान भाव है।

सर्वान्त-वत्तद्गुण मुख्य कल्प,

सर्वान्तशून्यंच ततोऽन पेक्षम्
सर्वापदामन्तकरं निरन्तं,
सर्वोदयं तीर्थ मिदं तवैव।।

(आचार्य समंतभद्र)

सर्वोदय तीर्थ, भगवान का तीर्थ है, जो सर्व आपात्तियों का निवारक है और अखंडनीय है

अनेकांत अन्य दर्शन में भी :-

1 चार्वाकदर्शन पृथ्वी,जल,वायु, अग्नि ये भूतचतुष्टय मिलते है तभी चैतन्य उत्पन्न होता है। इसमें अनेकांत का समर्थन होता है।

2 बौद्ध दर्शनः पक्षसत्व, सपक्ष सत्व एवं व्यावृतत्व यहां प्रथम दो में अन्वयात्मक एवं तृतीय व्यतिरेकात्मक यह त्रैरूप्य हेतु का लक्षण अनेकांत का समर्थक है। नील पीतादि विभिन्नाकार रूप ज्ञान–चित्र ज्ञान भी अनेकांत का उदाहरण है।

3. वैशेषिक· पृथ्वी नित्य और अनित्य दो प्रकार की है। परमाणु रूप पृथ्वी नित्य और कार्यलक्षण रूप पृथ्वी अनित्य है। इनका उनके मत में आध ।ार भिन्न होकर भी पार्थिव परमाणु समान होने से अनेकांत सिद्ध होता है।

4. सांख्य सत्व, रज, तम, इन तीन परस्पर विरूद्ध गुणों का समावेश एक ही प्रकृति में है।

5. मीमांसक प्रमाता प्रमिति प्रमेय इन तीनों की एकरूपता का ज्ञान एक माना जाता है यथा घटमहंजानामि। कुमारिल धर्म और धर्मी में भेदाभेद मानते है, तथा सामान्य और विशेष मे कथंचित् तादात्म्य मानते है। एक ही व्यक्ति जाति – व्यक्तिरूप है। यह भी अनेकांत की मान्यता है।

6 वेदांत अविद्या सत्भी नहीं, असत्भी नहीं, अनिर्वचनीय है (चतुर्थभंग–अवक्तव्य) 'तत्वमसि' यहा रामानुजाचार्य ने श्रुति वाक्य का समन्वय जीव का भेद व अभेद धर्म से माना है।

7 उपनिषद् कठोपनिषद् मे अणोरणीयान, ब्रह्म को माना है। श्वेताश्वतरोपनिषद् में ब्रहम में क्षरत्व–अक्षरत्व, वक्तव्य–अवक्तव्य है।

8. ऋग्वेद एकं सद् बहुधा वदन्ति (एक सत् नाना प्रकार है ऐसा विद्वान मानते हैं।)

9. भगवद् गीता नासतोविद्यतेभावः नाभावो विद्यतेसतः, (असत् सत् नहीं और सत् असत् नहीं होता।)

सामाजिक जीवन में अनेकांत

समस्त प्रणियों में मानव सर्वोत्तम विचारशील प्राणी है। जीवन और जगत का परिज्ञान और संसार दुःख निवृत्ति नहीं हुई है तो अगाध समुद्र मे गिरे हुए चिन्तामणि के समान फिर यह भव मिलना दुर्लभ है। मानव का इस प्रकार का चिन्तन ही भारतीय दर्शन का मूलाधार है। धार्मिक, राजनीतिक या सामाजिक सभी जीवन से संबंधित प्रवृत्तियों में दर्शन शब्द का प्रयोग होता है। दर्शन की विविध परिभाषाओं में यहाँ उसका प्रयोजन आस्थापूर्वक सत्य को जानने और प्राप्त करने का है, किन्तु सत्यान्वेषण और सत्य निरूपण की पद्धति सबकी भिन्न–भिन्न है। परस्पर एक–दूसरे का समांजस्य नहीं दिखता। उनका एक पक्षीय विचार समग्र सत्य का साक्षात्कार करने मे असमर्थ है। सम्पूर्ण सत्य के साक्षात्कार का उपाय अनेकान्त दर्शन प्रस्तुत करता है, जो सभी भिन्न–भिन्न विचारकों के विचारों का विरोध न कर उदारता के साथ अपेक्षा पूर्वक उन्हें मानता है।

यद्यपि मानव के भीतर मानवता विद्यमान है, पर वहीं दानवता भी काम कर रहीं है। मनुष्यता – इन्सानियत सिकुड़ रहीं है और शैतानियत व हैवानियत के प्रभाव से मनुष्य कोधी, दभी, लोभी और कामी हो रहा है। यही कारण है कि समाज में ही नहीं वरन् विश्वभर में अन्याय, अत्याचार और अभाव के दृश्य दिखाई दे रहे है। अनादि से हिंसा की लपटो से कोई व्यक्ति, समाज या देश अछूता नहीं रहा। परन्तु समय–समय पर भारतीय संस्कृति की श्रमण धारा ने मानव को इन दानवीय परिस्थतियों से बचाकर आदर्श पड़ोसी बनने की प्रेरणा दी है। तीर्थंकरों द्वारा उपदिष्ट अहिंसा का सदैव अन्याय पर, अनेकांत से, अज्ञान पर, भूतानुकंपा से, अत्याचार पर और अपरिग्रह से अभाव पर विजय प्राप्त करने का योगदान रहा है।

यद्यपि मुक्ति के लिए वैयक्तिक जीवन उपयोगी है, जिसे साधु स्वीकार करते है, परन्तु उस पद की साधना का प्राथमिक सोपान गृहस्थ या सामाजिक जीवन है। यह सत्य है कि समाज का घटक व्यक्ति है। व्यक्ति के बिना समाज का अस्तित्व नहीं। आत्म विकास या चरम ध्येय के लिए व्यक्ति–स्वातन्त्र्य श्रेयस्कर होते हुए भी समाजवादी विचारधारा का जन चेतना के समक्ष एक व्यापक दृष्टिकोण है। वह है सब के सुख में हमारा सुख और सब के दुःख में हमारा दुःख। सामाजिक जीवन में वैयक्तिक हितों

की अपेक्षा सामूहिक हित को अधिक महत्व प्राप्त है। गृहस्थ सामाजिक प्राणी है। गृह त्याग के पूर्व समाज के प्रति उसका उत्तरदायित्व है। यहाँ तक कि गृह त्यागी भी यह कहते देखे जाते हैं कि गृहस्थ हमें आहार देते है तो हमारा कर्त्तव्य है कि हम उन्हें उसका कई गुना चुकावें। यहाँ साधु का कर्त्तव्य है कि वह अपने अनुयायियों में अपने द्वारा कोई विरोध का वातावरण उत्पन्न न होने दे, जैसा कि पूर्व सघ भेद का इतिहास बताता है। अतः मुनि व गृही दोनों ही अपने व समाज के हितो में सामंजस्य स्थापित करें। युग का तकाजा है कि समाज में बिखरी हुई शक्तियों को केन्द्रित कर काम किया जावे। शक्ति का समुचित उपयोग समन्वय में है। केवल बुद्धि या तर्क, भिन्नता उत्पन्न करता है, किन्तु बौद्धिक विकास के साथ मानसिक विकास का समन्वय होने पर एकता की क्षमता उत्पन्न हो जाती है। सामाजिक जीवन में मैत्री (सौहार्द), प्रमोद (अनीर्ष्या), कारूण्य (सहानुभूति) और माध्यस्थ्य (सहिष्णुता—अनाग्रह) ये चारों समन्वय के मौलिक तत्व है।

व्यक्ति और समाज के बीच अन्योन्याश्रय संबंध है। एक—दूसरे के पूरक हैं। व्यक्ति—व्यक्ति के बीच बन्धुत्व होने पर समाज का धरातल स्वर्ग बन जाता है। समाज में विभिन्न वृत्तियों व विचारों का उन्मूलन नही किया जा सकता, केवल उनका मार्गान्तरीकरण हो सकता है। इसके लिए 'मार्जिन छोड़ो' की नीति व वैचारिक सहिष्णुता अनिवार्य हैं।

विश्व के किसी भी शक्तिशाली व्यक्ति की शक्ति नहीं है कि वह सभी प्रणियों की रूचि एक कर सके, सभी को एक मार्ग का अनुगामी बना सके। एक घर में भी पति—पत्नी और पिता—पुत्र की रूचि, खान—पान, रहन—सहन समान नहीं होते, पर वे समता भाव एवं सहिष्णुता के बल पर मिल—जुलकर अपने गृहस्थ जीवन का निर्वाह सुख शांतिपूर्वक करते हैं। गृहस्थी रूपी गाड़ी के स्त्री—पुरुष दो चक हैं। दोनों में से एक न हो, तो गृहस्थ जीवन नहीं चल सकता। सन्तानोत्पत्ति में दोनों ही कारण है। पति का दायित्व बाहर (अर्थोपार्जन आदि) और पत्नी का भीतर (भोजन,संतान पालन आदि) का दायित्व रहता है।

धर्म और उसके सिद्धांत त्रिकाल अबाधित है, पर सामाजिक परम्परा, पंथ, सम्प्रदाय और मान्यताएँ द्रव्य—कालानुसार परिवर्तनशील है। सामाजिक परम्परा या पंथ में धर्म हो सकता है, पर परम्परा धर्म पर हावी नहीं हो सकती।

रीति–रिवाज में 'गोमिल्ल गृह्यसूत्र' के अनुसार पुराने समय में विवाह में वृषभ की हिंसा कर उसके रक्त से भीगा वस्त्र वर–वधू को ओढ़ाया जाता था, परन्तु अहिंसक समाज ने उसमें संशोधन कर लाल रंग का कपड़ा विवाह में ओढ़ने का रिवाज चालू रखा। क्योंकि यह आज भी अनुराग और मंगल का सूचक माना जाता है। उत्सव या देवता बलि के समय मानव खोपड़ी (नरमुंड) लेकर वर चला करता था, परन्तु उसके स्थान में मांगलिक के रूप में उसी आकार का नारियल प्रचार के रूप में अहिंसा का प्रतीक है। इसी तरह क्रूरतापूर्ण हिंसा के रिवाजों में क्रांति कर उन्हें अहिंसा में बदल देने के अनेक काम श्रमण संस्कृति के अनुयायियों द्वारा किये गये हैं, यह उनकी अपूर्व देन है, किन्तु अहिंसक होकर वे भी आज पूर्ववत् अपना विवेक कायम नहीं रख कर अनेक कुरूढ़ियों में आबद्ध हैं। मृत्यु भोज, दहेज आदि इसके वर्तमान प्रत्यक्ष उदाहरण हैं।

समाज में सभी तरह के वादों–विचारों के मानने वाले विद्यमान हैं। पिता जनता पार्टी का है तो पुत्र कांग्रेसी। पति समाजवादी है तो पत्नी साम्यवादी। अग्रवाल जाति में जैन और हिन्दू सनातनी परिवार में परस्पर विवाह संबंध होते है। नव विवाहित वधू को रात्रि भोजन त्याग, देव दर्शन आदि नियमों के पालन में बाधा डाली जाती है। इन सब परिस्थितियों में सहअस्तित्व के लिए अनेकांतवाद का आश्रय ही हितकर है।

वर्तमान बदलते परिवेश मे समाज को सुदृढ़ बनाने के लिए बुजुर्ग या युवावर्ग में होने वाले वैचारिक संघर्ष को दूर करना वांछनीय है। बुजुर्गो का अनुभव और युवापीढ़ी की कियाशीलता दोनों का समन्वय और उनकी संगठित शक्ति से अनेक महत्वपूर्ण उपलब्धियाँ मिल सकती है। इससे अनुशासन व स्वस्थ समाज का निर्माण होगा। धर्म और समाज के प्रति युवा शक्ति की आस्था और अनुशासन बना रहेगा। समर्पण की भावना उत्पन्न होगी। अतः बुजुर्गो का कर्तव्य है कि युवकों को विश्वास में लेकर सामाजिक जिम्मेदारी सौंपे और उन्हे रचनात्मक कार्यों में सहयोगी बनावें।

युवक भी बुजुर्गो के अनुशासन में रहकर परिपक्व बनें। इस प्रकार दोनों के सह जीवन से बेरोजगारी, रीति–रिवाजों में व्यर्थ व्यय और अराजकता आदि समस्याएँ हल हो सकेंगी।

अनेकान्त या समन्वय के नाम पर एक आक्षेप यह है कि मांस–मदिरा ग्राह्य भी है, कुदेव, कुशास्त्र पूज्य भी है। उत्तर यह है कि ये वस्तु धर्म नहीं

है। जो वस्तुधर्म नहीं है, उनमें अनेकान्त घटित नहीं किया जाता। समन्वय सम्भावित धर्मों का होता है। स्याद्वाद स्वचतुष्टय से अस्ति और परचतुष्टय से नास्ति का वचन है। कल्पित असामान्यताओं में समझौता नहीं होता। घर में कोई सदस्य कोधी व व्यसनी है तो सुधारने का प्रयत्न करते हुए अन्य सदस्य सहिष्णु बनकर घर की एकता नष्ट न होने देने का ख्याल रख सकते हैं। परिवार में एक ही पुरूष को एक स्त्री पुत्र रूप में देखती हैं, दूसरी भाई रूप में, तीसरी पति रूप में मानती है। अनेकान्त या स्याद्वाद के आश्रय से उक्त सभी दृष्टियों (अपेक्षाओं) का सामंजस्य होकर लोक व्यवहार चलता है। अनेकान्त या स्याद्वाद परस्पर विभिन्न विचारों के विरोध को शमन कर शांति का पथ प्रशस्त करता है। विभिन्न दृष्टिरूप अनेक वर्ण वाली मणियाँ स्याद्वाद सूत्र में पिरोने पर अनेकान्त रूप रत्नहार बनकर शोभा देती हैं। नदियाँ समुद्र में मिलकर विभक्त से अविभक्त हो जाती है,उसी तरह विभिन्न दृष्टियाँ सापेक्ष होकर अनेकांत रूपी परमेश्वर में मिल जाती हैं।

एक ही मध्यप्रदेश, काश्मीर से दक्षिण में, बम्बई से पूर्व में, मैसूर से उत्तर में और कलकत्ता से पश्चिम में है। यहां एक ही प्रान्त को चारों दिशाओं की अपेक्षा भेद से कहने में कोई विरोध प्रतीत नहीं होता। जैसे गणित के अनुसार व्यवहार में सौंठ,मिर्च,पीपल ओर सफेद,लाल,पीला, इन तीनों से सात विकल्प होते हैं। स्याद्वाद की कथन शैली सप्तभंगी है।

समाज में सब मानव समान है।आर्थिक सम्पन्नता या विपन्नता मात्र से बड़े–छोटे,,ऊँच–नीच कैसे हो सकते है? आज अधिकतर समाज विपन्न है। सम्पन्नता चंद लोगों में बँटी है। अपरिग्रहवाद ओर अनेकांतवाद की मात्र चर्चा छोड़ लालसा और स्वार्थ की आहूति बिना दिये सामाजिक शांति संभव नहीं। इस मंहगाई की भीषणता में आवश्यकताओं को सीमित कर कहीं समानता के स्तर पर लाने का मानवीय प्रयत्न, वर्तमान में समन्वय, सहानुभूति, सहअस्तित्व का आदर्श उदाहरण होगा। सामजसेवी वही है जो सामाजिक मूल्यों को ख्याल रखकर अवमूल्यन न होने दे।

भारत धर्म प्रधान देश है। यहाँ मैं और विश्व तथा उनके परस्पर संबंध को लेकर चिन्तन और मनन चलता आ रहा है। यहाँ ऋषि और मुनियों ने ऐहिक चिन्ता से मुक्त होकर आत्मत्व की खोज में अपनी शक्ति लगाई है। सारा संसार इनकी धुरी पर ही चल रहा है। मनुष्य के दुःख दूर करने का मार्ग इसी तत्व को जान लेने में है। इसे जानकर ही दुःख दूर किया जा सकता है।

इस ससार में अनेक मत–मतान्तर हैं। धर्म के संबंध में अ
हैं, परन्तु दुःख से छुडाने वाला धर्म है, इसे सभी मानते हैं। प
गहराई में नहीं जाना चाहते हैं और निर्णय कर सकने में असमर्थ ह, ५
'महाजनो येन गतः स पन्था' जिस मार्ग से बड़े पुरूष गये वही मार्ग अनुसरण करने योग्य है। इस वाक्य के आधार पर चलते है। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष पुरूषार्थ में मोक्ष अन्तिम लक्ष्य है। यह आगम और तर्क दोनों द्वारा माना जाता है। आगम के साथ तर्क, जो दर्शनके अन्तर्गत है, सभी समस्याओं का समाधान करता है। अतः किसी भी ध्येय का सम्यग्ज्ञान और विश्वास पहले आवश्यक है।अत. ज्ञान भी आगम से होता है जिसकी प्रमाणता और प्रतिपादित तत्व को वीतरागता के आधार पर मानना चाहिए। आत्मा के स्वरूप और उसकी स्थिति को समझने के लिए सभी जगह दो नय या दृष्टि बताई गयी हैं। एक निश्चय और दूसरा व्यवहार।आत्मा, जो शरीर रूप मे दिखता है, उसे हम दो दृष्टि से जान सकते हैं। एक उसका बाह्म रूप, जो परिवर्तनशील है और दूसरा अन्तरग रूप, जो शाश्वत रहने वाला है।

व्यवहार का आधार सयोग है ओर निश्चय का आधार असंयोग है। यह शरीर सहित जीव,जिसके साथ हम शरीर, कर्म और राग–द्वेष लगे हुए देखते है, वे अनित्य हैं, जीव के स्वरूप नहीं है।शरीर के साथ इन्द्रिय और मन भी जीव से भिन्न हैं। चेतन स्वभाव जीव का है जो उसका वास्तविक (शुद्ध) रूप हैं।यह निश्चय नय का विषय है। शेष जीव सहित अन्य संयोगी अशुद्ध पदार्थ है, जो व्यवहार नय के विषय हैं। नय ज्ञान का सत्यांश है। इससे हम किसी भी वस्तु का कथन कर सकते है। प्रमाण ज्ञान से समस्त वस्तु ज्ञात हो सकती है, पर कथन में उसका एक–एक अश ही आएगा। यह सब सापेक्ष कथन सच्चा कहलाता है। निश्चय–व्यवहार का निरपेक्ष कथन मिथ्या कहलाता है। इस निरपेक्ष दृष्टि मे जो केवल व्यवहार को मानकर चलते हैं, उसे हितकर मानते हैं, वे मुक्ति मार्ग से दूर हैं। यह पर्याय दृष्टि कहलाती है जो हितकारी नहीं है। हम यही कथन उपनिषदों मे भी पाते हैं। वहां प्रेय और श्रेय दो मार्ग है। प्रेय लोकोन्नाति का मार्ग है और श्रेय परलोकोन्नति का मार्ग है। इनमें प्रथम अकल्याणकर है और द्वितीय कल्याणकर । इन्हें ही हम अविद्या और विद्या के नाम से कह सकते है। इनमें अपना उद्देश्य श्रेय होने पर प्रेय याने अविद्या को साधन बनाकर अपना हित किया जा

है। उ
स ता है। विद्या ब्रह्म या शुद्धात्मा है ओर उसकी प्राप्ति के साधन सदाचार आदि अविद्या है। निश्चय का विषय चेतन स्वरूप आत्मा है और उसके जानने व प्राप्ति के उपाय व्यवहार के विषय हैं। इन्हें हम भूमा और अल्पता शब्दों से कह सकते है। जैसा कि उपनिषदों में आया है। भूमा आत्मा (मैं) है। अल्पता जगत है। ध्येय आत्मा है, शेष उसके साधन हैं किन्तु दोनों का समन्वय (सापेक्षता) होना आवश्यक है। यह अध्यात्म दृष्टि अनेकान्त सिद्धान्त और उपनिषद दोनों की है।

जैनधर्म में परमात्मा

जैनधर्म ईश्वर को जगतकर्त्ता नहीं मानता। सब कुछ कर्म और स्वयं के पुरूषार्थ पर निर्भर है। विश्व अनंत जीवों, अनंतानंत पुद्गलों, धर्म–अधर्म द्रव्य, आकाश एवं काल द्रव्य के समूह को कहते है। यह सिद्ध है। इन छह द्रव्यो में प्रत्येक द्रव्य में अस्तिव, वस्तुत्व, द्रव्यत्व, अगुरूलघुत्व, प्रदेशवत्व और प्रमेयत्व ये सामान्य गुण पाये जाते हैं। अतः इन द्रव्यों में परिणामी नित्यपना स्वभाव से ही विद्यमान है। जैनदर्शन की यह विशेषता है। जबकि सांख्य को छोडकर अन्य दर्शन ईश्वर और जगत्कर्तृत्व की मान्यता के कारण प्रायः सब कुछ ईश्वराधीन मानते है। जैन दर्शन के अनुसार चेतना स्वरूप आत्मा ही परमात्मा है। यहीं आत्मा अनंत ज्ञान दर्शन सुख वीर्य का निधान है। यह एक नहीं संख्या मे अनंत है।

एषज्ञानघनो नित्य मात्मा सिद्धि मभीप्सुभिः।
साध्य साधक भावेन द्विधैकः समुपास्यताम्।।

(आचार्य अमृतचन्द्र समयसार कलश 15)

अर्थ – आत्मा ज्ञायक स्वभाव है, उसकी सिद्धि करने वालो के द्वारा स्वय उपास्य और स्वय उपासक भाव को प्राप्त होने से दो प्रकार का कहा जाने वाला, यह आत्मा अपने स्वरूप में एकत्व को लिए हुए है। अतः उस एक रूपता की उपासना करो।

यह एकरूप शुद्ध पारिणामिक भाव है। यही कारण परमात्मा है। यही परमशुद्ध निश्चय नय की दृष्टि से उपादेय या ध्येय है। सातवे और आगे 12वे गुण स्थान वाले मुनि इसी के ध्यान से घातिकर्म नाशकर केवली एव अरहत परमात्मा बनते है। यह द्रव्यशक्तिरूप से अविनश्वर है, सदाअहेतुक अनादि अनत ध्रुव हैं। सर्वपर्यायो में जाने वाला, किसी भी पर्याय रूप न रहने वाला त्रैकालिक एक है। सर्व विकल्पों को तोडकर निर्विकल्प निज पारिणामिक भाव मे उपयोग लगाने और उस उपयोग को स्थिरता का मूल है।

जीव के औपशमिक,क्षायिक, क्षायोपशमिक, औदयिक ये चार भाव कर्म निमित्तक है। पारिणामिक कर्म निरपेक्ष है। पारिणामिक में उक्त कथन परम परिणामिक के सबंध में है। किन्तु अशुद्ध पारिणामिक के अंतर्गत इन्द्रिय, बल, अत्यु, श्वासोच्छवास प्राण रूप जीवत्व, भव्यत्व एवं अभव्यत्व भाव भी है। चैतन्य रूप परम या शुद्ध पारिणामिक की दृष्टि मोक्ष का मार्ग है। क्षायिक भाव कर्मक्षय निमित्तक होने से अत्यंत निर्मल होकर भी वह पर्याय है।

इसके धारण करने वाले अरहंत सिद्ध परमात्मा कार्य परमात्मा कहलाते है जिनकी मंदिर में हम प्रतिमा के माध्यम से पूजा करते है। अरहंत परमात्मा समवसरण (धर्मसभा) में विराजमान होकर धर्मोपदेश देते है और आठ कर्मो से नष्टकर वे ही सिद्ध परमात्मा कहलाते है।

अरहंत परमात्मा चार अघाति कर्मो को नाशकर तेरहवे व चौदहवें गुणस्थान वर्ती कहलाते हैऔर शेष अघाति कर्मो के नाश होने पर लोक के अग्रभाग में विराजमान सिद्ध परमात्मा कहलाते है। वे अरहत सिद्ध परमात्मा आदि अनत है। परम (शुद्ध) पारिणामिकरूप कारण परमात्मा अनादि अनंत है।

आचार्य अमृतचद स्वामी के उक्त पन्द्रहवे पद्य का आशय भी यहीं है। वस्तु के अभेद एवं अतरंग की मुख्यता से या एक वस्तु की दृष्टि से होने वाला अभिप्राय निश्चय तप है। उसके अशुद्ध, एक देश व सर्वदेश शुद्ध तथा परमशुद्ध ये चार भेद है। व्यवहार के अनुपचरित सद्भूत, उपचरित सद्भूत, अनुपचरित असद्भूत, उपचरित असद्भूत ये चार भेद है। ये सब सच्चे ज्ञान के भेद है इन्हें हेय नहीं बनाकर अविवक्षित या अप्रयोजनीय निश्चय सापेक्ष कहा जाता है। इनमें निश्चय का जो चौथा परम शुद्ध है जिसे शुद्ध द्रव्यार्थिक या परमपारिणामिक कहते है वही कारण परमात्मा है।

जिउ परमात्थे जोइया, जियावह एम भयोइ।।

उक्त आचार्य योगीन्द्र देव के अनुसार पद्य का अर्थ–परमार्थ दृष्टि से यह जीव न उत्पन्न होता है, न मरता है, न बध करता है और न मोक्ष को करता है इस वचन से जिसके बध और मोक्ष दोनो नहीं है। यही भावना मुक्ति का कारण हैं अत इसे ही शुद्ध पारिणामिक ध्येय रूप कहते हैं। यह ध्यान भावना रूप नहीं है क्योकि ध्यान भावना पर्याय विनश्वर है, जबकि यह शुद्ध पारिणामिक द्रव्यरूप होने से अविनश्वर है।

द्रव्य 'गुणपर्ययवद्' होता है किन्तु यहा कथचित् पर्याय से द्रव्य को भिन्न मानना चाहिए। जगत्कर्त्ता ईश्वर की मान्यता वाले उसे सर्वव्यापक मानकर, उसे आराध्य बना कर ध्यान करने से मुक्ति की प्राप्ति बताते है। उसके स्थान पर जैन दृष्टि प्रत्येक आत्मा की पर्याय (दृष्टि) जो अभी अशुद्ध है उससे कथंचित् भिन्न द्रव्य(दृष्टि) रूपत्रिकाल शुद्ध स्वभाव से विद्यमान उक्त निज कारण परमात्मा को मानती है। इनमें प्रथम ध्याता और द्वितीय ध्येय है।

अध्यात्मवाद

मिथ्यात्व राग–द्वेष आदि जो समस्त विकल्प समूह हैं, उनका त्याग अपनी दृष्टि में होकर जो निज शुद्ध आत्मा में प्रवृत्ति है, वह अध्यात्म कहलाता है। अध्यात्मवादी दर्शन का महत्वपूर्ण सिद्धान्त यह है कि परमात्मा कहीं अन्यत्र नहीं है। प्रत्येक चेतन परमात्मा का रूप है। शरीर एक मंदिर है, जिसके भीतर आत्मबल से परमात्मा का निवास है। उसे बाहर खेजना भयकर भूल है। मानव जब दीन–दीन बनकर संसार के खोज में तू कहा भटक रहा है? वह सुख तेरे अन्दर है, किन्तु तुझे उसका परिज्ञान नहीं। इस देह रूपी गृह मे चिन्तामणि रत्नरूपी आत्मा छुपी है। क्षीरसागर में रहकर यदि कोई प्यासा रहता है तो इसमें क्षीरसागर का क्या दोष है? अनन्त सुख के आधारभूत आत्मतत्व को पाकर भी जिसका मिथ्यात्व दूर नहीं हो सकता और उसका अज्ञान दूर न हो सका, जिसमें जाग्रत होने की बुद्धि नहीं उस मोह मुग्ध आत्मा को कौन जगा सकता है? आत्मा के शुद्ध स्वरूप को जानने के लिए अन्तर मे विवेक की ज्योति जगाना होगी। बिना विवेक (भेद ज्ञान) के मात्र शारीरिक किया कांड का मूल्य एक शून्य बिन्दू से बढकर कुछ नहीं। जब मनुष्य के भीतर आत्मविज्ञान की निर्मलगगा बहती है, तभी उसका जीवन पावन बनता है।

सम्यग्दर्शन ज्ञान चरित्र इन तीनों का मिलकर मोक्षमार्ग है और दर्शन, ज्ञन और चरित्र आत्मा के निजगुण हैं। वे आत्मा के सिवाय अन्यत्र नहीं रहते। जो निजगुण होता है वह गुणों से पृथक नहीं रह सकता। दर्शन के साथ ही ज्ञान गुण की सत्ता भी आत्मा में त्रैकालिक है। जहा आत्मा है वहां चारित्र भी आत्मा का गुण विद्यमान रहता है।

अध्यात्मवाद द्वारा जीवन का वास्तविक रहस्य जाना जा सकता है। वही ज़ीवन का मूल्यांकन करता है कि जीवन क्या है? जगत् क्या है? उन दोनों का क्या सबंध है? जीवन जीने के लिए है, किन्तु पवित्रता से जीने के लिए है। यह पवित्रता उस आत्मा का धर्म है, जो प्रबुद्ध है। जिसे अपने शुभ–अशुभ तथा उपादेय हेय का सम्यक् परिज्ञान है। जो अपने हिताहित का विवेक रखता है, वहीं प्रबुद्ध चेतन है, वही जाग्रत जीवित आत्मा है और वही उन्नत जीव है।

वर्तमान भौतिक सभ्यता जीवन के उच्चतम मूल्यों की प्रतीक नहीं हो सकती। वर्तमान विज्ञान द्वारा निर्धारित मूल्य जीवन के संरक्षण में सहयोग प्रदान करने में सक्षम नहीं हो सकते। आज के मानव का विश्वास जीवन के

शाश्वत मूल्यो से उठ गया है, अत: जीवन मे विश्वास, विचार और आचार तीनो बदल गये हैं।

हम विज्ञान का दोष न मानकर आधुनिक भोगवादी प्रवृत्ति के कारण व पश्चिमी सभ्यता के प्रभाव से हमारी जीवन प्रणाली में जो पतनोन्मुखी परिवर्तन देख रहे हैं और अपने जीवन मे अनास्था, अनाचार और अशांति। हममें त्याग, प्रेम, विश्वास की भावना दृष्टिगोचर नहीं हो रही है। हम निराशा, सकीर्णता, अधविश्वास और ध्वसात्मक प्रवृत्ति के दलदल में फंस गये है। मनुष्य के पतन के इस गर्भ से निकालने के लिए आज प्रगतिशील एव रचनात्मक अध्यात्मवाद की आवश्यकता है। आज के मानव को वही धर्म एव दर्शन शांति और सतोष प्रदान कर सकता है जो आत्म ज्ञान से युक्त हो। जिसमे ससार के समस्त प्राणियों को समानभाव से देखने की क्षमता हो। वह आत्मा का धर्म हमारी संस्कृति का प्राणभूत तत्व है। वह हमारे अन्दर विद्यमान है। अपनी अध्यात्म शक्ति को अपने जीवन की भूमि पर उतारने का पुरुषार्थ हमे ही करना है। हमें अपने जीवन मे आत्मोद्धार स्वरूप की उपलब्धि के लिए निश्चयात्मक आत्म दृष्टि के साथ सच्चे देव, सच्चे शास्त्र और सच्चे गुरु को अपना पथ निर्देशक बनाना है। वे हमारी साधना के अवलबन, सहायक और प्रकाश स्तभ रहें। इस व्यवहार दृष्टि को भी हमे विस्मरण नहीं करना है। दोनो दृष्टियो मे समन्वय और सन्तुलन रखना हमारा कर्त्तव्य है।

यह हमें सदैव ध्यान रखना है कि जीवन का सर्वांगीण विकास अहिंसा की पीठिका पर होगा। मानव जीवन के निर्माण की दिशा और जीवन कला का संदेश हमें जैन अध्यात्म विचारधारा से प्राप्त होगा। जैन धर्म का जैन विशेषण भले ही हटा दिया जाए, परन्तु मनुष्य की प्रसुप्त आत्मा को जाग्रत करने और मगलमय आदर्श प्रस्तुत करने की क्षमता इसी धर्म में है।

मानवता और जीवन की समस्याओं को हल करने की प्रेरणा यही धर्म दे सकता है। आचार्य समंतभद्र के शब्दों में 'जैसे संसार की नदियों के बहाव का मार्ग चाहे अलग–अलग दिखता हो, परन्तु उन सबकी विश्रान्ति समुद्र में हैं।' अनेकांत दर्शन की यही विशेषता है कि वह समस्त दर्शनों के परस्पर विरोध को दूर करता हुआ समन्वय रूप है।

जैन धर्म वासनाओं, विकारों और बुराइयों पर विजय प्राप्त करने, उन्हें जीतने, उनका मुकाबला करने का संदेश देता है, वह हमें जिन या जिनेन्द्र की सार्थकता बताता है।

तेजाब, शोरा गंधक आदि के मिलने पर रासायनिक प्रकिया शुरू होती है। हल्दी और चूना मिलने पर लाल रंग बन जाता है। सुवर्ण, चांदी, पीतल तांबा आदि धातुओं को मिलाकर एक सोने की रकम तैयार हो जाती है। इसी तरह कर्मो का जीव के साथ मिलने से रासायनिक (केमिकल एक्सन) प्रकिया (बंध) आरंभ होती है। जीव के भावों की विविधता से ही विशाल वटवृक्ष के सदृश कार्य उत्पन्न हो जाता है। कोई प्राणी मनुष्य होता है, इस पर्याय के पूर्व पर्याय की मनोवृत्ति में मनुष्यवृत्ति के बीज विद्यमान होने से गृहीत कर्मवर्गणा मनुष्य संबंधी सामग्री को प्राप्त करा देती है। आत्मा और कर्मवर्गणाओं का समूह दोनों ही सूक्ष्म हैं। उस सूक्ष्म में अनंत प्रकार वैज्ञानिकों का के परिणमन की शक्ति है। जिस प्रकार अणु आकार की अपेक्षा लघु है, किन्तु उसमे हजारो विशाल बमों से अधिक कार्य करने की शक्ति है। इसी प्रकार इन्द्रिय अगोचर कर्मशक्ति अद्‌भुत कार्य दिखाती है। यह कर्म अनत शक्ति वाले आत्मा के अनत ज्ञान दर्शन आदि गुणो को ढाक कर अक्षर के अनतवे भाग तक बना देता है। इस कर्मशक्ति का ही प्रभाव है, जो पेड, लट, चींटी, मक्खी, भैंस, हाथी आदि का आकार–प्रकार प्राप्त होता है।

कर्म क्या है? जीव, पुद्‌गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल इन छ द्रव्यो में पुद्‌गल (अजीव) द्रव्य जो रूप, रस, गंध, स्पर्श सहित है उसके 23 प्रकारो मे कार्मण, आहार, तेजस, भाषा, और मन इन वर्गणाओ को जीव अपनी वैभाविक शक्ति सहित रागादि भावो के कारण आकर्षित करता है। इनमे प्रथम कार्मण वर्गणा और शेष चार नोकर्मवर्गणा कहलाती है। अनतानत परमाणु पुंज को वर्गणा कहते है। ये वर्गणा समस्त ससार मे व्याप्त हैं। जीव के रागादि भावो से इनका जीव के साथ सबध होता है, इसी को कर्म कहते है।जैसे पात्र विशेष में प्रविष्ट विविध रस वाले बीज, पुष्प, फल मदिरा रूप मे परिणमन करते हैं, उसी प्रकार योग (मन,वचन,काय) और कोधादि कषाय के कारण आत्मा मे स्थित कर्म वर्गणाये कर्म रूप में परिणत होती है। जैसे मेघ के अवलंबन से सूर्य किरणें इन्द्रधनुष रूप विभिन्न परिणमन करती हैं। यह अशुद्ध जीव का कर्मरूप पुद्‌गल के साथ अनादि से संबंध चला आ रहा है, जिससे जीव दु:खी–सुखी होकर ससार में भ्रमण कर रहा है। कार्मण वर्गणायें भी ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय, मोहनीय, आयु, नाम, गोत्र, अतराय आठ कर्मरूप परिणमन करती हैं। जैनधर्मानुसार जीव, पुद्‌गल, धर्म,

अधर्म, आकाश, काल इन छ.द्रव्यों में जीव और शेष अचेतन ये दो तत्व है। जीव और पुदगल ये दो परिस्पंदात्मक कियाशील हैं, शेष द्रव्य निष्किय हैं। उनमें प्रदेश संचलन (किया) नहीं होती। जीव पुद्गल में प्रदेशों के हलन–चलन रूप किया से ही परस्पर बंध होता है। लोहे को चुम्बक आकर्षित करता है, उसी प्रकार वैभाविक शक्तिवाला जीव अपनी अनादिकालीन संसारदशा में रागादि भावो से कार्मण वर्गणा ओर नोकर्म वर्गणाओं को आकर्षित करता है।

जीव के रागादि भावों का निमित्त पाकर कर्मरूप परिणमन योग्य पुद्गल–स्कंध कर्मभाव को प्राप्त होता है। यह जीव के रागादि का और कर्मो का परस्पर निमित्त नैमित्तिक भाव होने से सामान्य रूप से अनादि तथा विशेष रूप से सादि आश्रव बध होता रहता है। "सकषायत्वात् जीव कर्मणोयोग्यान् पुद्गलानादते स बंध" (तत्वार्थसूत्र अ. 8/2) जीव कषाय सहित होने से कर्मरूप होने योग्य पुद्गलो को (कार्मण वर्गणाओं को) ग्रहण करता है, उसे बध कहते हैं।

अन्य मत :-

कर्म विषयक अन्य मान्यताये भी हैं जैसे –

''जैसा बोओ वैसा काटो''

कर्मणा वध्यते जन्तुः, विद्यया तु प्रभुच्यते

प्राणी कर्म से बधता है और विद्या (ज्ञान) से छूटता है याने मोक्ष प्राप्त करता है।

(महाभारत शाति, 840–7)

तुलसी काया खेत है, मन-सा भयो किसान।
पाप पुण्य दोउ बीज है, बुवै सो लुनै निदान।।

वैशेषिक दर्शन आत्मा के गुणो में धर्म अधर्म याने पुण्य पाप को मानता है। ये दोनो उनके मत मे अमूर्तिक हैं। इत्यादि अनेक प्रमाण कर्म के सबध मे उपलब्ध हैं, परन्तु कर्म की किया आदि व्याकरण सबंधी विविध अर्थ। यथा "योग कर्मसु कौशल" व "सन्यास कर्मयोगश्च" (गीता) आदि के अतिरिक्त, जैसा पुद्गल रूप कार्मण वर्गणा द्वारा कर्म बधते हैं, यह कोई नहीं मानता। यह कर्म बध रासायनिक प्रकिया है, जैसे हम भोजन करते हैं और उसका रस, रक्त, मॉस, मेदा, अस्थि, मज्जा और शुक इन 7 धातुरूप कमशः परिणमन प्राकृतिक रूप से होता है। यही प्रकिया कर्म के सबंध में जानना चाहिए।

बंध का लक्षण कह चुके हैं। यह बंध चार प्रकार है:–

1. प्रकृति अर्थात् स्वभाव नीम का स्वभाव कडुवा और ईख का स्वभाव मीठा होता है। उसी तरह ज्ञानावरणादि कर्मों की प्रकृति ज्ञानदर्शन आदि आत्मगुणों को ढंकना है।

2 स्थिति अर्थात् आत्मा के साथ कर्मों के रहने की मर्यादा।

3. अनुभाग अर्थात् कर्मों की फल देने की शक्ति की हीनाधिकता।

4. बंधने वाले कर्मो की संख्या।

इन सब में प्रथम मैं नामों का कथन कहा है। चौथे बंध का भी इसके आगे है। शेष कर्मो की स्थिति व अनुभाग का वर्णन आत्मा के भावों के अनुसार कर्मशास्त्र में विस्तार से है।

कर्मद्रव्य जीव के भावो का निमित्त पाकर आठ कर्मरूप परिणमता है, उसका बंटवारा इस प्रकार है। आठ मूल प्रकृतियों में आयु का हिस्सा थोडा है। नाम गोत्र का समान किन्तु आयु से अधिक भाग है। अंतराय, दर्शनावरण, ज्ञानावरण तीनों का उससे अधिक किन्तु समान है। मोहनीय का उनसे अधिक भाग हैं। वेदनीय का मोह से अधिक भाग है। वेदनीय, सुख–दु:ख का कारण है, अत: निर्जरा भी अधिक होती है, इससे सर्वकर्मो से बहुत द्रव्य है। बाकी कर्मों का द्रव्य, स्थिति के अनुसार बंटवारा होता है।

प्रत्येक जीव की उदय मे आ रही आयु की स्थिति के तृतीय भाग में आगामी आयु का बंध होता है। प्रथम तृतीय में नहीं तो आठ बार तृतीय भाग मे बंध का अवसर मिलता है, यह मनुष्य तिर्यंच के लिए है। देव व नरक गति में छ: माह शेष रहने पर आगामी आयु का बंध होता है। कर्म की 10 अवस्थायें होती है:–

1.बंध	– आत्मा के साथ कर्म का एक क्षेत्रावगाह संबंध होना।
2.उदय	– कर्मफल देना।
3.उत्कर्षण	– कर्म की स्थिति अनुभाग बढ़ना।
4 अपकर्षण	– कर्म की स्थिति अनुभाग घटना।
5 उदीरणा	– कर्म को समय से पूर्व उदयावलि मे लाना।
6 संकमण	– कर्म का सजाति प्रकृति रुप बने होना।
7.सत्व	– कर्म का कर्मरुप बने रहना।

8.उपशम — कर्म का उदय मे न आना।

9.निधात्ति — कर्म का उदीरणा और सक्रमण न होना।

10.निकाचित — कर्म का उदीरणा, सकमण, उत्कर्षण, अपकर्षण न होना

उदय, सत्व, बंध, संक्रमण, उत्कर्षण, अपकर्षण, उदीरणा, उपशम, निधति, निकाचित। आयु को छोडकर सातों कर्म की वर्गणायें किसी भी शुभ या अशुभ परिणाम से एक साथ आती है और उनका विभाजन पूर्व दर्शित विधि से होता है। इनमें जो पृथक्–पृथक् (मोक्ष शास्त्र अ 6) कर्मों के आश्रव के कारण बताये हैं, उनमें उन विशिष्ट कारणों से स्थिति अनुभाग अधिक होता है।

अष्टकर्म के लक्षण :-

1. जो आत्मा के बाह्य पदार्थो को जानने की शक्ति के आवरण मे निमित्त हो, वह ज्ञानावरण है। यह ज्ञान गुण को घातता है।

2. जो आत्मा की सामान्य प्रतिभास रूप शक्ति के आवरण मे निमित्त हो वह दर्शनावरण है। यह आत्मा के दर्शन गुण को घातता है।

3 जो बाह्य आलबन सहित सुख–दुख के वेदन मे निमित्त हो, वह वेदनीय है।यह अव्याबाध गुण घातता है।

4 जो आत्मा के मोह (राग, द्वेष, मिथ्यात्व) के होने मे निमित्त हो वह मोहनीय है। यह सम्यक्त्व, चारित्र व सुख गुण को घातता है।

5. जो आत्मा के नारक आदि पर्याय में निमित्त हो वह आयु है। यह अवगाहन गुण को घातता है।

6 जो शरीरादि अवस्थाओं के धारण में निमित्त हो वह नामकर्म है। यह सूक्षत्म गुण को घातता है।

7 जो जीव के ऊँच नीच भाव के होने में निमित्त हो, वह गोत्र हैं। यह अगुरूलघुत्वगुण को घातता है।

8 जो जीव के दानादि भाव न होने में निमित्त हो, वह अंतराय है। यह वीर्यगुण को घातता है।

जैन भूगोल

वर्तमान वैज्ञानिको के अभिमत से वर्तमान पृथ्वी नारंगी के समान चपटी लगभग आठ हजार मील व्यास और पच्चीस हजार मील परिधि वाली है, जो करोडों वर्ष पूर्व अग्नि का गोला था पर अति धीरे–धीरे शांत हो गई है, परन्तु नीचे अभी भी तीव्रता से जल रही है। कभी–कभी यही ज्वाला,भूकंप के रूप मे यहाँ दृष्टिगोचर होती है। इस ज्वालामुखी के फूटने से बाहर पर्वत, गुफा व जल भाग मे परिणमन होता रहा है।

अग्नि ताप व दबाब किया शीतलता पाकर पाषाण, लोहा, स्वर्ण, रजत, कोयला आदि दिखाई देते है। जल के सिवाय वायुमंडल कई मील तक फैला हुआ है। यहाँ सबसे ऊँचा भाग हिमालय की एवरेस्ट करीब साढे पाँच मील उन्नत है। समुद्र की गहराई लगभग छह मील तक है। यहाँ जीवो की उत्पत्ति दो करोड वर्ष पूर्व तक मानी जाती है।

भारत का विस्तार लगभग दो हजार मील है। एशिया का दक्षिण पूर्वी भाग त्रिकोणाकार है। इस भूमडल के चारों और अनंत आकाश है। ऊपर आकाश मे इसी भूमि से चन्द्र सवा दो लाख मील ऊचाई पर है और सूर्य साढे नौ करोड मील की ऊचाई पर है। यह पृथ्वी से पन्द्रह लाख गुना बडा है। पृथ्वी,सूर्य की परिकमा एक वर्ष मे पूरा करती है। प्रकाश की गति एक करोड ग्यारह लाख साठ हजार मील है। सूर्य का प्रकाश पृथ्वी तक 8–9 मिनिट मे आ पाता है। असख्य तारे हैं।

जैन सिद्धात के अनुसार समस्त लोक पुरूषाकार है। कोई पुरूष कंधे पर हाथ रखे हुए खडा है। उसके पीछे 7 राजू विस्तार है। सामने पैरो पर 7 राजू, फिर ऊपर घटकर कमर पर एक राजू, फिर घट कर करीब छाती के पास 5 राजू, घट कर ग्रीवा के पास एक राजू है। लोक के ठीक मध्य मे ऊपर नीचे 14 राजू लम्बी एक राजू चौडी त्रस नाली है, इसके बीच मे मध्य लोक है। इसके नीचे सात नरक है। मध्य लोक के ऊपर उर्ध्वलोक है, उसमे आठ युगलो मे 16 स्वर्ग, फिर एक के ऊपर एक नव ग्रैवेयक, उसी के ऊपर समभाग में याने आठो दिशा व मध्य में 9 अनुदिश हैं। उसके ऊपर चार दिशा व मध्य मे 5 अनुत्तर हैं। इसके ऊपर छत्राकार सिद्धशिला है।

मध्यलोक के ठीक मध्य में सुमेरू पर्वत है। यह मेरू नीचे एक हजार

योजन गहरा, 99 हजार योजन ऊपर है। 40 योजन की चोटी अलग है। इस तरह मेरू एक लाख योजन का है।

मध्य लोक में असंख्यात द्वीप समुद हैं, जो चूडी के आकार उत्तरोत्तर एक दूसरे को घेरे हुऐ हैं। पहले द्वीप फिर चारों ओर समुद्र। जबूद्वीप मे छह पर्वत और सात क्षेत्र हैं। नीचे सात नरक हैं।

प्रथम अधोलोक भूमि रत्नप्रभा की मोटाई एक लाख अस्सी हजार योजन है। इसके तीन भागों मे प्रथम और द्वितीय मे भवनवासी और व्यतर देव अपने भवनों मे निवास करते हैं। तीसरे मे नारकी रहते हैं। इसी प्रकार शर्कराप्रभा, बालुकाप्रभा, पंकप्रभा, धूमप्रभा, तमप्रभा व महातमप्रभा नरको की भूमियॉ है। ये सभी नीचे–नीचे दूर–दूर हैं। इनका आधार धनोदधिवातबलय, घनवातबलय, तनुवातबलय इस प्रकार तीन वालबलयो से वेष्टित हैं।

देवो के भवनवासी, व्यतर और वैमानिक इन चारो भेदो मे से ज्योतिषी विमान यहॉ से 790 योजन ऊपर से 900 योजन ऊपर तक है। यह सब मध्यलोक में ही है। इस चित्रा पृथ्वी से 790 योजन ऊपर तारे है। तारों से दश योजन ऊपर सूर्य है।सूर्यो से ऊपर 80 योजन पर चन्द्र है। चन्द्र से चार योजन ऊपर नक्षत्र है नक्षत्र से चार योजन ऊपर बुध विमान है। बुध से तीन योजन ऊपर मंगल है। मगल से तीन योजन ऊपर शनि है। ऊपर पाच ग्रह के सिवाय तेरासी ग्रह और है।जिनमे राहु विमान का ध्वजादड सूर्य विमान से चार प्रमाणागुल नीचे है। अमावस को जो सूर्य ग्रहण होता है, उसका कारण इसका राहु (केतु)के नीचे आ जाने से है।

सुमेरू से 1121 योजन दूरी पर ये ज्योतिषी विमान उसके चारों और निरन्तर भ्रमण करते हैं। इनमें ज्योतिषी देव रहते हैं। जबूद्वीप मे 2 चन्द्र, लवण समुद्र मे 4, धातकी खड मे 12, कालोदधि समुद्र मे 42, और पुष्करार्ध में 72 चन्द्र हैं। इसी प्रकार सूर्य हैं। जैसे सूर्य ग्रहण होता हैं, उसी तरह चन्द्र के नीचे राहु विमान होने से पौर्णमासी को चन्द्र ग्रहण होता है। अढाई द्वीप से आगे चन्द्र सूर्य आदि ज्योतिष्क विमान हैं, परन्तु वे स्थिर हैं।

मेरू की चूलिका से ऊपर ऊर्ध्व लोक है। कल्प 16 होते है और कल्पातीत नव ग्रैवेयक, नव अनुदिश, पच अनुत्तर विमान हैं। 16 स्वर्ग मे दो–दो स्वर्गो की समान ऊॅचाई है। सौधर्म मे 32 लाख विमान हैं, जिनका स्वामी सौधर्मइन्द्र एकभवातारी है, जिसकी आयु दो सागरोपम है। उसके काल मे चार कोडा कोडी इन्द्राणियॉ उत्पन्न होकर मनुष्य भवधारण कर

मोक्ष चली जाती है। दूसरे ऐशान स्वर्ग में ढाई लाख विमान है जिनका इन्द्र ईशान है। सनतकुमार तृतीय स्वर्ग में बारह लाख और महेन्द्र में आठ लाख विमान हैं, जिनके स्वामी कमशः सनत कुमार व महेन्द्र इन्द्र हैं, इनमें सनत कुमार एक भवावतारी हैं।

पॉचवें छठे ब्रह्म ब्रह्मोत्तर स्वर्ग में 4 लाख विमान हैं। इन दोनों का एक इन्द्र ब्रह्म है। लांतव कापिष्ट में पचास हजार विमान हैं, जिनका स्वामी एक लातव इन्द्र हैं। इनमें ब्रह्म ओर लांतव एक भवावतारी हैं। यहीं ब्रह्म स्वर्ग की चारों दिशाओ ओर विदिशाओं में लोकांतिकदेवों के विमान हैं। ये लोकांतिक एकभवावतारी, ब्रह्मचारी और द्वादशांग ज्ञाता होते है। तीर्थंकरों के वैराग्य होने पर उनकी सराहना करने मध्यलोक में आया करते हैं। शुकमहाशुक में एक महाशुक इन्द्र हैं और चालीस हजार विमान हैं। शतारसहस्त्रार में छह हजार और आनतप्राणत में तथा 15–16वें स्वर्ग में सात सौ विमान और आनत प्राणत आरण अच्युत कमशः चार इन्द्र हैं। सोलह स्वर्गो में ही इन्द्र, सामानिक, त्रायस्त्रिशत् (मंत्री) पारिषद्, आत्मरक्ष, लोकपाल, अनीक (सेना), प्रकीर्णक (प्रजा), किल्बिक (हीनपुण्यदेव) इस तरह दश प्रकार की कल्पना होती है।

16 स्वर्गो के ऊपर अहमिन्द्र देव रहते हैं। नवग्रैवेयक तक द्रव्यलिगी मुनि जा सकते हैं। उनके ऊपर सम्यग्दृष्टि भावलिंगी मुनि ही जाते हैं।

मध्यलोक मे अतिम स्वयभूरमण द्वीप हैं और इसी नाम का समुद्र है। यहां पंचेन्द्रिय तिर्यंचो मे कोई चतुर्थगुण स्थानवर्ती और पंचम गुणास्थान वर्ती भी पाये जाते हैं।

अधोलोक के खर भाग पक भाग मे 7,7200000 अकृत्रिम जिन मदिर हैं। 84 लाख 97,023 विमानवासी (स्वर्ग) देवों के स्थान में तथा 458 मध्यलोक मे एव असख्यात चैत्यालय ज्योतिर्लोक मे हैं। तीन लोक के अकृत्रिम चैत्यालय 8,56,97,481 तथ अकृत्रिम प्रतिमायें 925,53,27948 है।

जैन ज्योतिष

ज्योतिषां सूर्यादिग्रहाणा बोधकं शास्त्रं, ज्योतिषशास्त्रं, सूर्यादिग्रह और काल का बोधकशास्त्र ज्योतिषशास्त्र है। ग्रह, नक्षत्र, धूमकेतू आदि ज्योतिः पदार्थों का स्वरूप, संचार, ग्रहण, स्थिति तथा नक्षत्रगति, स्थिति, संचारानुसार शुभाशुभफल का कथन जिसमें है वह ज्योतिष शास्त्र है। इसमें गणित और फलित दोनों प्रकार की विद्या का समन्वय है। पूर्व मध्यकाल में सिद्धांत, संहिता ओर होरा के रूप में ज्योतिष था, परन्तु वर्तमान में होरा, गणित, संहिता, प्रश्न, निमित्त यह पंच स्कंधात्मक हो गई, इसे जातक शास्त्र कहते हैं।

नोटः– अहोरात्र में अ और त्र का लोप होकर होरा बना है। जन्म कुंडली के द्वादश भावों के फल उसमें स्थित ग्रहों की अपेक्षा तथा दृष्टि रखने वाले ग्रहों के अनुसार प्रतिपादित किए जाते हैं। जातक के सुख–दुःख, दृष्ट, अदृष्ट, उन्नति, अवनति भाग्योदय का वर्णन, इससे किया जा सकता है।

यह शरीरचक्र ही ग्रह का कक्षावृत्त है, इसमें मस्तक, मुख, वक्षस्थल, हृदय, उदर, कटि, कक्षा, लिंग, जघा, घुटना, पिंडली, पैर ये द्वादशभाग कमशः मेष, वृष, मिथुन, कर्क, सिंह, कन्या, तुला, वृश्चिक, धनु, मकर, कुभ, और मीन है। इन बारह नक्षत्रों में भ्रमण करने वाले ग्रहों में आत्मा रवि, मन–चन्द्र, धैर्य मंगल, वाणी बुध, विवेक गुरू, वीर्य शुक, संवेदन शनि है। इस शरीर स्थित सौर चक का भ्रमण आकाश स्थित सौर मण्डल के नियमों के आधार पर होता है। ज्योतिषशास्त्र व्यक्त सौर जगत के ग्रहों की गति, स्थिति आदि के अनुसार अव्यक्त शरीर स्थित सौर जगत के ग्रहों की गति आदि को प्रकट करता है। अतः इस शास्त्र द्वारा कथितफलों का मानव जीवन से संबंध है।

जो कुछ यह है वह तो मात्र सूचक है, कारक नहीं। प्राचीन भारतीय आचार्यो ने अपने दिव्य ज्ञान से, प्रयोगशालाओं के अभाव में भी अभ्यन्तर सौर जगत का पूर्ण दर्शन कर आकाश मण्डलीय सौर जगत के नियम निर्धारित किए थे। उन्होने अपने शरीर स्थित सूर्य की गति से आकाशीय सूर्य गति निश्चित की थी। इसी कारण ज्योतिष के फलाफल का कथन, विज्ञान सम्मत माना जाता है।

दर्शन के समान ज्योतिष में आत्मसाक्षात्कार का गणित के प्रतीकों द्वारा जोर दिया है। उत्कृष्ट आत्मज्ञानी ज्योतिष के रहस्य से अनभिज्ञ नहीं

रहता। भारतीय ज्योतिष के व्यावहारिक एवं पारमार्थिक दोनों लक्ष्य रहते हैं।

1. भारतीय जैन–ज्योतिष में ग्रह फलाफल के नियामक नहीं है, किन्तु सूचक है। ग्रह किसी को सुख–दुःख नहीं देते किन्तु आने वाले सुख–दुःख की सूचना देते हैं।ग्रहों की राशियों का प्रभाव विपरीत वातावरण के होने पर अन्यथा भी किया जा सकता है। जैसे अग्नि का स्वभाव जलाने का है पर सूर्यकांत मणि के पास रखने पर अग्नि का प्रभाव क्षीण हो जाता है। मनुष्य अपने पूर्वोपार्जित अदृष्ट के साथ–साथ वर्तमान में जो अच्छे बुरे कार्य कर रहा है, उनका प्रभाव उसके पूर्वोपार्जित अदृष्ट पर पड़ता है। पूर्वोपार्जित कार्यों की स्थिति और उनकी शक्ति को इस जन्म के कार्यो द्वारा सुधारा भी जा सकता है।

ज्योतिष का प्रधान उपयोग यह है कि अपने भावी सुख–दुःख आदि को जानकर पहले से सजग रहना चाहिए। यदि ग्रहों का फल अनिवार्य रूप से भोगना निश्चित माना जावे तो पुरूषार्थ व्यर्थ होकर आत्मा को मुक्ति कभी हो ही नहीं सकेगी।

ज्योतिष के द्वारा व्यवहार के लिए उपयोगी वर्षा, ऋतु, मास पक्ष दिन के शुभाशुभ का ज्ञान होता है। जिससे अपने कार्य शुभमुहूर्त मे सपन्न कर सकते हैं। धार्मिक उत्सव दीपावली, रक्षाबंधन आदि और सामाजिक त्यौहार, महापुरूषों के जन्मदिन, व्रतविधि आदि का ज्ञान ज्योतिष के आधार पर भली भाँति हो जाता है जैसे भ.महावीर निर्वाण 15 अक्टुबर ई.पू. 527 निकाला गया। अहिंसा प्रधान श्रमण संस्कृति में आत्मशोधन एवं जीवन में प्रगति और प्ररेणा प्राप्त करने के लिए व्रत की साधना आवश्यक मानी गयी है। व्रतों की तिथि एव विधि विधान जैनाचार्यो ने शास्त्रों में जैसे बताया हैं तदनुसार ज्योतिष का ज्ञान होने पर ही संभव है, अतः पंचांगों से जैन व्रत तिथि आदि की भिन्नता के नियम हमे आचार्यों द्वारा प्रतिपादित देखना चाहिए ताकि ठीक निर्णय किया जा सके।

1. जैनागम में व्रत तिथि सूर्य के उदयकाल में छः घटी प्रमाण होने पर मानी जाती है, जबकि पंचांगों में कितनी भी घटी हो उसे वह तिथि मान लेते हैं। जैन दृष्टि से उदय तिथि के न मिलने पर अस्तकालीन तिथि ग्रहण की जाती है।

2 तिथि वृद्धि होने पर याने एक ही नाम की दो तिथि आने पर प्रथम तिथि मानी जाती है।

3. तिथिक्षय पंचांग होने पर वह छ:घडी व उससे ज्यादा होने से उसे क्षय न मानकर उसके पूर्व की तिथि क्षय मानी जाती है। यही जैन तिथि दर्पण में जैनागम के अनुसार प्रकाशित किया जाता है।

4. व्रत करना हो तो क्षय तिथि में व्रत न कर पूर्व तिथि में करना चाहिए।

5. दसलक्षण, अष्टह्निका और सोलहकारण व्रत के दिनों में तिथि क्षय हो तो एक दिन पहले व्रत प्रारंभ किया जाता है।

तिथिवृद्धिर्यत्रपर्वे तस्यामुक्तं व्रतह्नितत्।
तत्पूर्वस्यां तिथौ कुर्यादुत्तरस्यां तिथौ नहि।। (व्रतनिर्णय)
त्रिमुहूर्तेषु यत्रार्क उदेत्यस्तं समेति च।
सातिथिः सकलाज्ञेया उपवासादि कर्मणि।।
पूज्यपादस्य शिष्यैश्च कथितं षट्घटीप्रमम्।
व्याप्तं सकलसंघेषु पारम्पर्यसमागतम्।।
मूलसंघे घटिकाषट्कं व्रतं स्याच्छुद्धिकारणम्।।
सोदयम् दिवसंव्याप्तं कुलाद्रिघटिकाप्रमम्।।

(पद्मदेव—व्रत विधान)

ज्योतिष के अनुसार किसी बीमार की कुण्डली में पापग्रह हो और उनका फल प्रमुख बीमारी है। यह ज्ञात होने पर उसकी शांति, पूजा एव जप से होती हुई देखी जाती है।अतः जैन पूजा विधान, जो जैन साहित्य में उपलब्ध है, उसका उपयोग कर अरिष्ट निवारण किया जा सकता है। इससे इतर धर्म की मान्यता की अपेक्षा अपने ही तीर्थंकरों की पूजा व णमोकार मंत्र के जप से लाभ उठाने के लिए ज्योतिष शास्त्र का ज्ञान उपयोगी है।

ज्योतिष विषय यद्यपि संप्रदायातीत है, किन्तु इसके प्रामाणिक और मौलिक ग्रंथ सूर्य प्रज्ञप्ति एवं चन्द्रप्रज्ञप्ति जैन रचनाएं, जिनकी भाषा प्राकृत और मलयगिरिसूरि की संस्कृत टीकायें उपलब्ध हैं। दुर्गदेव दि. जैनाचार्य 1023 ई. सन् में ज्योतिषशास्त्र के मर्मज्ञ हुए हैं, जिनका 'रिष्ट समुच्चय' हमने श्री फूलचंद गोधा ग्रंथमाला से प्रथम ही प्रकाशित किया था। यह शोर सैनी प्राकृत में है। इसमें बाह्य और आतरिक शुकुनों द्वारा भावी मृत्यु का निश्चय बताया है। इसी प्रकार उदयप्रभदेव, मल्लिषेण, नरचन्द्र, अर्हदास, महेन्द्रसूरि आदि अनेक ज्योतिष विषय के लेखक विद्वान हुए हैं।

1 मेष — चु चे चो ला ली लू ले लो आ

2.	वृष	–	इ उ ए ओ वा वी वू वे वो
3.	मिथुन	–	का की कुं घ ङ. छ के की ह
4	कर्क	–	हि हू हे हो डा डी डू डे डो
5.	सिंह	–	मा मी मू मे मो टा टी टु हे
6.	कन्या	–	टो पा पी पू ष ण ठ पे पो
7.	तुला	–	रा री रू रे रो ता ति तू ते
8.	वृश्चिक	–	तो ना नी नू ने नो या यी यू
9.	धनु	–	ये यो भा भी भू धा फा ढा भे
10.	मकर	–	भो जा जी ख खी खु खे खो गा गी
11	कुंभ	–	गू गे गो सा सि सू शे शो दा
12	मीन	–	दी दू थ फ ञ दे दो चा ची

उक्त कर्क, सिंह, कन्या, तुला, वृश्चिक, धनु इन राशियों पर सूर्य का भ्रमणकाल छहमास का दक्षिणायन और शेष मकर से मिथुन तक छह राशि के सूर्य भ्रमणकाल को उत्तरायण कहते है। जिनेन्द्र प्रतिमा प्रतिष्ठा का शुभ कार्य उत्तरायण मे ही होता है।

1–6–11 तिथि को नंदा, 2–7–12 को भद्रा, 3–8–13 को जया, 4–9–14 को रिक्ता और 5–10–15 को पूर्णा तिथि कहते है। इनमें पूर्णा में सभी मगल कार्य सिद्ध होते हैं। अमावस्या रिक्ता शुभ नहीं हैं, किन्तु अमृत सिद्धि, सर्वार्थ सिद्धि आदि योगों के होने पर ग्राह्य है। रविवार व मंगलवार भी अशुभ है, परन्तु शुभयोगों में ग्रहण किए जाते है।

अश्विनी, भरणी, कृत्तिका, रोहिणी, मृगशीर्ष, आर्द्रा, पुनर्वसु, पुष्य, आश्लेषा, मघा, पूर्वा–उत्तराफाल्गुनी, हस्त, चित्रा, स्वाति, विशाखा, अनुराधा, ज्येष्ठा, मूल, पूर्वा–उत्तराषाढ़ा, अभिजित्, श्रवण, शतभिष, पूर्वा–उत्तराभाद्रपद, रेवती। ये नक्षत्र हैं।

धनिष्ठा उत्तरार्द्ध, शतभिषा, पूर्वा–उत्तरा भाद्रपद, रेवती ये नक्षत्र–पंचक कहलाते हैं। इनमें स्तंभगाड़ना, दक्षिणयात्रा,खाट बुनना, शवदाह वर्जित है, शेष कार्य कर सकते है।

पंचांग में गुरू–शुक अस्त, क्षयमास,मलमास इनमें शुभकार्य नहीं होते हैं। विंबप्रतिष्ठा (जिनदेव) उत्तरयण सूर्य में और कृष्णपक्ष पंचमी तक व

शुक्ल पक्ष में होती है। चौघडिया प्रातः 6 बजे से 6 तक प्रत्येक डेढ़–डेढ़ घंटे कम होता है, उसमें उद्वेग, काल, रोग, अशुभ, और शेष चर,लाभ, अमृत, शुभ हैं। इसी प्रकार रात्रि 6 बजे से 6 तक के सभी चौघडिये मिला लेना चाहिए।

सूर्य में खात चक्र

	विवाह	मंदिर	गृह	जलाशय
आग्नेय	2–34	12–1–2	5–6–7	10–11–12
नैऋत्य	11–12–1	9–10–11	2–3–4	7–8–9
वायव्य	8–9–10	6–7–8	11–12–1	4–5–6
ईशान	5–6–7	3–4–5	8–9–10	1–2–3

उदयकाल में जो तिथि छहघडी रहती है, वह जैनतिथि व्रतादि मानी जाती है। मृत्यु योग के निसिद्ध कार्य निम्न प्रकार हैं, कृत्तिका

तिथि 2–7–12 को पू.भाद्र, उ. भाद्र, पू.फा,उ फा

तिथि 3–8–13 को मृगशिर, श्रवण, पुष्य, अश्विनी, भरणी, ज्येष्ठा

तिथि 4–9–14 को पूर्वाषाढ़ा उत्तराषाढा, विशाखा, अनुराधा, पुनर्वसु, मघा,

तिथि 5–10–15 को हस्त, धनिष्ठा, रोहिणी।

गृहारभ प्रवेश वैशाख, श्रावण, मगसिर, पौष और फाल्गुन मे करे अन्य माह मे नहीं। यदि चैत्र मे मेष, ज्येष्ठ में वृषभ, आषाढ मे कर्क, भादो मे सिह, आश्विन में तुला, कार्तिक मे वृश्चिक, पौष में मकर और माघ मे मकर–कुभ राशि का सूर्य हो तो गृहारभ मान्य है।

चित्रा, अनुराधा, उ फा., उ.षा.उ.भा. रेवती, मृगशिर, रोहिणी नक्षत्र ये श्रेष्ठ है। चन्द्र,बुध, गुरू, शुक्र, शनि, इन वारो में तथा 2,3,7,10,11,13 इन तिथियो मे गृहारभ उत्तम है।

नोट– शेष पंचांग आदि से जानना चाहिए।

जैनगणित

गणित विद्या को अंक विद्या भी कहते हैं। इसके शब्दजन्य और लिंगजन्य दो भेद हैं। शब्दजन्य के अन्तर्गत अक्षरात्मक विद्या में गणित, ज्योतिष, वैद्यक, इतिहास, कोष, अलंकार और व्याकरण है। अनक्षरात्मक लिंगजन्य में संकेत द्वारा ज्ञान प्राप्त करना हस्तकला, कुश्ती आदि सम्मिलित हैं।

अंक विद्या के लौकिक और अलौकिक भेदों में से लौकिक के वर्तमान मे इकाई से दशसंख तक 19 अंक प्रमाण। गणित सार संग्रह की दृष्टि से महालोभ तक 24 अंक प्रमाण। इस लौकिक संख्या को "वृहदजैन शब्दार्णवकार'— ने ऋषभ निर्वाण संवत् को जो 76 अंक प्रमाण है, पढ़ने की रीति लिखी है— 4 पदम, 13 नियल, 45 खर्व, 26 अर्वुद, 30 कोटि, 30 लक्ष, 82 सहस और 031 महामहाशंख, 777 परार्ध, 49 पदम, 51 नियल, 21 खर्व, 91 अर्वुद, 99 लक्ष, 99 महाशंख, 999 परार्ध, 99 पदम, 99 नियल, 99खर्व, 99 अर्वुद, 99 कोटि, 99 लक्ष, 60 सहस्र और 469 इसमें वीर निर्वाण संवत 527 जोडने पर 537 वर्तमान में होते हैं।

लोकोत्तर या अलौकिक अंक गणना के 21 विभाग हैं। संख्यात 3 जघन्य, मध्य, उत्कृष्ट संख्यात 9 जघन्य, मध्य, उत्कृष्टपरीत, जघन्य, मध्य, उत्कृष्टयुक्त,

जघन्य, मध्य, उत्कृष्टअसंख्यात।

अनन्त 9 जघन्य, मध्य, उंत्कृष्ट परीत

जघन्य, मध्य, उत्कृष्ट युक्त

जघन्य, मध्य, उत्कृष्ट अनंत

अक एक गणना में आता है, किन्तु दो जघ्न्य संख्यात है, जिससे से संख्या प्रारंभ होती है।

जघन्य परीतासंख्यात समझने के लिए अनवस्था, शलाका, प्रतिशलाका और महाश्लाका ये चार गोलकुण्ड हैं। उनमें प्रथम कुण्ड का व्यास एक लाखयोजन, गहराई, एक हजार योजन हो, जिसमें 46 अंक प्रमाण सरसों दाने समाऐंगे। प्रत्येक द्वीप समुद्र में एक—एक सरसों डालते हुए वह कुण्ड खाली हो जाएँ, जहाँ वह अंतिम सरसों डाली गई हैं, उसी द्वीप या

समुद्र की सूची के समान सूची एक तरफ से दुसरे तट तक की चौड़ाई वाला एक हजार योजन गहरा दूसरा अनवस्था कुण्ड बनावें। इस तरह गिनती हेतु शलाका कुण्ड में एक-एक सरसो डालते हुए जहाँ अनवस्था कुण्ड की सरसों समाप्त हो जाए, वहाँ की सूची वाला व एक हजार योजन महाकुण्ड बनाते जावें इसी प्रकार शलाका व प्रति शलाका तथा महाशलाका कुण्ड भरने पर अंत के अनवस्था कुण्ड की सरसों बराबर परीतासंख्यात जघन्य प्रमाण आता है। इसके आगे युक्त संख्यात हेतु विरलन देय शलाका का विधान करें।

आगे उपमान के आठ भेद हैं :-

पल्य, सागर, सूच्यगुल, प्रतरांगुल, धनांगुल, जगच्छेणी, जगत्प्रतर, धनलोक। पल्य के व्यवहार पल्य उद्धार पल्य, अद्धापल्य ये तीन भेद हैं। अनंतानंत परमाणु के समूह को अवसन्नासन्न, 8 अवसन्नासन्न का एक सन्नासन्न, इसके आगे 8, 8 के एक-एक तृट्रेणु, त्रसरेणु, रथरेणु, उत्तमभोग भूमि बालाग्र, मध्यमभोग भोग बालाग्र, जघन्य भोगभूमि बालाग्र, कर्मभूमि बालाग्र, लीख, सरसों, जौ, अगुल-इसे उत्सेधागुल कहते हैं। इससे चतुर्गति जीव शरीर, देवनगर मंदिर का वर्णन किया गया है। इसके पॉच सौ गुणा प्रमाणांगुल (भरत चक्री का अंगुल) इससे पर्वत, नदी, द्वीप, समुद्र का परिणाम बताया गया है।

आत्मांगुल से झारी, कलश, चमर आदि का प्रमाण माना गया है। 6 अगुल का एक पाद, 2 पाद का एक विलस्त, 2 विलस्त का एक हाथ, चार हाथ का एक धनुष, 2000 धनुष का एक कोश, 4 कोश का एक योजन होता है।

उत्तम भोगभूमि के मेढे के बालाग्र भागों से भरे गये गड्ढे को व्यवहारपल्ये कहते हैं। यह पल्य दो हजार कोश गहरा और उतना ही चौड़ा गोल माना जाता है। सौ वर्ष में एक रोग निकालते रहने पर उसके खाली हाने पर एक व्यवहार पल्योपम का होता है। इसके रोमों की संख्या 413452633030820317774951219200000000000000000 कुल 45 व्यवहार पल्य के रोमों के असंख्यात कोटि वर्ष के समय प्रमाण टुकडे कर उन्हें उक्त प्रमाण गड्ढे में भरकर प्रतिसमय एक-एक रोम निकालते हुए खाली होने पर जितना काल हो वह उद्धार पल्योपम है। उद्धारपल्य के रोम खण्डों पूर्वोक्त रीति प्रमाण करने पर जो काल हो वह अद्धापल्योपम

है। इसी प्रकार दश कोड़ा–कोडी अद्धापल्यों का एक अद्धा सागरोपम होता है। प्रथम पल्य गणना, द्वितीय द्वीप समुद्र की संख्या और तृतीय कर्म स्थिति हेतु है।

अद्धापल्यों की अर्द्धच्छेदों का विरलन कर प्रत्येक पर अद्धापल्य रखकर परस्पर गुणा करने पर जो राशि को वह सूच्यंगुल है। वह एक अंगुल लंबे प्रदेशों का प्रमाण है।

सूच्यगंल के वर्ग को प्रत्‌रांगुल कहते हैं। सूच्यगुल के धन को धनांगुल कहते हैं। पल्य के अर्धच्छेदों के असंख्यातवे भाग प्रमाण धनांगुल परस्पर गुणा करने पर जो राशी हो वह जगच्छेणी है। यह सात राजू लंबी आकाश प्रदेश प्रमाण है।

जगच्छेणी के वर्ग को जगत्प्रतर और जगच्श्रेणी के घन को घनलोक कहते है। जगच्श्रेणी का सातवां भाग राजू होता है। गणित मे परिकर्माष्टक आठ है–सकलन, व्यवकलन, गुणकार, भागहार, वर्ग, वर्गफल, धन और धनमूल। ये लौकिक है अत· प्रसिद्ध होने से समझने की आवश्यकता प्रतीत नहीं होती। उक्त लोकात्तर गणना के सख्यात आदि 21 विभाग बताये हैं, उनमे जघन्यपरीतासख्यात और शेष भेदो को समझने के लिए अनवस्था आदि चार कुण्ड बताए हैं।

अनवस्था कुण्ड मे 46 अक 1997112938451316, 36363636 36363636 36363636 36363636 प्रमाण सरसो दाने समाते हैं तथा पुष्करवर समुद्र की सूची 125 लक्ष महायोजन है। आगे पूर्वोक्त रीति से सूची निकाल लेना चाहिए। आगे सख्यात एवं अनंत भेदों के सबंध मे ज्ञातव्य है कि जघन्यमुक्त, संख्यात को आवली कहते हैं, क्योकि एक आवली काल मे जघन्ययुक्त संख्यात प्रमाण समय होते हैं। इसी प्रकार मध्यम असख्यातासंख्यात में शलाकात्रय निष्ठापन के पश्चात् धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य, एक जीव द्रव्य, लोकाकाश इनके असंख्यात प्रदेशों की राशि तथा अप्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पति जीवों की संख्या जो असंख्यात लोक प्रमाण है, जोड़ देंवे तथा शलाकात्रय निष्ठापनपूर्वक कल्पकाल के समयों की संख्या, असंख्यातलोक प्रमाणस्थिति पर अनुभागवंधाद्यवसाय व योगत्रय के उत्कृष्ट अविभाग प्रतिच्छेद जोड़ने पर शलाकात्रय निष्ठापन द्वारा जघन्यपरीतानंत की संख्या आती है।

इसी प्रकार मध्य अनंतानंत राशि लाने के लिए जीव राशि के

अनंतवे भाग सिद्ध राशि, सिद्धो से अनतगुणी निगोद व वनस्पतिकायिक राशि, जीवों से अनतगुणी पुद्गल सख्या व उससे भी अनंतानंत व्यवहार के त्रिकालवर्ती समय व अलोक के अनंत प्रदेश जोड़ना चाहिए।

उक्त पल्य सागर के उल्लेख करने का प्रयोजन यह है कि उद्धारपल्य से द्वीप समुद्रों की सख्या एवं सागर से जीवो की आयु व कर्मों की स्थिति का ज्ञान होता है।

धनागुल के दूसरे वर्गमूल का जगच्छ्रेणी से गुणा करने पर जो राशि आवे उसमें सातो नरको के नारकी है।

सूच्यगुल के प्रथम और तृतीय वर्गमूल का जगत्श्रेणी में भाग देने से जो शेष रहे उसमे एक और घटाने पर सामान्य मनुष्य राशि का प्रमाण है। इसमे पर्याप्त मनुष्य सख्या 29 अक प्रमाण 792281625, 1426433, 39503950336256 प्रमाणागुलो के वर्ग का जगत्प्रप्रार मे भाग देने से ज्योतिषदेवो का प्रमाण आता हैं। उनसे कुछ अधिक सर्व देवों की संख्या है।

ससार राशि मे से उक्त नारक, मनुष्य, देव इन तीनो राशियो को घटाने पर तिर्यंचो का प्रमाण है। एक उत्सर्पिणी या अवसर्पिणी काल की सख्या 27 अक 50 शून्य प्रमाण है, वह इस प्रकार है– 4134 522 63030 820317 7749512192 इसके आगे 50 शून्य जोडे।

एक घन फुट स्थान मे 30सेर 6 छटाक नदी का जल और 31 सेर 4 छटाक समुदी खारा जल आता है। एन घन हस्त प्रमाण स्थान मे 2 मन 25 सेर, 7 50 छटाक एक गज लबे चौडे और गहरे स्थान में 21 मन 3111 सेर और इसी रीति से एक घन महायोजन क्षेत्र में 108 इसके आगे 20 शून्य इतना मल जल समाता है।

नोट :– पूर्व 40 सेर का एक मन ग्रहण किया है। उक्त प्रकार हिसाब लगाने पर लवण समुद्र का पाताल सहित जल 16 अक 22 शून्य प्रमाण मन हैं। 183444, 2804551005 आगे 22 शून्य।

जिन मदिर, शिखर, वेदी, प्रतिमा, हवन कुण्ड, ध्वजादण्ड आदि के निर्माण में भी गणित के नियमो का उपयोग होता है। माप में न्यूनाधिकता होने पर किस प्रकार की हानि होती है, यह प्रतिष्ठाशास्त्र में स्पष्ट उल्लेख मिलता है। प्रतिमा की टेढ़ी नाक, छोटे अवयव, खराब नेत्र, छोटामुख हो तो कमशः दुःख,क्षय, नेत्र विनाश और भोग हानि हो।

उर्ध्वमुख, टेढ़ीगर्दन, अधोमुख, ऊँचा–नीचा मुख हो तो कमशः धनक्षय, स्वदेशनाश, चिंता व विदेशगमन हो।

मूर्ति के नख, अंगुली, बाहु, नासिका, चरण में जो अंक खण्डित हो तो कमशः शत्रुभय, देशविनाश, बंधन, कुलनाश और द्रव्यक्षय हो।

मंदिर के आगे के द्वारा के 8 भाग करें, उसमे 7वें भाग प्रमाण पीठिका सहित प्रतिमा की ऊँचाई हो अथवा उस 7वें भाग के 3 भाग रकें, उस एक भाग की पीठिका और 2 की खड्गासन प्रतिमा की ऊँचाई हो। पद्मासन प्रतिमा मे 2 भाग पीठिका व एक भाग मूर्ति रखे। मंदिर में गर्भगृह का 3रा भाग प्रमाण प्रतिमा निर्माण करावें।

द्वार के 9 भाग करके उसके 7वें भाग के भी 9 भाग करें, उसमें 7वें भाग में प्रतिमा की दृष्टि रखी जावे (वसुनंदि प्रतिष्ठासार) अथवा द्वार की ऊँचाई 8 भाग करे, उसमे 7वे भाग के भी 8 भाग करे उसके 7वे भाग (गज आय) के दृष्टि रखी जावे अथवा 7वे भाग के 8 भाग, 8 भाग में से 5–3–1 ले भाग मे भी दृष्टि रख सकते हैं या द्वार के 64 भाग करके 55वे भाग पर दृष्टि रखी जावे।(प्रसाद मण्डन)

कायोत्सर्ग प्रतिमा 9 या 10 ताल की होती है। पदमासन प्रतिमा 54 अगुल की होती है, जिसमे दोनो घुटने तक सूत्र का मान, दाहिने घुटने से बाये कधे तक और बाये घुटने से दाहिने कधे तक दोनो तिरछे सूत्रो का मान तथा सीधे मे नीचे से ऊपर केशात भाग तक लंबे सूत्र का मान ये चारो मान समान होना चाहिए। इसी प्रकार दोनो हाथ के अंगुली के ओर पेडू के अन्तर 4 भाग रखे। नाभि से लिग 8 भाग नीचा, 5 भाग लबा बनावे आदि। प्रतिमा निर्माण मे मुख, हाथ, वक्षस्थल, उदर, पेडू, जॉघ, घुटना, चरण आदि कितने भाग प्रमाण बनाये यह सब प्रतिष्ठा शास्त्र में बताया गया है। उसका उल्लघन होने से प्रतिष्ठाकारक की हानि होती है। यह विस्तार से प्रत्येक अग के अनुसार बताया गया है। कर्मो की स्थिती के संबंध में भी त्रैराशिक गणित की आवश्यकता होती है यथा एकेन्द्री जीव के सत्तर कोडाकोड़ी सागर की उत्कृष्ट स्थिति वाला मिथ्यात्व कर्म एक सागरप्रमाण वधता है तो शेष कर्मो का एकेन्द्रीजीव के कितना स्थिति प्रमाण बंध सकता है? इस प्रकार त्रैराशिक विधि से एकेन्द्री जीव की उत्कृष्ट स्थिति एक सागर के सात भाग मे से तीन भाग प्रमाण होती है। इसी प्रकार दो इन्द्रीआदि के भी संपूर्ण कर्मो की स्थिति निकाल लेना चाहिए।

चक्षुरिन्द्रिय का उत्कृष्ट विषय क्षेत्र निकालने के लिए त्रैराशिक करना पड़ेगा। सूर्य का चार क्षेत्र पॉच सौ बारह योजन चौड़ा है, उसमें 332 लवण समुद्र में शेष 190 जंबूद्वीप में है। जम्बूद्वीप के एक लाख योजन विष्कभ में से उक्त 360 योजन छोड़कर 99640 योजन जम्बूद्वीप की परिधिकरण(गणित) सूत्रानुसार 31589 योजन होती है। इस अभ्यंतर परिधि को एक सूर्य 60 मुहूर्त में समाप्त करता है और निषध पर्वत (उदयाचल) की अभ्यंतर वीथी (एक भाग से दूसरे भाग तक) को 18 मुहूर्त में समाप्त करता है। इससे मध्य में अयोध्या पड़ती है। ऊपर अपने महल से भरतचकवर्ती अभ्यंतर वीथी मे उदय होते सूर्य के भीतर जिन प्रतिमा के दर्शन करता है और निषध से अयोध्या तक सूर्य 9 मुहूर्त में भ्रमण करेगा, इसलिए 60 मुहूर्त में इतने क्षेत्र पर भ्रमण करे तो 9 मुहूर्त में कितना भ्रमण करेगा। इस त्रैराशिक से फल राशि(परिधि)और इच्छाराशि नव का गुणा कर प्रमाण रशि 60 का भाग देने से चक्षुरिन्द्रिय का 47263 7/20 योजन विषय क्षेत्र निकलता है। यहॉं भी परिधि के लिए वर्गमूल निकालना होगा।

इस प्रकार लौकिक एवं लोकोत्तर गणित के नियम (करणसूत्र) की अनिवार्यता जैन भूगोल के लिए ज्ञातव्य है।

जैन आयुर्वेद

विद् धातु से वेद बनता है, जिसका अर्थ ज्ञान या लाभ है। जिससे आयु के लिए हिताहित द्रव्य के स्वरूप का ज्ञान हो वह आयुर्वेद है। वैद्य (चिकित्सक) निपुण, धीर, धार्मिक और सदाचारी होना चाहिए। आत्मिक सुख पारमार्थिक स्वास्थ्य है और शरीर स्थित् सप्तधातु, अग्नि व वातादि दोषों का सम रहना, इन्द्रियों की प्रसन्नता, मन का आनंद एवं शरीर का नीरोग रहना व्यावहारिक स्वास्थ्य है। जैन वैद्यक ग्रंथकारों में सर्वश्री आचार्य श्रुतकीर्ति, कुमारसेन, वीरसेन, पूज्यपाद, पात्रकेसरी, सिद्धसेन दशरथगुरु, मेघनाद, सिंहनाद, संमतभद्र और जटाचार्य आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। इनके सब ग्रंथ उपलब्ध नहीं हैं। पूज्यपाद न शालाक्य--शिराभेदन ग्रंथ, पात्रकेसरी ने शल्यतंत्र, सिद्धसेन ने विष व उग्र ग्रह शमन विधि, दशरथ व मेघनाद न बालरोग चिकित्सा, सिंहनाद ने शरीर बलवर्द्धक प्रयोग तथा संमतभद्र ने अष्टांगग्रथ की रचना की है। 'कल्याणकारक' ग्रंथ जो प्रकाशित होकर उपलब्ध है, उसके कर्ता उदयनाचार्य अमोघवर्ष (प्रथम) राजा के समकालीन अर्थात् विकम व ईसा की 9वीं शताब्दी के आचार्य हैं।

श्री पूज्यपाद का 'वैद्यामृत' व समंतभद्र का 'सिद्धान्त रसायन कल्प' (18 हजार श्लोक प्रमाण) तथा पुष्पायुर्वेद ग्रंथ मे 18 हजार जाति के पराग रहित पुष्पों से रसायन औषधियों के प्रयोगों को लिखा गया है। कल्याणकारक ग्रंथ में मद्य,मांस, मधु, गोमूत्र आदि का प्रयोग औषधियों में नहीं किया गया है। जैन धर्म के अहिंसा आदि सिद्धांतों का भलीभांति पालन करते हुए चिकित्सा का वर्णन किया है।

आयुर्वेद के वैद्य के कर्त्तव्य के विषय में कल्याणकारक ग्रंथ में उल्लेख मिलता है कि चिकित्सा में रोगी की परिस्थिति सम्बंधी प्रश्न, निमित्त, शकुन, चन्द्रयोग, स्वप्न आदि द्वारा रोगी की आयु की जानकारी का प्रयत्न करें। रिष्ट (मरण सूचक चिन्ह) के प्रगट हुए बिना मरण नहीं होता। अरिष्ट (वात पित्त कफ प्रकृति, देह का स्वभाव, छाया तथा इन्द्रिय विकार व मल एवं कफ को जल में डालने पर डूब जाना इन रोगी के मरण चिन्हों) को ज्ञात करें।

शकुन के संबंध में लिखा गया है कि वैद्य को बुलाने जाते समय

सामने से जान वाले सर्प, मार्जार, लकड़ी का गट्ठा, अग्नि, भैंस, मलिनवस्त्र वाले मनुष्य, धोबी के वस्त्र व मुर्दे के साथ के व्यक्ति दिखें तो अपशकुन है। उत्पात, कलह भी अपशुकन है।

प्रस्थान करते समय वैद्य को शुभ शब्द सुनाई दे रहा हो, शुक्ल वस्तु, जलभरा घट लिए महिला दिखे तो शुभ शकुन है।

शरीर में 300 हड्डी, 300 संधि, स्नायु 900, शिराये 700, मांसपेशी 500, नाडी नाभि के ऊपर–नीचे 10–10, धमनी 26, मोटी नसें, 16 और कूर्च 6 हैं। मांस रज्जु 2, त्वचा 7, स्रोत 8, यकृत (जिगर) 1, तिल्ली 1, आमाशय (मेद) 1, पक्वाशय (आंतडियाँ) 16, मर्मस्थल 107, मलद्वार 9, रोमछिद्र 80 लाख, दोष 3, दात 32, नख 20, वायु 5 हैं। शरीर में चर्बी 1, अंजली प्रमाण, रक्त अर्ध आढक, मूत्र एकप्रस्थ, मलअर्ध आढक। ग्रथकार आचार्य ने शरीर के अशुचित्व का वर्णन कर धर्मप्रेम की प्रेरणा भी दी है। दिनचर्या के वर्णन के पश्चात् आचार्य ने सप्तम परिच्छेद मे आत्मा का वर्णन अध्यात्म दृष्टि से किया है, मानो यह अध्यात्मग्रंथ है। रोग शांति के लिए धर्म को अभ्यतर प्रमुख कारण और बाह्य को केवल सहकारी कारण बताया है। ग्रंथ में लिखा है कि रोगी का विश्वासपात्र बनकर अनुभवी वैद्य रोगियो की चिकित्सा परलोक साधन एव कर्मक्षय होने के लिए निरीहभाव से दया युक्त होकर करें।

इस ग्रथ मे मद्य, मांस, मधु का प्रयोग न करते हुए भी ग्रह (व्यंतरादि) सबधी रोग की चिकित्सा में कुछ पशुओ के अशुद्ध मलमूत्र मिश्रित तेल के उपयोग का भी वर्णन मिलता है।

शारीरिक स्वास्थ्य पर मानसिक विचारो का प्रभाव पडता है। हमारे भावो मे विकार उत्पन्न होने से शरीर मे विकार होगा। यदि हम कोधादि पूर्वक भोजन करते हैं तो शरीर में जो रस रक्त आदि का निर्माण होगा, वह दूषित होगा।

शरीर मे 40 किलो आहार का 1 कि. रक्त और 39 कि मलमूत्र का निर्माण होता है। फिर मास, मज्जा, हड्डी एवं शुक बनता है। भोजन सबंधी जानकारी अवश्य होना चाहिए। रोग खान–पान की खराबी से उत्पन्न होते है, कुछ छूत से उत्पन्न होते हैं। जैसे क्षय, सर्दी, जुकाम, चेचक, इन्फलूएंजा। ये रोग कीटाणुओ से होते हैं। ये वायु में उडकर श्वास के साथ आ जाते हैं। दूध, जल व भोजन य वस्त्र द्वारा शरीर में

पहुँच जाते हैं।

हमारे रक्त में सफेद और लाल जीवाणु विद्यमान हैं। लालकण शरीर में भोजन पहुँचाते और सफेद कणों का काम शरीर की रक्षा करना है। शरीर में रक्त बनने पर शक्ति बढ़ती है, इससे सफेद कणों की वृद्धि होकर रक्तकण (रोगोत्पत्ति के कारण) नष्ट होकर स्वास्थ्य प्राप्त होता है। अतः ताजे फल, दूध व अन्न का आहार, जो सहज पच सके लेना चाहिए। स्वास्थ्य हेतु भोजन, जल, वायु, वस्त्र व स्थान की स्वच्छता आवश्यक है। हमारा मन, स्वभाव और चरित्र भी स्वच्छ होना चाहिए। सत्संग, पवित्र विचार, अच्छा साहित्य, चरित्र की निर्मलता के लिए आवश्यक है।

सिगरेट, बीडी, तम्बाकू जहर है, इन्हें सदा के लिए त्याग करें। इनसे फेफडों व स्नायुओं की खराबी और कैंसर आदि भयंकर असाध्य व्याधियाँ उत्पन्न होती है। संक्रामक रोगों को दूर करने की प्राचीन प्रणाली शुद्ध वायु, जल, सूर्य किरणें एवं आहार विहार के अतिरिक्त आयुर्वेदानुकूल यज्ञ या हवन किया जावे तो रोगों के प्रतिकार हेतु होने वाले अधिक आर्थिक व्यय से बचा जा सकता है। हवन मे बड़ी इलायची, जायफल, जायपत्री, नागर मोथा, छैलछबीला, गूगल, अगरतगर व चंदन की समिधा आदि सामग्री भिन्न–भिन्न रोगनाशक है, इनसे निकलने वाला धूम्र व लो से दूषित वायु शुद्ध होती है और शरीर में प्रविष्ट होने पर सर्वविकार नष्ट होते है। धार्मिक विधि भी हवन द्वारा संपन्न हो जाती है। घृत का भी इसमें उपयोग होता है। यह सब संक्षिप्त और अल्प मात्रा में की जा सकती है जिससे लोगों की यह शिकायत कि घृत आदि खाद्य सामग्री व्यर्थ बर्बाद होती है, नहीं रहेगी।

हमें शुद्ध वायु प्राप्त करने के लिए पेड़ पौधो के वातावरण में रहना चाहिए। प्रातः हम बाहर हवा में घूमकर शुद्ध वायु प्राप्त कर सकते हैं। हमारी कार्बोनिकएसिड गैस श्वास द्वारा निकलकर पेड पौधों के लिए उपयोगी और पेड पौधों की आक्सीजन गैस हमारे लिए लाभदायक है। इसीलिए प्रतिदिन खुली हवा में टहलना आवश्यक है। शरीर के जोड़ों, घूटने आदि के रोगों से बचने के लिए व्यायाम करते रहने से वृद्धावस्था में चलने फिरने में कष्ट नहीं होता।

एक माह में 40 किलो भोजन से 4 ग्राम सप्तमधातु शुक्र शरीर में

बनता है। यह जैसे दीपक में तेल होने से प्रकाश होता रहता है, उसी प्रकार शरीर में तेज और उत्साह उत्पन्न करता है। स्वास्थ्य के लिए हमें सदा प्रसन्न रहते हुए चिन्ताओं से बचना चाहिए।

गर्भ की वृद्धि—गर्भाशय में प्रथम गर्भकला—झिल्ली गर्भकोष को प्राप्त होती है, जो द्वितीय मास में मुर्गी के अंडे के समान हो जाता है। तृतीय मास में नाभि कमल गर्भ समूह के कोष का निर्माण होता है, इससे गर्भ का पोषण होकर माता और गर्भ के हृदय का संबंध होता है। चतुर्थ माह में गर्भ के सभी अंग बन जाते है और जननेन्द्रिय व हृदय की पृथक रचना हो जाती है। पंचम मास में इन्द्रियों, चेतना और केशों का निर्माण होता है। षष्ठ मास में नसें व नाखून, पलकें, बनती हैं। सप्तम मे सर्व अंग निर्मित हो जाते हैं। इस माह में किसी—किसी के बच्चा उत्पन्न हो जाता है। अष्टम मास में ओज के साथ माता के विचारों का गर्भस्थ पर प्रभाव पडता है। नवम मास प्रसव का काल है।

शरीर को स्वस्थ्य रखने हेतु उचित निद्रा का होना आवश्यक है। चिन्ताओ से मुक्ति होने पर निद्रा आती है। अतः सर्वप्रकार की चिन्ताओं को त्याग देना चाहिए।

जिन ईंटों के समान कोषाणुओं से हमारा शरीर रूपी मकान बना है, उनका नाम सेल या कोषाणु है। ये कोषाणु 16 मूलतत्वो से बने हैं। उनमे कार्बन, नाइट्रोजन, हाइड्रोजन, आक्सीजन ये चार तत्व हमारे शरीर के मांस को बढाने का काम करते हैं। इनके मल को प्रोटीन (मास पोषक) कहते हैं। शेष गंधक, फास्फरस, सोडियम, पोटाशियम, कैल्शियम, मैग्निशियम, लीथियम, क्लोरिन, आयोडिन, सिलिकान, लोहा ये रक्त, हड्डी, शरीर के अन्य भाग बनने के काम आते हैं। ये चार श्रेणियो मे विभाजित हैं। वसा, कवोंज, खनिज और जल। दूध, दही, मावा, मटर, सेम के बीज, मूग, उड़द, अरहर, सोयाबीन में प्रोटीन मात्रा अधिक होती है । घृत, तेल, मक्खन में वसा जातीय मात्रा अधिक पाई जाती है। चावल, शक्कर, साबुदाना, अखरोट में कवोंज (माडी) वाले पदार्थ की अधि ाकता होती है। शाक आदि हरित पदार्थों मे खनिज की अधिकता तथा जल व ताजे फल, दूध में भी वह जल पर्याप्त मात्रा में मिलता है।

मद्य, मास, मधु, बैंगन, गाजर, गोबी, पाकर, बड़, अंजीर, अचार आदि अभक्ष्यों से बचते हुए विटामिन (प्राण पोषक तत्व) का भी भोजन में

होना जरूरी है। ये विटामिन 6 प्रकार के होते है। विटामिन ए शरीर की वृद्धि व नेत्रों के लिए हितकारी है। विटामिन बी मस्तिष्क, ह्रदय, मांसपेशियो व आंतो की मजबूती के लिए है। विटामिन सी रक्त शुद्ध करता है। विटामिन डी हड्डियों की रचना में सहायक है। विटामिन ई संतानोत्पादन शक्ति प्रदान करता है। विटामिन जी चर्म को नीरोग रखता है। विटामिन जी के सिवाय शेष विटामिन सूर्य के घाम सेवन से पूरे हो सकते हैं। इनके बिना भिन्न–भिन्न रोग हो जाते हैं। अतः शरीर में इन विटामिनों का होना आवश्यक है।

विटामिन ए दूध व पत्तीदार शाकों मे प्रचुर मात्रा में मिलते हैं। विटामिन बी गेहूँ चोकर, चॉवल, पत्ती वाले शाकों में प्राप्त होते हैं। विटामिन सी निंबू, संतरों की जाति वाले फलों में पाये जाते हैं। विटामिन डी मक्खन में व विटामिन ई गेहूँ व हरी पत्तियों मे व वनस्पति जातीय तेलों में मिलते हैं। दूध में प्रायः सभी प्रकार के विटामिन उपलब्ध हैं। ध्यान रखे इनमे कोई मासाहारी विटामिन नही होना चाहिए। भोजन भूख लगने पर ही करना चाहिए। भोजन में हर एक कौर खूब चबाकर खाना उचित है। पेट के चार भाग कर दो भाग भोजन से, एक भाग जल से और चौथा भाग हवा के लिए खाली रखा जावे। पवित्र और सात्विक भोजन करने वाले ही धर्मात्मा और शुद्ध बुद्धि रह सकते हैं। हमारे ज्ञान का अधिकतर भाग देखने व सुनने की शक्तियो पर निर्भर है, अत· प्रकृति मे हमें दो नेत्र और दो श्रोत्र प्राप्त हुए हैं। ऑखों की रक्षा के लिए पलको पर बरौनी के बाल उपलब्ध हैं। नेत्र साफ रहे, इस हेतु अश्रुग्रंथि भी है। पढते समय पुस्तक या अखबार आदि न बहुत दूर हो और न पास हो। लगभग एक हाथ दूर से पढना चाहिए। हिलते हुए सोते हुए नहीं पढे। टेबल या चौकी पर पुस्तक रखकर पढें जिससे झुकना न पडे। सिनेमा या टी.वी. देखते समय कुर्सी पर सीधे बैठे., पलकें कुछ नीचें को गिरी हुई हो। पलके प्रति मिनिट दस बार के हिसाब से खोलते व बन्द करते रहे। एकदम पलकें बन्द भी न करें। नेत्र ज्योति बढाने को त्रिफला के जल से आखे धोए और सूर्य के सामने आंखे बन्द कर अपने शरीर को दश मिनिट तक दाए और बाऐ हिलाते रहे । नेत्र जीवन की अमूल्य निधि है, इसलिए इसकी रक्षा का ध्यान रखा जावें।

दांतो की सफाई के लिए प्रतिदिन अच्छा दंत मंजन या बबूल नीम के दांतुन का उपयोग करें। दातो की सधि में अन्न के अंशो को साफ करते रहना आवश्यक है।

जिन्हे शारीरिक परिश्रम करना पड़ता है, वे शरीर को कुछ समय आराम दे सकते हैं, परन्तु जिन्हें प्रातः से संध्या तक बैठना और मस्तिष्क से काम लेना पड़ता है, उन्हें चाहिए कि शारीरिक परिश्रम करें। वे शरीर को ठीक रखने के लिए नियमपूर्वक व्यायाम किया करें। ओलम्पिक खेलों और राममूर्ति, ताराबाई तथा सैंडों का नाम प्रसिद्ध है। राममूर्ति को दो–दो मोटरों को एक साथ रोकने और ताराबाई को अपने बालों से मोटरों को रोकने तथा अपने सीने पर मनभर पत्थर के ऊपर पत्थर फोड़ने एव लोहे की मोटी जंजीरो को एक झटके मे तोडते, उन्हे हमने स्वय देखा। सरकस आदि में भी नवयुवा लडके–लडकियों के आश्चर्यप्रद खेल हम आज देख रहे है। हॉकी, क्रिकेट, टेनिस, फुटबॉल, बालीबाल, कबड्डी, पानी में तैरना, दौड़ की प्रतियोगिता इन सभी का व्याय्याम व स्वास्थ्य से संबंध है। इनमें विशेषता यह है जो जिस परिस्थिति या वातावरण में रहते हैं, उन्हें तदनुसार उक्त व्यायाम के कार्यों में इनका धन्धा छोड़कर अपने शरीर को नीरोग और उन्नत बनाने में प्रयत्नशील रहना चाहिए, क्योंकि व्यायाम के साथ भोजन पान और समय आदि की भी आवश्यकता रहेगी, जिन्हें पूर्ण करना अनिवार्य है। अतः हमारा निवेदन तो केवल स्वस्थ रहकर अपने जीवन को कियाशील और सफल बनाने हेतु है। समाज में ऐसे भी व्यक्ति हैं, जिन्हें पेटभर भोजन नहीं मिलता और ऐसे भी हैं, जिन्हें खूब दूध मलाई और घृतान्न उपलब्ध है। अतः पाचन और परिपुष्ट का ख्याल रखते हुए दोनों की अवस्था वालों को वायु सेवन एवं व्यायाम अवश्य करना चाहिए। शरीर की नालियों में रक्त बराबर दौड़ता रहे और भोज्य पदार्थ के रस का निर्माण होता रहे। प्रसन्नता और उत्साह में कमी नहीं हो, यही व्यायाम का उद्देश्य है। शरीर में रक्त प्रवाहित न होने से ही ह्रदय रोग आदि अनेक व्याधियाँ उत्पन्न होती है। शरीर में दोनों प्रकार का रक्तचाप (ब्लडप्रेशर), शक्कर (डायबिटीज), लकवा, कैंसर व दिमाग के रोग, जो वर्तमान में अधिक प्रचलित हैं, उनसे बचने के लिए, प्रातः कुछ न कुछ व्यायाम (एक्सरसाइज) या योगासन का अभ्यास अवश्य किया जावे। पर्यावरण प्रदूषण से बचने के लिए प्रातः वायु सेवन हेतु एक या दो किलोमीटर भ्रमण किया जावे।

योगासन अनुभवी व्यक्तियों के पास जाकर किए जावें। स्नान में एक मोटा तौलिया पानी में भिंगोकर शरीर के सभी हिस्सों को रगड लेना चाहिए। जहाँ तक हो ठंडे जल को उपयोग में लेवें।

जल का तीन चौथाई भाग हमारे शरीर में विद्यमान है, हमारी शरीर

शुद्धि जल से ही होती है। रक्त में भी जल है। मलमूत्र, पसीना आदि से लगभग तीन किलो जल शरीर से बाहर निकलता रहता है, अतः इसकी पूर्ति हेतु फिल्टर किया और छना हुआ शुद्ध जल अधिक पीते रहें। अशुद्ध जल से मोतीझरा, दाद, फोड़ा, हैजा, अतिसार आदि रोग पैदा होते है।

नीरोगता के लिए पेट का साफ होना चाहिए। पेट की खराबी से ही रोग पैदा होते है। बाजार के भोजन में जो दोष हैं, उसे देखकर घर का भोजन ही हितकारी है। बाजार में भोज्य सामग्री खुली पडी रहती है। मक्खी, मच्छर उड़ते रहते हैं। गन्दी वायु बहती रहती है। मालूम नहीं कब की और किन वस्तुओं की मिलावट से बनी हुई है। घर के भोजन मे तेज मसाले नहीं हो। शुद्ध जल और शुद्ध वायु के साथ शुद्ध विचारों का होना भी आवश्यक है। स्वस्थ मन के किया हुआ भोजन स्वास्थ्यप्रद होता है। मन मे भय और चिंता रहने पर भोज्य सामग्री का रस नहीं बनेगा बल्कि वह विषाक्त भी हो सकती है। यह सत्य घटना है कि माता ने अपने शिशु को क्रोधपूर्वक दूध पिलाया। दूध पीते ही वह शिशु मर गया। जांच करने पर विदित हुआ कि वह माता किसी से लड़कर आई थी और क्रोध अवस्था में उसने शिशु को अपने स्तन का दूध पिला दिया।

रायचन्द भाई और महात्मा गांधी

'श्री मद्राजचद्र' की प्रस्तावना मे महात्मा गांधी ने जो संस्मरण लिखे है उनके कुछ अंश निम्न प्रकार है– जुलाई 1891 ई को विलायत से आने पर उनसे भेंट हुई। मालूम पड़ा कि आप सत्यवधानी और ज्ञानी हैं। मैंने अलग–अलग भाषाओं के शब्द लिखकर उन्हें बॉच दिया। रायचन्द भाई अग्रेजी नहीं जानते थे, किन्तु उन्हें ज्यो का त्यों कमशः कह सुनाया। उनकी उम्र पच्चीस वर्ष से अधिक नहीं थी।

मेरे ऊपर टाल्स्टाय , रस्किन एवं रायचन्द भाई इन तीन पुरूषों ने छाप डाली है उक्त दोनों की पुस्तकों द्वारा किन्तु रायचन्द भाई ने अपने साथ गाढ परिचय ने। जब मुझे हिन्दूधर्म में शंका हुई उस समय उसके निवारण करने में मदद करने वाले रायचन्द भाई थे। सन् 1893 में दक्षिण अफीका में मैं कुछ क्रिश्चियन सज्जनों के सपर्क मे आया क्रिश्चियन होने के लिए समझाना उनका मुख्य व्यवसाय था। मैंने हिन्दूधर्म से रहस्य को बिना जाने अपने कुलधर्म को छोडना उचित नहीं समझा। मैंने हिन्दूधर्म, क्रिश्चियन और मुसलमानी धर्म की पुस्तके पढीं, विलायत के अंग्रेजी मित्रों से पत्र व्यवहार किया। हिन्दुस्तान मे भी शका मे रखीं। उनमे रायचन्द भाई प्रमुख थे। उनसे जो मिल सके लेने का विचार किया। उनसे मुझे शांति मिली। हिन्दुधर्म मे मुझे जो चाहिए मिल सकता है, ऐसा मन मे विश्वास हुआ। मेरी इस स्थिति के जबाबदार रायचन्द भाई हुए। इसमे मेरा उनके प्रति कितना अधिक मान होना चाहिए, पाठक अनुमान कर सकते हैं।

शास्त्रज्ञान भी बहुतों में पाया जाता है। परन्तु यदि वे सस्कारित हो तो उनके पास फूटी कोडी भी नहीं मिलती।

रायचन्द भाई का पक्षपात जैनधर्म की ओर था। वे कहते थे कि जिनागम में आत्मज्ञान की पराकाष्ठा है। उनका दूसरे धर्म के प्रति अनादर न था।

मुझे उन्होने खास धर्म का अवलंबन मोक्षहेतु लेने के लिए कभी नहीं कहा। मुझे अपना ही आचार विचार पालने के लिए कहा, मुझे गीता वाचने के लिए उत्तेजित किया। वे कहते थे भिन्न–भिन्न धर्म तो एक तरह के वाडे हैं। धार्मिक जगहो से वे हमेशा ऊंबे रहते थे।

जैनधर्म की विशेषताएँ

आत्मा, रूह, सोल या जीव के शत्रुओं को जीतने का मार्ग जैनधर्म है। आत्मा के शत्रु बाहरी नहीं, वरन् भीतर के अज्ञान, क्रोध–मान(द्वेष) एवं माया–लोभ (राग) हैं, जिन्हें जीतने वाले जिन हैं, उन्हें अपना आराध्य (देव) मानने वाला जैन कहलाता है। यह किसी देव विशेष का नाम नही है जैसे बुद्ध, ईसा, विष्णु, आदि हैं। यह जिन शब्द व्यक्ति वाचक नहीं गुणवाचक है। णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आइरीयाण, णमो उवज्झायण, णमो लोएसव्व साहूणं। इस णमोकार मंत्र में भी अरिहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, सर्वसाधु इन पॉच परमपद में विराजमान परमेष्ठियों को नमस्कार किया हैं, जो गुण वाचक है।

जो रागद्वेषादि विकार सहित संसार से छूटने के लिए या इनसे मुक्त होने के लिए साधना करते हैं वे साधु है। वीतरागता के कथन करने वाले शास्त्रों का जो अध्ययन अध्यापन कराते है ऐसे उपाध्याय कहलाते है। जो दिगम्बर जैन मुनियो को दीक्षा प्रदानकर उन पर अनुशासन रखते हैं वे आचार्य हैं। ये तीनो ही दिगम्बर (भाव व द्रव्य से) होते हैं। दिगम्बर – अपरिग्रह को कहते हैं इसमे केवल वाहन वस्त्र त्याग ही नही है, किन्तु मिथ्यात्व, राग, द्वेष, क्रोध, मान, माया, लोभ, कषाय, का त्याग भी शामिल है।

जो आत्मा के रागद्वेष के भेद रूप ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय, अतराय, इन चार घाति कर्मो को नाशकर सर्वज्ञ वीतराग हितोपदेशी परमात्मा (सशरीरी–सदेह) होते है वे अरिहत हैं। ऊपर के चार कर्मो (विकारों) के सिवाय शेष बचे हुए वेदनीय, आयु, नाम, गोत्र, इन अघाति चार कर्मों को नाश करते है वे सिद्ध या मुक्त परमात्मा कहलाते है।

इनमे जगत्कल्याण की भावना से जो तीर्थंकर नाम कर्म का बध करते है। वे तीर्थंकर पद प्राप्त करते है। ऐसे यहा भरत एव ऐरावत क्षेत्र में 24 तीर्थंकर होते है। विदेह क्षेत्र आदि मे भी बीस व चौबीस आदि तीर्थंकर होते है।

1. प्रत्येक आत्मा अपनी भूल से अवनति और सच्चे परिश्रम से अपनी उन्नति कर सकता है वह स्वयं ही स्वर्ग, नरक या मुक्ति प्राप्त करता है, किसी ईश्वर पर वह निर्भर नहीं है। यह विश्व भी अनादि अनंत, प्रकृति

निर्मित है, किसी ने इसकी रचना नहीं की हैं। आत्मा स्वयं ही पाप और पुण्य कर्म उपार्जन कर उसका कर्ता भोक्ता होता है। हम जैसे भोजन करते है, पानी पीते है, हवा लेते हैं, ये सब चीजे देह में स्वभाव से रक्त, मांस या वीर्य बनाती है। हम उनका स्वयं भोग करते है।

2 जैनधर्म, परमात्मा, परलोक, पुण्य, पाप, स्वर्ग, नरक, आत्मा, ये सब मानता है अत. वह आस्तिक है, नास्तिक नहीं। परमात्मा की भक्ति पूजा, भक्त परमात्मा के गुण अनतज्ञान, अनंतदर्शन, अनंत सुख, अनंत वीर्य आदि की प्राप्ति हेतु करता है। परमात्मा से वह कुछ नहीं चाहता, न ही परमात्मा किसी को कुछ दे सकते हैं। वीतरागता की प्राप्ति वीतराग के आदर्श गुणों की भक्ति कर अपने पुरूषार्थ द्वारा होती है। ऐसे परमात्मा अर्हन्त सिद्ध हैं, जिनके प्रत्यक्ष दर्शन नहीं होने से उनकी वीतराग मूर्ति द्वारा या मूर्ति के माध्यम से उनकी भक्ति की जाती है, जिससे वैसा ही लाभ प्राप्त होता है।

3 जैनधर्म मे अहिसा की प्रधानता है जिसका स्वरूप इसी ग्रथ मे अहिसावाद में देखना चाहिए 'स्वयं जीयो और अपने समान दूसरो को जीने दो' इसी के अन्तर्गत है।

4 जैनधर्म का कर्म सिद्धात अपूर्व है, जिसका वर्णन यहा कर्मवाद शीर्षक मे आया है।

5 जैनधर्म का प्राण अनेकात और स्याद्वाद (समन्वय) है, यह भी इसी ग्रथ मे विस्तार पूर्वक बताया गया है।

6. साम्यवाद – ससार के समस्त प्राणी एकेन्द्रिय से पचेन्द्रिय तक,देव, मनुष्य, तिर्यंच, नारकी सभी की आत्मा में परमात्मत्व शक्ति है। सभी आत्मा से परमात्मा बन सकते हैं। भगवान ऋषभदेव, भगवान महावीर आदि सभी तीर्थंकर पहले संसारी आत्मा थे, वे इस परमात्मात्व शक्ति को पहचान कर अपने पुरूषार्थ से नर से नारायण (परमात्मा) बने हैं। यह जैनधर्म की विशेषता अन्यत्र नहीं है।

7. नयवाद– सम्यग्ज्ञान के प्रमाण (सकलादेश) और नय (विकलादेश) ये दो भेद है। इनमे पदार्थ के पूर्ण अश को प्रमाण से और कमश. नय से जाना जाता है। सापेक्ष व्यवहार हम नय द्वारा ही करते है। इस सापेक्ष नय से विश्व के समस्त दर्शनों को, जो एक–एक नय के विषय है, समन्वय द्वारा अनेकांत में गर्भित करते हैं, जो विश्व मैत्री का सूचक है।

यह अनेकांत—स्याद्वाद विषय में दर्शाया गया है।

8 कला के क्षेत्र में – जैनों द्वारा निर्मापित देश—विदेश में भव्य, मनोज्ञ एवं विशाल मंदिर तथा मानस्तंभ आदि स्थापत्य कला, मूर्तिकला, चित्रकला, के क्षेत्र में जैनधर्म का अपूर्व योगदान रहा है। श्रवणबेलगोला की गोम्मटेश्वर मूर्ति, आबू के मंदिर, खजुराहों आदि प्रसिद्ध एवं अद्वितीय कृतियां सर्वविदित हैं। समवसरण, यक्ष—यक्षिणियों के अनुपम चित्र दर्शनीय है।

9 साहित्य के क्षेत्र में—जैन साहित्यकारों द्वारा प्राकृत (सौरसेनी, अर्धमागधी, महाराष्ट्री) संस्कृत, अपभ्रंश एवं हिन्दी में सहस्रों दर्शन, साहित्य, ज्योतिष, व्याकरण, गणित, नाटक, कथा, आचार एवं अध्यात्म विषयो पर ग्रथ रचना की गई हैं। गुजराती, मराठी, तामिल, कन्नड आदि भाषाओ का विपुल साहित्य भी उपलब्ध है।

10 जैनधर्म जिसे श्रमण सस्कृति नाम प्राप्त है, उसके व्रत, सन्यास और समता ये तीन मूल तत्व हैं, जबकि वैदिक संस्कृति के यज्ञ, ऋण और वर्ण व्यवस्था ये तीन मूल तत्व है। इसका स्पष्टीकरण यह है कि श्रमण मोक्षतत्व मानते हैं, जिसका मूल व्रत और सन्यास है। समता का मूल आत्मवाद है। जैनधर्म—संस्कृति मे कर्मवाद, ससार और मोक्ष की मान्यता है जबकि वैदिक मे नहीं है। वैदिक सस्कृति में स्वर्ग कि प्राप्ति के लिए यज्ञ, संतान उत्पन्नकर पितृ—ऋण (अपुत्रस्य गति र्नस्ति) एव वेदाध्ययन द्वारा ऋषि ऋण, समाज की सस्थापना तथा सघटना हेतु वर्ण व्यावस्था बतलाई है। इस प्रकार अलग होकर भी भारतीय संस्कृति में श्रमण और वैदिक दोनो संस्कृति शामिल है।

11. वैदिक आर्य कहलाते है किन्तु आर्य वास्तव में जैन ही हैं। क्योंकि जो अहिंसक है वह आर्य है जबकि जहां याज्ञिकी हिंसा की मान्यता है वहा आर्यत्व संभव नहीं।

न तेन आरियों हो ति, येन पाणानि हिंसाति

अहिंसा सब्बपाणानां, आरियोति पवुपति

(धम्मपद—धम्म..... वग्ग 15)

अर्थ – जहां प्राणों की हिंसा है वहां आर्यपना सभव नहीं। समस्त प्राणियों की प्राणरक्षा से आर्य संज्ञा सार्थक होती है।

12 जैनधर्म की साधना पद्धति मे सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यग्चारित्र है जो मोक्षमार्ग है। जबकि सांख्य दर्शन में यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि, ये यह अष्टांग साधन पद्धति है।इन्हें जैनधर्म (ज्ञानार्णव–आचार्य शुभचन्द्र कृत) भी मानता है, परन्तु ये भौतिक पद्धति के अंतर्गत है। इनसे रागादि आत्मा के विकार नष्ट नहीं होते। बडे–बड़े योगी अष्टांग योग साधन करते हुए भी क्रोधी एवं शीलरहित देखे गये हैं अत· उक्त अष्टाग योग के बाद ही आध्यात्मिक साधना का प्रारभ होता है जो उक्त सम्यग्दर्शनादि रत्नत्रय रूप है। यही जैन योग है जिसमे उक्त अष्टांग योग का उपयोग सार्थक होता है।

वास्तुशास्त्र के अनुसार गृहनिर्माण

परिस्थिति और शिल्पशास्त्रानुसार मंदिर, गृह आदि का निर्माण न होने का परिणाम वर्तमान मे भूकंप आदि की विभीषिका से जाना जा सकता है। अभी हम समाचार पत्रों मे पढ ही रहे है कि भूकप से नही गलत भवन निर्माण से लोग मरते है। कहा किस प्रकार निर्माण करना चाहिए यही जानकारी वास्तुशास्त्र देता है। भूकप की आशंका वाले जापान आदि मे गृहनिर्माण की विधि अलग ही है। उसे भलीभाति जानकर मकान बनाने होगे। बहुमजिले मकानो की मंजिले ही अधिक खतरनाक होती है।

उत्तर व पूर्व दिशा श्रेष्ठ मानी जाती है इसका सबध लोग धर्म से जोडते है, किन्तु यह सबध सूर्य किरणो से है। जब सूर्य दक्षिणायन रहता है तब भी उसकी किरणे गृह या मदिर पर पड़ती है और छ माह उत्तरायण रहता हैं तो भी किरणे वहा भीतर दरवाजे से प्रवेश करती है। ध्यान यह रखना चाहिए कि उक्त सूर्योदय की दिशा आग्नेय एव ईशान कोण हैं, विदिशा मे सम्मिलित है। कुतुबनुवा यत्र जो दिशा बताता है उसके आधार पर मदिर या गृह का निर्माण विदिशा मे होगा जो टेढा रहेगा अतः जो दिशा है वह सीधी होती है। चार सीधी दिशा और चार कोण विदिशा इस प्रकार अष्ट दिशा–विदिशा होती है। हमने यह जाना है कि गृह के द्वार की जो दिशा हो उसी की अपेक्षा दिशा को मानकर जिस दिशा में जिसका निर्माण (स्थान) लिखा है तदनुकूल रचना करना चाहिए। विदिशा तो सूर्य के अनुसार भूमि खात व शिलान्यास मुहूर्त हेतु हैं

सर्वप्रथम भूमि की परीक्षा की जाये। श्मशान, समविषम, कूप,

कोल्हू–अरहर, परगृह मार्ग, विषमकोण, वृक्ष, स्तभ, नाला, देवता स्थान काटे वाला वृक्ष सर्पादिबिल आदि रहित भूमि होना चाहिए। पास में मांस, मद्य, या अग्नि से सबधित दूकान न हो।

घर के आगे मदिर हो और उसकी, शिखर या ध्वजा की छाया दूसरे तीसरे पहर मे नहीं पडना चाहिए। घर द्वार के आगे का भाग सकरा और पीछे का चौडा या कुछ ऊचा हो किन्तु दूकान के आगे का भाग चौडा बनाना अच्छा है। घर के द्वार भाग से नीचे का भाग ऊंचा और दूकान के आगे का भाग ऊचा और बीच मे समान होना अच्छा है।

घर का द्वार और प्रवेशद्वार एक ही दिशा में होना तो उत्तम हैं। मुख्य घर द्वार प्रवेश के समय बांयी और याने प्रथम प्रवेश करने के बाद बायी और जाकर मुख्य घर में प्रवेश हो तो वह अशुभ है

मुख्य घर का द्वार प्रवेश के समय दाहिनी और हो, दाहिनी और मुख्य घर मे प्रवेश हो तो वह सुखद है।

पूर्व, उत्तर, पश्चिम मे द्वार बना सकते है। दक्षिण मे बनाना पडे तो यह मध्य भाग मे नही बनाकर नीचे लिखे अनुसार बनावे।

भूमि की चारो दिशाओं मे आठ–आठ भाग बनावे पूर्व में आठ में से तीसरे या चौथे भाग में, दक्षिण मे दूसरे या छठे भाग मे, पश्चिम में तीसरे या पाचवे भाग मे, तथा उत्तर दिशा में आठ भाग में से तीसरे या पॉचवे भाग मे द्वार बनावे। घर मे जाने के लिए द्वार से दाहिनी ओर से प्रवेश हो और उसी प्रकार सीढियॉ बनवाना श्रेष्ठ है।

स्थान व्यवस्था :-

पूर्व दिशा में गृह का मुख्यद्वार हो तो वहीं बैठक का स्थान, आग्नेय कोण मे भोजनालय, दक्षिण मे स्टोर, नैऋत्य मे लेट्रिन व स्थानगृह, पश्चिम में वेश विन्यास (ड्रेसिगरुम), वायव्य में बच्चो का पठनपाठन, उत्तर मे तिजोरी–शयनस्थान, ईशान मे स्वाध्याय–ग्रंथालय। तिजोरी के स्थान में पीले रंग की दिवाल हो।

घर के पीछे की दीवाल मे नीचे के भाग मे प्रकाश हेतु खिडकी आदि रखना शुभ नहीं है। मदिर, कूप, श्मशान, मठ, राजमहल के पत्थर, ईंट, लकडी घर के काम में नहीं लाना चाहिए।

यदि कोई कार्य विशेष हेतु अधिक भूमि लेना हो तो बायीं या दायीं ओर की भूमि या आगे की ली जावे, घर के पीछे की भूमि लेना अशुभ है।

टयूबबेल नैऋत्य में, कूप ईशान या पश्चिम में खोदा जा सकता है, परन्तु गृह के मुख्य द्वार के सामने नहीं। पूर्व या उत्तर में छोटी खिड़की हो। घर के कमरे मे टी.वी. आग्नेय दक्षिण या पश्चिम में रखे।

तलघर :-

तलघर गृह के उत्तर दिशा मे हो, जहां सूर्य किरणे आ सके। यहां खिडकी (उजालदान) वायव्य या उत्तर मे हो। व्यापार का सामान दक्षिण, पश्चिम मे रखा जावे। तलघर मे कारखाना सबधी वही खाते का काम नही होना चाहिए। पुराना समान नैऋत्य कोण मे रखा जावे।

कारखाना :-

कारखाना उत्तर या पूर्व में स्थान छोडकर निर्माण किया जावे। यहा उपवन व लॉन रखा जावे। सड़क से पूर्व–ईशान, उत्तर–ईशान, दक्षिण–आग्नेय, पश्चिम–वायव्य मे द्वार रखे। पूर्व–आग्नेय, दक्षिण–नैऋत्य, पश्चिम–नैऋत्य, उत्तर–वायव्य मे कारखाने का द्वार न रखें। कारखाने का फर्श दक्षिण–पश्चिम की ओर ऊचा तथा उत्तर पूर्व की ओर ढलान रहे। छत की ऊचाई दक्षिण पश्चिम की ओर अधिक, पावर स्थान आग्नेय कोण मे रहे। चिमनी भी उसी ओर रखे।

भारी मशीने दक्षिण, नैत्रृत्य, पश्चिम मे रखी जावे। हल्की मशीने उत्तर मे रहे। स्टोर नैऋत्य कोण मे तथा तैयार माल वायव्य मे जमा देवे। वजन का काटा पूर्व तथा उत्तर मे हो।

प्रशासनिक कार्यालय :-

उत्तर या पूर्व की और निर्माण करें। पार्किंग वायव्य कर्मचारी स्थान आग्नेय व वायव्य मे रखा जावे। बहुमजिले स्थान नैऋत्य मे।

गृहारम्भ– नूतन गृह की भूमि का खात मुहूर्त मेष, वृष, मिथुन, कर्क, सिह, कन्या, तुला, वृश्चिक, धनु, मकर, कुभ, मीन इन बारह राशियो मे से जिस राशि का सूर्य हो उस के दिशाकोण मे किया जाता है। जैसे आग्नेय कोण मे उक्त राशि के नबर 5–6–7 वे सूर्य होने पर वहा खात करना चाहिए। 2–3–4 वी राशि के सूर्य होने पर नैऋत्य कोण में, 11–12–1 राशि के सूर्य में वायव्य कोण, 8–9–10 राशि के सूर्य होने पर ईशान दिशा मे खात करें। इसी प्रकार शिलान्यास भी करें।

निर्माण – श्रावण, मंगसिर, पौष, फाल्गुन, वैशाख मास में गृहनिर्माण का प्रारंभ करना चाहिए शेष मास अशुभ है। फिर भी चैत्र में मेष का सूर्य

ज्येष्ठ में वृष, आषाढ मे कर्क, भादो व आसोज मे तुला, कार्तिक में वृश्चिक, पौष मे मकर, माघ में मकर या कुंभ राशि का सूर्य हो तो गृह प्रारंभ किया जा सकता है। यह पंचांग से ज्ञात होता हैं। गृह आरंभ व प्रवेश चित्रा, अनुराधा, तीनों उत्तरा, मृगशिर, रोहिणी, रेवती नक्षत्र में श्रेष्ठ है। निर्माण के समय गृह के संबंध में गज आय–व्यय आदि के ज्ञान शिल्पी के परामर्श से सब कार्य करना उचित है। वास्तु शास्त्र का भी विशेष महत्व है। गृह अनेक प्रकार के बनते है।

घर की ऊंचाई (लगभग बारह फुट) की दो तिहाई (आठ फुट) द्वार की ऊंचाई और उसकी आधी (चार फुट) चौडाई रखे, अन्य द्वार उसी अनुपात से व खिडकियाँ सुविधानुसार बनावें। निर्माण द्रव्य और क्षेत्र की शुद्धता एवं काल में मुहूर्त आवश्यक है।

भूखड (प्लाट) सम चतुष्कोण होना चाहिए। त्रिकोण भूखंड अशुभ है। दो बडे भूखंडो के मध्य लघु भूखंड शुभ नहीं है।

खाली स्थान पश्चिम की अपेक्षा पूर्व में अधिक रखा जावे। दक्षिण मे खाली स्थान न रखे। यदि रखना पडे तो उत्तर से कम रखा जावे। गृहारंभ के पहले गृह की भूमि के भीतर हड्डी, कोयला, चर्म आदि अशुभ आदि का ज्ञान कर उन्हें दूर कर देना चाहिए।

यह ध्यान रखना होगा कि गृह निर्मित होने के पश्चात् उसके निर्माण हुई हिसा एव वहा जो भी सर्प व्यतर आदि स्थान बनाये हुए थे, उनसे जो भी बाधा की संभावना है उन सब की शान्त्यर्थ शातिमत्र जप एवं शांतियज्ञ सावधानी व मर्यादा पूर्वक किये बिना वहां निवास नही किया जावे। वहां के पूर्व दूषित वातावरण की शुद्धि आवश्यक है। ध्यान रहे सर्पबिल मे तेजाब आदि न डाला जावे।

समाधिमरण

(जीवन जीने के लिए है मरने के लिए नहीं)

जैनधर्म मे समाधिमरण का बड़ा महत्व है। आठ कर्मो में प्रत्येक संसारी जीव के आयु कर्म भी है। जिस पर्याय मे जीव रहता है उसकी स्थिति तब तक रहती है, जब तक उसके अच्छे बुरे परिणामों से बधा हुआ आयुकर्म उदय में नहीं आ जाता। उदय भी शरीरात तक आता रहता है। जीव वर्तमान पर्याय की जितनी स्थिति रहती है उसके तीसरे हिस्से में आगामी पर्याय की स्थित्ति को बॉधता है। यदि ऐसे तीसरे हिस्से के आठ अवसर चूक जाते हैं तो अतिम समय मे आगामी पर्याय की आयु बधती है। इस आगामी पर्याय के कर्म बंध के मौकों मे जिस प्रकार के भाव होगे वैसी ही आगामी पर्याय का बंध होता है। इसी बध को शुभगति की प्रान्ति हेतु शुभरूप बनाने का अंतिम कारण समाधिमरण या सल्लेखना है।

अपने परिजनो को रागद्वेष मोह ममता से बचाकर परमात्मा के गुणो में स्थिर करते हुए कमश आहार और शरीर का छूटना समाधिमरण है। मृत्युसमय मे जो वेदना होती है उसे धैर्य और साहस पूर्वक सहनकर परमात्मा में लीन होकर शरीर छूटने से आगामी भव मे उच्च पर्याय प्राप्त करना इसका उद्देश्य है। इसे बिना समझे आत्मघात कहा जाता है। किसी स्वार्थवश इच्छापूर्ति न होने से रागद्वेष कषायवश जो मरण की आकांक्षा और उसके उपाय किये जाते है उसे आत्मघात कहते हैं।

जब किन्ही रोग, वृद्धावस्था आदि के कारण चिकित्सा करने पर भी शरीर स्थिति का रहना असभव हो जाता है। तब समाधिमरण होता है। सल्लेखना का तात्पर्य है, जीवन की आशा नही रहने पर 'अपने कषाय और शरीर को क्रमश घटाना' यही है।

यहा इस काल में न मुक्ति होती है और न स्वर्ग–नरक गति की विशेष पर्याय, किन्तु शुभ से शरीर छूटने पर नीचीगति, तिर्यंच, पशु, व्यंतर आदि निम्न श्रेणि की पर्याय प्राप्त न हो यही समाधिमरण का उद्देश्य है।

भयंकर रोग से पीडित व्यक्ति को देखकर दयार्द्र होकर उसे किसी

चिकित्सक द्वारा उसके प्राणहरण या उसकी इच्छा से भी यह कार्य उचित नहीं है। इसमे कषाय तो रहती है। मरते समय भी भयंकर पीड़ा होती है उसे शांति दिलाना कर्त्तव्य है।

संसार से छूटकर मोक्ष या मुक्ति की प्राप्ति होने पर वहां शरीर और कर्मों से छूटकर आत्मा के अनंतज्ञान, दर्शन, सुख, वीर्य आदि गुणों में अनंत काल तक लीन रहता है। मुक्ति में अन्य दर्शनों के माफिक ज्ञानादि गुण नष्ट नहीं होते। वहां शुद्ध आत्मा का पूर्व शरीर से कुछ कम आकार रहता है। मुक्त आत्मा लोक के अंत में अनंत की संख्या में विराजमान हैं। वे अंनतकाल तक रहेगे। आत्मा के शुद्धज्ञान दर्शन सुख आदि अनंतगुणों का अनुभव अनत काल तक करते रहेंगे।

सांसारिक सुख तो वेदना प्रतीकार रूप है। जो शांत और दुख मिश्रित है। इन्द्रियों से होने वाला यह सुख (भोग) दुख ही है। मोक्ष में अतीन्द्रिय सुख है। इन सब कर्म की अवस्थाओं के क्षय से ही पारमार्थिक अक्षय अनत सुख प्राप्त होता है। यहां यह प्रश्न किया जाता है। कि परमात्मा मोक्ष से ससार मे प्राणियो के हित के लिए अवतार लेते हैं। किन्तु जैनधर्म में मुक्त होने के बाद ससार में पुन. जन्म लेने की मान्यता नहीं है। जो भी तीर्थंकर होते है वे अपने पूर्व भव मे कर्मबधन सहित नारकतिर्यंच देव आदि पर्यायों में जन्म मरण करते हुए मनुष्य भव मे अपने सम्यक् पुरुषार्थ से सम्यग्दर्शनादि रत्नत्रय को प्राप्त कर कर्म नष्ट कर आत्मा से परमात्मा बनते है।

जैसे वृक्ष के बीज को आग्नि मे जला देने पर उसमे अकुरोंत्पत्ति की शक्ति नष्ट हो जाती है। जैसे दूध से घृत निकाल लेने पर फिर वह घृत दूध नहीं बन सकता इसी प्रकार आत्मा एक बार कर्ममुक्त होने पर फिर जन्ममरण के चक मे नहीं पडता।

दूसरा प्रश्न यह है कि ससार के जीव मुक्त होते रहेंगे तो संसारी जीव कम होते–होते एक समय ऐसा आयेगा कि ससार जीवों से बिलकुल रिक्त हो जायेगा। इसका उत्तर यह है कि– आकाश जैसे अनत है, भविष्यकाल का जैसे कभी अत नहीं होगा उसी प्रकार जीवराशि अनंत है। अनंत राशि वह है जो आय रहित व्यय होते रहने के पश्चात् भी अव्यय हो अर्थात् ज्यो की त्यों बनी रहे। गणित शास्त्रानुसार अनंत में से अनंत घटाने पर भी अनंत शेष रहता है।

1. सस्करण, परिमार्जन, शोधन, अथवा परिष्करण की क्रिया संस्कृति है, जो व्यक्ति में निर्मलता का संचार करती है।

शारीरिक, मानसिक शक्तियों का प्रशिक्षण, दृढीकरण, विकास अथवा उससे उत्पन्न अवस्था संस्कृति है। संस्कृति मानवता की प्रतिष्ठापिका है। यही मानव को असत्य से सत्य की ओर, अंधकार से ज्योति की ओर, मृत्यु से अमरत्व की ओर, अनैतिकता से नैतिकता की ओर अग्रसर करती है।

2. सभ्यता और संस्कृति में वहिंरंग और अंतरंग धर्मवत् अतर है। समाज की परस्पर शिष्टतानुबधिनी चर्चा सभ्यता है और धर्म शासन से अणु मात्र विचलित न होकर युग–युग में एक रूप आचार संहिता सस्कृति है।

3 स्थापत्य कला व मूर्ति कला के क्षेत्र मे सपूर्ण भारत वर्ष मे जैनो की शिल्प और कला निर्मितियाँ इतनी प्रचुर हैं, उनका नामोल्लेख भी यहा संभव नहीं है। उडीसा में उदयगिरि गुहा, एलोरा में इन्द्रसभा, पालिताना मे शत्रुंजय पहाडी, आबू पर्वत पर तेजपाल का मंदिर, गिरिनार में नेमिनाथ मदिर, बिहार मे सम्मेद शिखर, राणकपुर, खजुराहो, चित्तौड में राणाकुंवर का विजय स्तंभ, श्रवणवेलगोला में देवगढ, सोनागिर, देलवाडा मंदिर आदि जैनो की स्थापत्य कला अनुपम है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. मोहनजोदडो – जैन परम्परा और प्रमाण (आचार्य विद्यानंद जी)
2. अतीत का अनावरण – श्री मुनि नथमल जी (आचार्य महाप्रज्ञ)
3. जैनधर्म – श्री रतनलाल जैन भा.दि. जैन परिषद पब्लिशिंग हाउस
4. जैनधर्म – पं. कैलाशचन्द जी सिद्धांताचार्य
5. भारतीय इतिहास एक दृष्टि – डॉ. ज्योति प्रसाद जी लखनऊ
6. भारतीय संस्कृति को जैनधर्म का योगदान – डॉ. हीरालाल जी
7. जैन इतिहास – श्री कामता प्रसाद जी जैन
8. सनातन जैनधर्म – बैरिस्टर चंपतराय जी
9. की आफ नालेज (असहमत संगम) – बैरिस्टर सी. आर. जैन
10. तत्वार्थ सूत्र – आचार्य उमास्वामी
11. सर्वार्थसिद्धि – आचार्य पूज्यपाद
12. गोम्मटसार 1–2 खंड – आचार्य नेमिचन्द सिद्धांत चक्रवर्ती
13. जैनदर्शन – डॉ. महेन्द्र कुमार न्यायाचार्य
14. आप्त मीमांसा – आचार्य संमतभद्र
15. कल्याण कारक – श्री उदयनाचार्य
16. आत्म धर्म और समाज धर्म – पं. नाथूलाल शास्त्री
17. जैन व्रततिथि – डॉ. नेमिचन्द ज्योतिषाचार्य
18. उपनिषद अंक – गीता प्रैस, गौरखपुर
19. समयसार कलश – आचार्य अमृतचन्द्र
20. भारत और मावन संस्कृति – श्री विश्मरनाथ पांडे
21. संस्कृति के चार अध्याय – श्री रामधारी सिंह दिनकर
22. श्रीमद्भागवद्
23. श्रीमद्भगवद गीता
24. योग वसिष्ठ
25. आदि पुराण – आचार्य जिनसेन
26. तीर्थंकरों के सर्वोदय मार्ग – डॉ. ज्योति प्रसाद जी
27. जैन शब्दार्णव – बिहारीलाल जी चैतन्य
28. महावीर जयन्ती विशेषांक, जयपुर

इस धर्म में जैनधर्म की अति प्राचीनता के विद्वानों की नामावलि

1 वाचस्पति गैरोला
2 सर जान मार्शल
3. डा विद्यानद पाठक
4 डा जयशकर प्रसाद
5 पद्म श्री रामधारी सिह 'दिनकर'
6 प्रो प्राणनाथ विद्यालकार
7 श्री रामप्रसाद चन्दा
8 श्री महादेवन्
9 डा राखाल दास बनर्जी
10 डा विसेट ए स्मिथ
11 डा. राधाकुमुद मुखर्जी
12 श्री पी आर देशमुख
13 डा हेरास
14 प्रो एस श्रीकठ शास्त्री
15 मैक्समूलर
16 प्रो के ए नीलकात शास्त्री
17 महामहोपाध्याय डा सतीश चन्द्र
18 श्री जवाहर लाल नेहरू
19 कोलब्रुक
20 स्टीवेसन
21 एडवर्ड थामस
22 यार्ल खारपेटिएर
23 श्रीमुनि नथमल जी (आचार्य महाप्रज्ञ)
24 कल्चरल टोटे टोज रेज ऑफ इडिया लेखक
25 प्रो एम एस राधा स्वामी
26 डा विल्सन
27 प्रो चिताहरण चक्रवर्ती
28 मुख्योपाध्याय श्री वरदाकांत एम ए